१

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा—गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना । मैं न जाने कब लौटूँ । ज़रा मेरी लाठी दे दे ।

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे । उपले पाथकर आई थी । बोली—अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो । ऐसी जल्दी क्या है ?

होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़कर कहा—तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिन्ता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी । असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घण्टों बैठे बीत जायगा ।

'इसी से तो कहती हूँ, कुछ जल-पान कर लो । और आज न जाओगे, तो कौन हरज होगा । अभी तो परसों गये थे ।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई ! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख । यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है । नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गये । गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई ? जब दूसरों के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुसल है ।'

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी । उसका विचार था कि हमने ज़मींदार के खेत जोते हैं तो वह अपना लगान ही तो लेगा । उसकी ख़ुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलायें । यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो; मगर लगान बेबाक़ होना मुश्किल है । फिर भी वह हार न मानती थी, और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आये दिन संग्राम छिड़ा रहता था । उसकी छः सन्तानों में अब केवल तीन ज़िन्दा हैं, एक लड़का गोबर सोलह साल का, और दो लड़कियाँ सोना और रूपा बारह और आठ साल की । तीन लड़के बचपन ही में मर गये । उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दारू होती, तो वे बच जाते ; पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा

सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही साल तो था; पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, सारी देह ढल गई थी, वह सुन्दर गेहुआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो? कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्म-सम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों। इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था, और दो-चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त होकर होरी की लाठी, मिरजई, पगड़ी, जूते और तमाखू का बटुआ लाकर सामने पटक दिये।

होरी ने उसकी ओर आँखें तरेरकर कहा—क्या ससुराल जाना है, जो पाँचों पोशाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जाकर दिखाऊँ।

होरी के गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा—ऐसे ही तो बड़े सजीले जवान हो कि साली सलहजें तुम्हें देखकर रीझ जायँगी!

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा—तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जाकर सीसे में मुँह देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे! तुम्हारी दशा देख-देखकर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान्, यह बुढ़ापा कैसे कटेगा। किसके द्वार भीख माँगेंगे।'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में जैसे झुलस गई। लकड़ी सँभालता हुआ बोला—साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पायेगी धनिया! इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया—अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी लाठी कन्धे पर रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुऐ हृदय में आतंकमय कम्पन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभयदान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिपाये लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानों झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदनाशक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखोंवाले आदमी को हो सकता है?

होरी क़दम बढ़ाये चला जाता था। पगडण्डी के दोनों ओर ऊख के पौदों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा—भगवान् कहीं गौं से बरखा कर दें, और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देसी गायें तो न दूध दें, न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाँही गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस-तरसकर रह जाता है। इस उमिर में न खाया-पिया, तो फिर कब खायेगा। साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाय। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोईं न होगी। फिर, गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्शन हो जायँ, तो क्या कहना। न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह सुभ दिन आयेगा।

हरएक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से सञ्चित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हें-से हृदय में कैसे समातीं।

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकलकर आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत-प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था, और हवा में गर्मी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करनेवाले किसान उसे देखकर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे; पर होरी को इतना

अवकाश कहाँ था। उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पाकर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं। नहीं उसे कौन पूछता। पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या ? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हलवाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडण्डी छोड़कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण कुछ तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नज़र आती थी। आस-पास के गाँवों की गउएँ यहाँ चरने आया करती थीं। उस समय में भी यहाँ की हवा में कुछ ताज़गी और ठण्ढक थी। होरी ने दो-तीन साँसें ज़ोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाय। दिन-भर तो लू-लपट में मरना है ही। कई किसान इस गढ़े का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे ; पर ईश्वर भला करे राय साहब का, कि उन्होंने साफ कह दिया, यह ज़मीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जायगी। कोई स्वार्थी ज़मींदार होता, तो कहता, गायें जाएँ भाड़ में, हमें रुपये मिलते हैं, क्यों छोड़ें ; पर राय साहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है ?

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गायें लिये इसी तरफ़ चला आ रहा है। भोला इसी गाँव से मिले हुए पुरवे का ग्वाल था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गायें बेच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देखकर ललचा गया। अगर भोला वह आगेवाली गाय उसे दे दे, तो क्या कहना ! रुपये आगे-पीछे देता रहेगा। वह जानता था, घर में रुपये नहीं हैं, अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाक़ी है, जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है ; लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता जो तक़ाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसों से जो साध मन को आन्दोलित कर रही थी उसने उसे विचलित कर दिया। भोला के समीप जाकर बोला—राम-राम भोला भाई, कहो क्या रंग-ढंग है। सुना अबकी मेले से नई गायें लाये हो।

भोला ने रुखाई से जवाब दिया। होरी के मन की बात उसने ताड़ ली थी—

हाँ, दो बछिये और दो गायें लाया। पहलेवाली गायें सब सूख गई थीं। बन्धी पर दूध न पहुँचे, तो गुजर कैसे हो ?

होरी ने आगेवाली गाय के पुट्ठे पर हाथ रखकर कहा—दुधार तो मालूम होती है, कितने में ली ?

भोला ने शान जमाई—अबकी बजार बड़ा तेज था महतो, इसके अस्सी रुपये देने पड़े। आँखें निकल गईं। तीस-तीस रुपये तो दोनों कलोरों के दिये। तिस पर गाहक रुपये का आठ सेर दूध माँगता है।

'बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाये भी तो वह माल कि यहाँ दस-पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। बोला—राय साहब इसके सौ रुपये देते थे। दोनों कलोरों के पचास-पचास रुपये; लेकिन हमने न दिये। भगवान् ने चाहा, तो सौ रुपये इसी ब्यान में पीट लूँगा।

'इसमें क्या सन्देह है भाई! मालिक क्या खाके लेंगे। नजराने में मिल जाय, तो भले ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अँजुली-भर रुपये तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहे। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो। हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की बात है। साल के साल बीत जाते हैं, गोरस के दरसन नहीं होते। घरवाली बार-बार कहती है, भोला भैया से क्यों नहीं कहते। मैं कह देता हूँ, कभी मिलेंगे तो कहूँगा। तुम्हारे सुभाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है, ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब बातें करेंगे, नीची आँखें करके, कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया, बोला—भला आदमी वही है, जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपये की बात कह दी भाई! बस सज्जन वही, जो दूसरों की आबरू को अपनी आबरू समझे।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के

मर जाने से मर्द के हाथ-पाँव कट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देनेवाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गई थी। यह होरी जानता था; लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आँखों में सजल हो गई थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि सजग हो गई।

'पुरानी मसल झूठी थोड़ी है—बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई नहीं ठीक कर लेते?'

'ताक में हूँ महतो, पर कोई जल्दी फँसता नहीं। सौ-पचास खरच करने को भी तैयार हूँ। जैसी भगवान् की इच्छा।'

'अब मैं भी फिराक में रहूँगा। भगवान् चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायगा।'

'बस यही समझ लो कि उबर जाऊँगा भैया! घर में खाने को भगवान् का दिया बहुत है। चार पसेरी रोज दूध हो जाता है; लेकिन किस काम का।'

'मेरी ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुज़र कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में भी अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा जैसे चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है। बोला—अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो! छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आयें।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूँगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहेकी। इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा! मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबायें। जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जायँगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो हैं। तुम गाय ले जाओ, दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपये में ली थी, तुम अस्सी रुपये ही दे देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा ! समझ लो ।'

'तो तुमसे नगद माँगता कौन है भाई !'

होरी की छाती गज़-भर की हो गई । अस्सी रुपये में गाय महँगी न थी । ऐसा अच्छा डील डौल, दोनों जून में छः-सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले । इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा । द्वार पर बँधेगी, तो द्वार की शोभा बढ़ जायगी । उसे अभी कोई चार सौ रुपये देने थे ; लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था । कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साल दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं । सगाई न भी हुई तो होरी का क्या बिगड़ता है । यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आयेगा, बिगड़ेगा, गालियाँ देगा ; लेकिन होरी को इसकी ज़्यादा शर्म न थी । इस व्यवहार का वह आदी था । कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है । भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनकूल न था । अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अन्तर न था । सूखे-बूड़े की विपदाएँ उसके मन को भीरु बनाये रहती थीं । ईश्वर का रुद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था ; पर यह छल उसकी नीति में छल न था । यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी । इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था । घर में दो-चार रुपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है । सन को कुछ गीला कर देना और रूई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज़ था और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था । बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाय, तो कोई दोष-पाप नहीं ।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा—ले जाओ महतो, तुम भी याद करोगे । ब्याते ही छः सेर दूध ले लेना । चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ । साइत तुम्हें अनजान समझकर, रास्ते में कुछ दिक करे । अब तुमसे सच कहता हूँ, मालिक नब्बे रुपये देते थे ; पर उनके यहाँ गौओं की क्या कदर । मुझसे लेकर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते । हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब ? वह तो खून चूसना-भर जानते हैं । जब तक दूध देती, रखते ; फिर किसी के हाथ बेच देते । किसके पल्ले पड़ती, कौन जाने । रुपया ही सब कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है । तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो । यह तो न होगा कि तुम आप खाकर

सो रहो और गऊ भूखो खड़ी रहे। उसकी सेवा करोगे, प्यार करोगे, चुमकारोगे। गऊ हमें आसिरवाद देगी। तुमसे क्या कहूँ भैया, घर में चंगुल-भर भी भूसा नहीं रहा। रुपये सब बाज़ार में निकल गये। सोचा था, महाजन से कुछ लेकर भूसा ले लेंगे; लेकिन महाजन का पहला ही नहीं चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलायें, यही चिन्ता मारे डालती है। चुटकी-चुटकी-भर खिलाऊँ, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान् ही पार लगायें तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा—तुमने हमसे पहले क्यों न कहा। हमने एक गाड़ी भूसा बेच दिया।

भोला ने माथा ठोककर कहा—इसीलिए नहीं कहा भैया कि सबसे अपना दुःख क्यों रोऊँ। बाँटता कोई नहीं, हँसते सब हैं। जो गायें सूख गई हैं उनका गम नहीं, पत्ती-सत्ती खिलाकर जिला लूँगा; लेकिन अब यह तो रातिब बिना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस-बीस रुपये भूसा के लिए दे दो।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिशवत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता; लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है; खेतों में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है; गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं; मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान! होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गई। पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला—रुपये तो दादा मेरे पास नहीं हैं। हाँ, थोड़ा-सा भूसा बचा है, वह तुम्हें दूँगा। चलकर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, और मैं लूँगा! मेरे हाथ न कट जायँगे?

भोला ने आर्द्र कण्ठ से कहा—तुम्हारे बैल भूखों न मरेंगे? तुम्हारे पास भी ऐसा कौन-सा बहुत-सा भूसा रखा है।

'नहीं दादा, अबकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना ग़ैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भी न करे, तो काम कैसे चले।'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'अभी नहीं दादा, फिर ले लूँगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना।'

होरी ने दुखित स्वर में कहा—दाम-कौड़ी की इसमें कौन बात है दादा, मैं एक-दो जून तुम्हारे घर खा लूँ, तो तुम मुझसे दाम माँगोगे?

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखों मरेंगे कि नहीं?'

'भगवान् कोई न कोई सबील निकालेंगे ही। असाढ़ सिर पर है। कड़बी बो लूँगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गई। जिस दिन इच्छा हो, आकर ले जाना।'

'किसी भाई का लिलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वही इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय लेकर घर की राह लेता। भोला जब नक़द रुपये नहीं माँगता तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है; लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे क़दम नहीं उठाता, वही दशा होरी की थी। संकट की चीज़ लेना पाप है, यह बात जन्म-जन्मान्तरों से उसकी आत्मा का अंश बन गई थी।

भोला ने गद्‌गद कंठ से कहा—तो किसी को भेज दूँ भूसे के लिए?

होरी ने जवाब दिया—अभी मैं राय साहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूँ। वहाँ से घड़ी-भर में लौटूँगा, तभी किसी को भेजना!

भोला की आँखों में आँसू भर आये। बोला—तुमने आज मुझे उबार लिया होरी भाई! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूँ। मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—उस बात को भूल न जाना।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था। मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो

रही थी। क्या हुआ, दस-पाँच मन भूसा चला जायगा, बेचारे को संकट में पड़कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी। जब मेरे पास चारा हो जायगा, तब गाय खोल लाऊँगा। भगवान् करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाय। फिर तो कोई बात ही नहीं।

उसने पीछे फिरकर देखा। कबरी गाय पूँछ से मक्खियाँ उड़ाती, सिर हिलाती, मस्तानी, मन्द गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बाँदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बँधेगी।

२

सेमरी और बेलारी दोनों अवध प्रान्त के गाँव हैं। ज़िले का नाम बताने की कोई ज़रूरत नहीं। होरी बेलारी में रहता है, राय साहब अमरपाल सिंह सेमरी में। दोनों गाँवों में केवल पाँच मील का अन्तर है। पिछले सत्याग्रह-संग्राम में राय साहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे। तब से उनके इलाक़े के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनके इलाक़े में असामियों के साथ कोई खास रिआयत की जाती हो, या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो; मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। राय साहब की कीर्त्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के गुलाम थे। ज़ाब्ते का काम तो जैसे होता चला आया है वैसा ही होगा। राय साहब की सज्जनता उस पर कोई असर न डाल सकती थी; इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ-भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश मानों बढ़ गया था। असामियों से वह हँसकर बोल लेते थे। यही क्या कम है? सिंह का काम तो शिकार करना है; अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में उसे जंगल में न भटकना पड़ता।

राय साहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाये रखते थे। उनकी नज़रें और डालियाँ और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी की तैसी चली आती थीं। साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौक़ीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज़। उनकी पत्नी को मरे आज दस साल हो चुके थे; मगर दूसरी शादी न की थी। हँस-बोलकर अपने विधुर-जीवन को बहलाते रहते थे।

होरी ड्योढ़ी पर पहुँचा, तो देखा, जेठ के दशहरा के अवसर पर होनेवाले

धनुष-यज्ञ की बड़ी ज़ोरों से तैयारियाँ हो रही हैं। कहीं रंग-मंच बन रहा था, कहीं मण्डप, कहीं मेहमानों का आतिथ्य-गृह, कहीं दूकानदारों के लिए दूकानें। धूप तेज़ हो गई थी; पर राय साहब खुद काम में लगे हुए थे। अपने पिता से सम्पत्ति के साथ-साथ उन्होंने राम की भक्ति भी पाई थी और धनुष-यज्ञ को नाटय का रूप देकर उसे शिष्ट मनोरंजन का साधन बना दिया था। इस अवसर पर उनके यार-दोस्त, हाकिम-हुक्काम सभी निमन्त्रित होते थे और दो तीन दिन इलाके में बड़ी चहल-पहल रहती थी। राय साहब का परिवार बहुत विशाल था। कोई डेढ़ सौ सरदार एक साथ भोजन करते थे। कई चचा थे, दरजनों चचेरे भाई, कई सगे भाई, बीसियों नाते के भाई। एक चचा साहब राधा के अनन्य उपासक थे और बराबर वृन्दावन में रहते थे। भक्ति-रस के कितने ही कवित्त रच डाले थे और समय-समय पर उन्हें छपवाकर दोस्तों की भेंट कर देते हैं। एक दूसरे चचा थे, जो राम के परम भक्त थे और फारसी-भाषा में रामायण का अनुवाद कर रहे थे। रियासत से सबके वसीके बँधे हुए थे। किसी को कोई काम करने की ज़रूरत न थी।

होरी मण्डप में खड़ा सोच रहा था कि अपने आने की सूचना कैसे दे, कि सहसा राय साहब उधर ही आ निकले और उसे देखते ही बोले—अरे! तू आ गया होरी, मैं तो तुझे बुलवानेवाला था। देख, अबकी तुझे राजा जनक का माली बनना पड़ेगा, समझ गया न! जिस वक्त श्री जानकीजी मन्दिर में पूजा करने जाती हैं, उसी वक्त तू एक गुलदस्ता लिये खड़ा रहेगा और जानकीजी की भेंट करेगा। ग़लती न करना और देख, असामियों से ताकीद करके कह देना कि सब-के-सब शगून करने आयें। मेरे साथ कोठी में आ, तुझसे कुछ बातें करनी हैं।

वह आगे-आगे कोठी की ओर चले, होरी पीछे-पीछे चला। वहीं एक घने वृक्ष की छाया में वह कुरसी पर बैठ गये और होरी को ज़मीन पर बैठने का इशारा करके बोले—समझ गया, मैंने क्या कहा। कारकुन को तो जो कुछ करना है वह करेगा ही; लेकिन असामी जितने मन से असामी की बात सुनता है, कारकुन की नहीं सुनता। हमें इन्हीं पाँच-सात दिनों में बीस हज़ार का प्रबन्ध करना है। कैसे होगा, समझ में नहीं आता। तुम सोचते होगे, मुझ टके के आदमी से मालिक क्यों अपना दुखड़ा ले बैठे। किससे अपने मन की कहूँ। न जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास होता है। इतना जानता हूँ कि तुम मन में मुझ पर हँसोगे नहीं। और हँसो भी, तो तुम्हारी

हँसी मैं बरदाश्त कर सकूँगा। नहीं सह सकता उनकी हँसी, जो अपने बराबर के हैं; क्योंकि उनकी हँसी में ईर्ष्या, व्यंग्य और जलन है। और वे क्यों न हँसें। मैं भी तो उनकी दुर्दशा और विपत्ति और पतन पर हँसता हूँ, दिल खोलकर, तालियाँ बजाकर। सम्पत्ति और सहृदयता में वैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं; लेकिन जानते हो, क्यों? केवल अपने बराबरवालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हममें से किसी पर डिग्री हो जाय, कुर्की आ जाय, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाय, किसी का जवान बेटा मर जाय, किसी की विधवा बहू निकल जाय, किसी के घर में आग लग जाय, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाय, या अपने असामियों के हाथों पिट जाय, तो उसके और सभी भाई उस पर हँसेंगे, बगलें बजायेंगे, मानों सारे संसार की सम्पदा मिल गई है। और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने को जगह ख़ून बहाने को तैयार हैं। अरे और तो और, हमारे चचेरे, फुफेरे, ममेरे, मौसेरे भाई जो इसी रियासत की बदौलत मौज उड़ा रहे हैं, कविता कर रहे हैं और जुए खेल रहे हैं, शराबें पी रहे हैं और ऐयाशी कर रहे हैं, वह भी मुझसे जलते हैं, और आज मर जाऊँ तो घी के चिराग जलायें। मेरे दुःख को दुःख समझनेवाला कोई नहीं। उनकी नज़रों में मुझे दुखी होने का कोई अधिकार ही नहीं है। मैं अगर रोता हूँ, तो दुःख की हँसी उड़ाता हूँ। मैं अगर बीमार होता हूँ, तो मुझे सुख होता है। मैं अगर अपना ब्याह करके घर में कलह नहीं बढ़ाता, तो यह मेरी नीच स्वार्थपरता है; अगर ब्याह कर लूँ, तो वह विलासांधता होगी। अगर शराब नहीं पीता, तो मेरी कंजूसी है। शराब पीने लगूँ, तो वह प्रजा का रक्त होगी। अगर ऐयाशी नहीं करता, तो अरसिक हूँ, ऐयाशी करने लगूँ तो फिर कहना ही क्या। इन लोगों ने मुझे भोग-विलास में फँसाने के लिए कम चालें नहीं चलीं, और अब तक चलते जाते हैं। उनकी यही इच्छा है कि मैं अन्धा हो जाऊँ और ये लोग मुझे लूट लें और मेरा धर्म यह है कि सब कुछ देखकर भी कुछ न देखूँ, सब कुछ जानकर भी गधा बना रहूँ।

राय साहब ने गाड़ी को आगे बढ़ाने के लिए दो बीड़े पान खाये और होरी के मुँह की ओर ताकने लगे, जैसे उसके मनोभावों को पढ़ना चाहते हों।

होरी ने साहस बटोरकर कहा—हम समझते थे कि ऐसी बातें हमीं लोगों में होती हैं; पर जान पड़ता है, बड़े आदमियों में भी उनकी कमी नहीं है।

राय साहब ने मुँह पान से भरकर कहा—तुम हमें बड़े आदमी समझते हो? हमारे नाम बड़े हैं; पर दर्शन थोड़े। ग़रीबों में अगर ईर्ष्या या वैर है, तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और वैर को मैं क्षम्य समझता हूँ। हमारे मुँह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले में उँगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें, तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या और वैर केवल आनन्द के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गये हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुँच गये हैं, जब हमें दूसरों के रोने पर हँसी आती है। इसे तुम छोटी साधना मत समझो। जब इतना बड़ा कुटुम्ब है, तो कोई-न-कोई तो हमेशा बीमार रहेगा ही। और बड़े आदमियों के रोग भी बड़े होते हैं। वह बड़ा आदमी ही क्या, जिसे कोई छोटा रोग हो। मामूली ज्वर भी आ जाय, तो हमें सरसाम की दवा दी जाती है, मामूली फुन्सी भी निकल आये, तो वह ज़हरबाद बन जाती है। अब छोटे सर्जन और मझोले सर्जन और बड़े सर्जन तार से बुलाये जा रहे हैं, मसीहुलमुल्क को लाने के लिए दिल्ली आदमी भेजा जा रहा है, भिषगाचार्य को लाने के लिए कलकत्ता। उधर देवालय में दुर्गापाठ हो रहा है और ज्योतिषाचार्य कुण्डली का विचार कर रहे हैं और तन्त्र के आचार्य अपने अनुष्ठान में लगे हुए हैं। राजा साहब को यमराज के मुँह से निकालने के लिए दौड़ लगी हुई है। वैद्य और डाक्टर इस ताक में रहते हैं कि कब इनके सिर में दर्द हो और कब उनके घर में सोने की वर्षा हो। और ये रुपये तुमसे और तुम्हारे भाइयों से वसूल किये जाते हैं, भाले की नोक पर। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता; मगर नहीं, आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। भस्म होने में तो बहुत देर नहीं लगती। वेदना भी थोड़ी ही देर की होती है। हम जौ-जौ और अंगुल-अंगुल और पोर-पोर भस्म हो रहे हैं। उस हाहाकार से बचने के लिए हम पुलिस की, हुक्काम की, अदालत की, वकीलों की शरण लेते हैं। और रूपवती स्त्री की भाँति सभी के हाथों का खिलौना बनते हैं। दुनिया समझती है, हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाक़े, महल, सवारियाँ, नौकर-चाकर, क़र्ज़, वेश्याएँ क्या नहीं हैं; लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके

दुःख पर सब हँसें और रोनेवाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों के नीचे दबी हो, जो भोग-विलास के नशे में अपनेको बिलकुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों के ख़ून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता। वह तो ससार का सबसे अभागा प्राणी है। साहब शिकार खेलने आये या दौरे पर, मेरा कर्तव्य है कि उनकी दुम के पीछे लगा रहूँ। उनकी भवों पर शिकन पड़ी और हमारे प्राण सूखे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए हम क्या नहीं करते; मगर वह पचड़ा सुनाने लगूँ तो शायद तुम्हें विश्वास न आये। डालियों और रिशवतों तक तो ख़ैर ग़नीमत है, हम सिज़दे करने को भी तैयार रहते हैं। मुफ्तख़ोरी ने हमें अपंग बना दिया है, हमें अपने पुरुशर्थ पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं, केवल अफ़सरों के सामने दुम हिला-हिलाकर किसी तरह उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतङ्क जमाना ही हमारा उद्यम है। पिछलगुओं की खुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनुकमिज़ाज बना दिया है कि हममें शील और विनय और सेवा का लोप हो गया है। मैं तो कभी-कभी सोचता हूँ कि अगर सरकार हमारे इलाक़े छीनकर हमें अपनी रोज़ी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान् उपकार करे, और यह तो निश्चय है कि अब सरकार भी हमारी रक्षा न करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता। लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जानेवाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ। ईश्वर वह दिन जल्द लाये। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है और जब तक सम्पत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मँडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुँचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

राय साहब ने फिर गिलौरी-दान निकाला और कई गिलौरियाँ निकालकर मुँह में भर लीं। और कुछ और कहनेवाले थे कि एक चपरासी ने आकर कहा—सरकार, बेगारों ने काम करने से इनकार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे। हमने धमकाया, तो सब काम छोड़कर अलग हो गये।

राय साहब के माथे पर बल पड़ गये। आँखें निकालकर बोले—चलो, मैं इन

दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया गया, तो आज यह नई बात क्यों ? एक आने रोज़ के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है ; और इस मजूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।

फिर होरी की ओर देखकर बोले—तुम अब जाओ होरी, अपनी तैयारी करो। जो बात मैंने कही है, उसका खयाल रखना। तुम्हारे गाँव से मुझे कम-से-कम पाँच सौ की आशा है।

राय साहब झल्लाते हुए चले गये। होरी ने मन में सोचा, अभी यह कैसी-कैसी नीति और धरम की बातें कर रहे थे, और एकाएक इतने गरम हो गये।

सूर्य सिर पर आ गया था। उसके तेज से अभिभूत होकर वृक्षों ने अपना पसार समेट लिया था। आकाश पर मटियाला गर्द छाया हुआ था और सामने की पृथ्वी काँपती हुई जान पड़ती थी।

होरी ने अपना डण्डा उठाया और घर चला। शगुन के रुपये कहाँ से आयेंगे, यही चिन्ता उसके सिर पर सवार थी।

२

होरी अपने गाँव के समीप पहुँचा, अभी तक गोबर खेत में ऊख गोड़ रहा है और दोनों लड़कियाँ भी उसके साथ काम कर रही हैं। लू चल रही थी, बगूले उठ रहे थे, भूतल धधक रहा था, जैसे प्रकृति ने वायु में आग घोल दी हो। यह सब अभी तक खेत में क्यों हैं ? क्या काम के पीछे सब जान देने पर तुले हुए हैं ? वह खेत की ओर चला और दूर ही से चिल्लाकर बोला—आता क्यों नहीं गोबर, क्या काम ही करता रहेगा ? दोपहर ढल गया, कुछ सूझता है कि नहीं ?

उसे देखते ही तीनों ने कुदालें उठा लीं और उसके साथ हो लिये। गोबर साँवला, लम्बा, एकहरा युवक था, जिसे इस काम से रुचि न मालूम होती थी। प्रसन्नता की जगह मुख पर असन्तोष और विद्रोह था। वह इसलिए काम में लगा हुआ था कि वह दिखाना चाहता था, उसे खाने-पीने की कोई फ़िक्र नहीं है। बड़ी लड़की सोना लज्जाशील कुमारी थी, साँवली, सुडौल, प्रसन्न और चपल। गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनों से मोड़कर कमर में बाँधे हुए थी, उसके हलके शरीर पर कुछ लदी हुई-सी थी, और उसे प्रौढ़ता की गरिमा दे रही थी। छोटी रूपा पाँच-छः साल की छोकरी

थी, मैली, सिर पर बालों का एक घोंसला-सा बना हुआ, एक लँगोटी कमर में बाँधे, बहुत ही ढीठ और रोनी।

रूपा ने होरी की टाँगों में लिपटकर कहा—काका! देखो, मैंने एक ढेला भी नहीं छोड़ा। बहन कहती है, जा पेड़ के तले बैठ। ढेले न तोड़ जायँगे काका, तो मिट्टी कैसे बराबर होगी।

होरी ने उसे गोद में उठाकर प्यार करते हुए कहा—तूने बहुत अच्छा किया बेटी, चल घर चलें। कुछ देर अपने विद्रोह को दबाये रहने के बाद गोबर बोला—यह तुम रोज-रोज मालिकों की ख़ुशामद करने क्यों जाते हो? बाक़ी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो?

इस समय यही भाव होरी के मन में भी आ रहे थे; लेकिन लड़के के इस विद्रोह-भाव को दबाना जरूरी था। बोला—सलामी करने न जायँ, तो रहें कहाँ? भगवान् ने जब गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है। यह इसी सलामी की बरकत है कि द्वार पर मड़ैया डाल ली और किसी ने कुछ नहीं कहा। घूरे ने द्वार पर खूँटा गाड़ा था, जिस पर कारिन्दा ने दो रुपये डाँड़ ले लिये थे। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिन्दा ने कुछ नहीं कहा। दूसरा खोदे तो नजर देनी पड़े। अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूँ, पाँव में सनीचर नहीं है और न सलामी करने में कोई बड़ा सुख मिलता है। घण्टों खड़े रहो, तब जाके मालिक को खबर होती है। कभी बाहर निकलते हैं, कभी कहला देते हैं, फ़ुरसत नहीं है।

गोबर ने कटाक्ष किया—बड़े आदमियों की हाँ में हाँ मिलाने में कुछ न कुछ आनन्द तो मिलता ही है। नहीं, लोग मेम्बरी के लिए क्यों खड़े हों।

'जब सिर पर पड़ेगी तब मालूम होगा बेटा, अभी जो चाहे कह लो। पहले मैं भी यही सब बातें सोचा करता था; पर अब मालूम हुआ कि हमारी गरदन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुई है, अकड़कर निबाह नहीं हो सकता।'

पिता पर अपना क्रोध उतारकर गोबर कुछ शान्त हो गया और चुपचाप चलने लगा। सोना ने देखा, रूपा बाप की गोद में चढ़ी बैठी है तो ईर्ष्या हुई। उसे डाँटकर बोली—अब गोद से उतरकर पाँव-पाँव क्यों नहीं चलती, कि पाँव टूट गये हैं?

रूपा ने बाप की गरदन में हाथ डालकर ढिठाई से कहा—न उतरेंगे जाओ।

काका, बहन हमको रोज चिढ़ाती है कि तू रूपा है, मैं सोना हूँ। मेरा नाम कुछ और रख दो।

होरी ने सोना को बनावटी रोष से देखकर कहा—तू इसे क्यों चिढ़ाती है सोनिया? सोना तो देखने को है। निबाह तो रूपा से होता है। रूपा न हो, तो रुपये कहाँ से बनें, बता?

सोना ने अपने पक्ष का समर्थन किया—सोना न हो तो मोहर कैसे बने, नथुनियाँ कहाँ से आयें, कण्ठा कैसे बने?

गोबर भी इस विनोदमय विवाद में शरीक हो गया। रूपा से बोला—तू कह दे कि सोना तो सूखी पत्ती की तरह पीला होता है, रूपा तो उजला होता है जैसे सूरज।

सोना बोली—सादी-ब्याह में पीली साड़ी पहनी जाती है, उजली साड़ी कोई नहीं पहनता।

रूपा इस दलील से परास्त हो गई। गोबर और होरी की कोई दलील इसके सामने न ठहर सकी। उसने क्षुब्ध आँखों से होरी को देखा।

होरी को एक नई युक्ति सूझ गई। बोला—सोना बड़े आदमियों के लिए है। हम गरीबों के लिए तो रूपा ही है। जैसे जौ को राजा कहते हैं, गेहूँ को चमार; इसलिए न कि गेहूँ बड़े आदमी खाते हैं, जौ हम लोग खाते हैं।

सोना के पास इस सबल युक्ति का कोई जवाब न था। परास्त होकर बोली—तुम सब जने एक ओर हो गये, नहीं रुपिया को रुलाकर छोड़ती।

रूपा ने उँगली मटकाकर कहा—ए राम, सोना चमार—ए राम, सोना चमार।

इस विजय का उसे इतना आनन्द हुआ कि बाप की गोद में न रह सकी। ज़मीन पर कूद पड़ी और उछल-उछलकर यही रट लगाने लगी—रूपा राजा, सोना चमार—रूपा राजा, सोना चमार!

ये लोग घर पहुँचे तो धनिया द्वार पर खड़ी इनकी बाट जोह रही थी। रुष्ट होकर बोली—आज इतनी देर क्यों की गोबर? काम के पीछे कोई परान थोड़े ही दे देता है!

फिर पति से गर्म होकर कहा—तुम भी वहाँ से कमाई करके लौटे, तो खेत में पहुँच गये! खेत कहीं भागा जाता था!

द्वार पर कुआँ था। होरी और गोबर ने एक-एक कलसा पानी सिर पर उँड़ेला,

रूपा को नहलाया और भोजन करने गये। जौ की रोटियाँ थीं ; पर गेहूँ-जैसी सुफेद और चिकनी। अरहर की दाल थी, जिसमें कच्चे आम पड़े हुए थे। रूपा बाप की थाली में खाने बैठी। सोना ने उसे ईर्ष्या-भरी आँखों से देखा, मानों कह रही थी, वाह रे दुलार !

धनिया ने पूछा—मालिक से क्या बातचीत हुई ?

होरी ने लोटा-भर पानी चढ़ाते हुए कहा—यही तहसील-वसूल की बात थी और क्या। हम लोग समझते हैं, बड़े आदमी बहुत सुखी होंगे ; लेकिन सच पूछो, तो वह हमसे भी ज्यादा दुखी हैं। हमें अपने पेट की ही चिन्ता है, उन्हें हज़ारों चिन्ताएँ घेरे रहती हैं।

राय साहब ने और क्या-क्या कहा था, वह कुछ होरी को याद न था। उस सारे कथन का खुलासा-मात्र उसके स्मरण में चिपका हुआ रह गया था।

गोबर ने व्यंग्य किया—तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते ! हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला ? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमरदी। जिसे दुख होता है, वह दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच-रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं, उस पर दुखी हैं।

होरी ने झुँझलाकर कहा—अब तुमसे बहस कौन करे भाई ! जैजात किसी से छोड़ी जाती है कि वही छोड़ देंगे। हमीं को खेती से क्या मिलता है ? एक आने नफ़री की मजूरी भी तो नहीं पड़ती। जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है ; लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती छोड़ दें, तो और करें क्या ? नौकरी कहीं मिलती है ? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इसी तरह जमींदारों का हाल भी समझ लो। उनकी जान को भी तो सैकड़ों रोग लगे हुए हैं, हाकिमों को रसद पहुँचाओ, उनकी सलामी करो, अमलों को खुश करो। तारीख पर मालगुजारी न चुका दें, तो हवालात हो जाय, कुड़की आ जाय। हमें तो कोई हवालात नहीं ले जाता। दो-चार गालियाँ-घुड़कियाँ ही तो मिलकर रह जाती हैं।

गोबर ने प्रतिवाद किया—यह सब कहने की बातें हैं। हम लोग दाने-दाने को मुहताज हैं, देह पर साबित कपड़े नहीं हैं, चोटी का पसीना एँड़ी तक आता है, तब

भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी-मसनद लगाये बैठे हैं, सैकड़ों नौकर-चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है। रुपये न जमा होते हों ; पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं। धन लेकर आदमी और क्या करता है ?

'तुम्हारी समझ में हम और वह बराबर हैं ?'

'भगवान् ने तो सबको बराबर ही बनाया है।'

'यह बात नहीं है बेटा, छोटे-बड़े भगवान् के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किये थे उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या ?'

'यह सब मन को समझाने की बातें हैं। भगवान् सबको बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।'

'यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घण्टे रोज भगवान् का भजन करते हैं।'

'किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धर्म होता है ?'

'अपने बल पर।'

'नहीं, किसानों के बल पर और मजूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे ? इसीलिए दान-धर्म करना पड़ता है, भगवान् का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे-नंगे रहकर भगवान् का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान् का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े, तो सारी भक्ति भूल जाय।'

होरी ने हारकर कहा—अब तुम्हारे मुँह कौन लगे भाई, तुम तो भगवान् की लीला में भी टाँग अड़ाते हो।

तीसरे पहर गोबर कुदाल लेकर चला, तो होरी ने कहा—ज़रा ठहर जाओ बेटा, हम भी चलते हैं। तब तक थोड़ा-सा भूसा निकालकर रख दो। मैंने भोला को देने को कहा है। बेचारा आजकल बहुत तंग है।

गोबर ने अवज्ञा-भरी आँखों से देखकर कहा—हमारे पास बेचने को भूसा नहीं है।

'बेचता नहीं हूँ भाई, यों ही दे रहा हूँ। वह संकट में है, उसकी मदद तो करनी ही पड़ेगी।'

'हमें तो उन्होंने कभी एक गाय नहीं दे दी।'

'दे तो रहा था; पर हमने ली ही नहीं।'

धनिया मटककर बोली—गाय नहीं वह दे रहा था। इन्हें गाय दे देगा! आँख में अंजन लगाने को कभी चिल्लू-भर दूध तो भेजा नहीं, गाय दे देगा!

होरी ने क़सम खाई—नहीं, जवानी कसम, अपनी पछाईं गाय दे रहे थे। हाथ तंग है, भूसा-चारा नहीं रख सके। अब एक गाय बेचकर भूसा लेना चाहते हैं। मैंने सोचा, सकट में पड़े आदमी की गाय क्या लूँ। थोड़ा-सा भूसा दिये देता हूँ, कुछ रुपये हाथ आ जायँगे, तो गाय ले लूँगा। थोड़ा-थोड़ा करके चुका दूँगा। अस्सी रुपये की है; मगर ऐसी कि आदमी देखता रहे।

गोबर ने आड़े हाथों लिया—तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गत कर रहा है। साफ-साफ तो बात है। अस्सी रुपये की गाय है, हमसे बीस रुपये का भूसा ले लें, और गाय हमें दे दें। साठ रुपये रह जायँगे, वह हम धीरे-धीरे दे देंगे।

होरी रहस्यमय ढंग से मुस्कराया—मैंने ऐसी चाल सोची है कि गाय सेंत-मेंत में हाथ आ जाय। कहीं भोला की सगाई ठीक करनी है, बस। दो-चार मन भूसा तो खाली अपना रंग जमाने को देता हूँ।

गोबर ने तिरस्कार किया—तो तुम अब सबकी सगाई ठीक करते फिरोगे?

धनिया ने तीखी आँखों से देखा—अब यही एक उद्यम तो रह गया है। नहीं देना है हमें भूसा किसी को। यहाँ भोली-भोला किसी का करज नहीं खाया है।

होरी ने अपनी सफ़ाई दी—अगर मेरे जतन से किसी का घर बस जाय, तो इसमें कौन-सी बुराई है?

गोबर ने चिलम उठाई और आग लेने चला गया। उसे यह झमेला बिलकुल नहीं भाता था।

धनिया ने सिर हिलाकर कहा—जो उनका घर बसायेगा, वह अस्सी रुपये की गाय लेकर चुप न होगा। एक थैली गिनवायेगा।

होरी ने पुचारा दिया—यह मैं जानता हूँ; लेकिन उसकी भलमंसी को भी तो देखो। मुझसे जब मिलता है, तेरा बखान ही करता है—ऐसी लच्छमी है, ऐसी सलीकेदार है।

धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक पड़ी। मनभाये मुड़िया हिलाये वाले भाव से बोली—मैं उनके बखान की भूखी नहीं हूँ, अपना बखान धरे रहें।

होरी ने स्नेह-भरी मुस्कान के साथ कहा—मैंने तो कह दिया, भैया, वह नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती, गालियों से बात करती है; लेकिन वह यही कहे जाय कि वह औरत नहीं, लच्छमी है। बात यह है कि उसकी घरवाली ज़बान की बड़ी तेज थी। बेचारा उसके डर के मारे भागा-भागा फिरता था। कहता था, जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुँह सवेरे देख लेता हूँ, उस दिन कुछ न कुछ जरूर हाथ लगता है। मैंने कहा—तुम्हारे हाथ लगता होगा, यहाँ तो रोज देखते हैं, कभी पैसे से भेंट नहीं होती।

'तुम्हारे भाग ही खोटे हैं, तो मैं क्या करूँ!'

'लगा अपनी घरवाली की बुराई करने—भिखारी को भीख तक नहीं देती थी, झाड़ू लेकर मारने दौड़ती थी, लालचिन ऐसी थी कि नमक दूसरों के घर से माँग लाती थी।'

'मरने पर किसी की क्या बुराई करूँ। मुझे देखकर जल उठती थी।'

'भोला बड़ा गमखोर था कि उसके साथ निबाह कर दिया। दूसरा होता, तो जहर खाके मर जाता। मुझसे दस साल बड़े होंगे भोला; पर राम-राम पहले ही करते हैं।'

'तो क्या कहते थे कि जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुँह देख लेता हूँ, तो क्या होता है?'

'उस दिन भगवान् कहीं-न-कहीं से कुछ भेज देते हैं।'

'बहुएँ भी तो वैसी ही चटोरिन आई हैं। अबकी सबों ने दो रुपये के खरबूजे उधार खा डाले। उधार मिल जाय, फिर उन्हें चिन्ता नहीं होती कि देना पड़ेगा या नहीं।'

'और भोला रोते काहे को हैं?'

गोबर आकर बोला—भोला दादा आ पहुँचे। मन-दो मन भूसा है, वह उन्हें दे दो, फिर उनकी सगाई ढूँढ़ने निकलो!

धनिया ने समझाया—आदमी द्वार पर बैठा है, उसके लिए खाट-वाट तो डाल नहीं दी, ऊपर से लगे भुनभुनाने। कुछ तो भलमसी सीखो। कलसा ले जाओ, पानी

भरकर रख दो, हाथ-मुँह धोयें, कुछ रस-पानी पिला दो। मुसीबत में ही आदमी दूसरों के सामने हाथ फैलाता है।

होरी बोला—रस-बस का काम नहीं है, कौन कोई पाहुने हैं।

धनिया बिगड़ी—पाहुने और कैसे होते हैं! रोज-रोज तो तुम्हारे द्वार पर नहीं आते? इतनी दूर से धूप-घाम में आये हैं, प्यास लगी ही होगी। रुपिया, देख डब्बे में तमाखू है कि नहीं, गोबर के मारे काहे को बची होगी। दौड़कर एक पैसे का तमाखू सहुआइन की दूकान से ले ले।

भोला की आज जितनी खातिर हुई, और कभी न हुई होगी। गोबर ने खाट डाल दी, सोना रस घोल लाई, रूपा तमाखू भर लाई। धनिया द्वार पर किवाड़ की आड़ में खड़ी अपने कानों से अपना बखान सुनने के लिए अधीर हो रही थी।

भोला ने चिलम हाथ में लेकर कहा—अच्छी घरनी घर में आ जाय, तो समझ लो, लक्ष्मी आ गई। वही जानती है छोटे-बड़े का आदर-सत्कार कैसे करना चाहिए।

धनिया के हृदय में उल्लास का कम्पन हो रहा था। चिन्ता और निराशा और अभाव से आहत आत्मा इन शब्दों में एक कोमल शीतल स्पर्श का अनुभव कर रही थी।

होरी जब भोला का खाँचा उठाकर भूसा लाने अन्दर चला, तो धनिया भी पीछे-पीछे चली। होरी ने कहा—जाने कहाँ से इतना बड़ा खाँचा मिल गया। किसी भड़-भूजे से माँग लिया होगा। मन-भर से कम में न भरेगा। दो खाँचे भी दिये, तो दो मन निकल जायँगे।

धनिया फूली हुई थी। मलामत की आँखों से देखती हुई बोली—या तो किसी को नेवता न दो, और दो तो भर पेट खिलाओ। तुम्हारे पास फूल-पत्र लेने थोड़े ही आये हैं कि चँगेरी लेकर चलते। देते ही हो, तो तीन खाँचे दे दो। भला आदमी अपने लड़कों को क्यों नहीं लाया। अकेले कहाँ तक ढोयेगा। जान निकल जायगी।

'तीन खाँचे तो मेरे दिये न दिये जायँगे।'

'तब क्या एक खाँचा देकर टालोगे? गोबर से कह दो, अपना खाँचा भरकर उनके साथ चला जाय।'

'गोबर ऊख गोड़ने जा रहा है।'

'एक दिन न गोड़ने से ऊख न सूख जायगी।'

'यह तो उनका काम था कि किसी को अपने साथ ले लेते। भगवान् के दिये दो-दो बेटे हैं।'

'न होंगे घर पर। दूध लेकर बाजार गये होंगे।'

'यह तो अच्छी दिल्लगी है कि अपना माल भी दो और उसे घर तक पहुँचा भी दो। लाद दे, लदा दे, लादनेवाला साथ कर दे।'

'अच्छा भाई, कोई मत जाय। मैं पहुँचा दूँगी। बड़ों की सेवा करने में लाज नहीं है।'

'और तीन खाँचे उन्हें दे दूँ, तो अपने बैल क्या खायँगे?'

'यह सब तो नेवता देने के पहले ही सोच लेना था। न हो, तुम और गोबर दोनों जने चले जाओ।'

'मुरौवत मुरौवत की तरह की जाती है, अपना घर उठाकर नहीं दे दिया जाता!'

'अभी जमींदार का प्यादा आ जाय, तो अपने सिर पर भूसा लादकर पहुँचाओगे तुम, तुम्हारा लड़का, लड़की सब। और वहाँ साइत मन-दो मन लकड़ी भी फाड़नी पड़े।'

'ज़मींदार की बात और है।'

'हाँ, वह डंडे के जोर से काम लेता है न!'

'उसके खेत नहीं जोतते?'

'खेत जोतते हैं, तो लगान नहीं देते?'

'अच्छा भाई, जान न खा, हम दोनों चले जायँगे। कहाँ-से-कहाँ मैंने इन्हें भूसा देने को कह दिया। या तो चलेगी नहीं, या चलेगी तो दौड़ने लगेगी।'

तीनों खाँचे भूसे से भर दिये गये। गोबर कुढ़ रहा था। उसे अपने बाप के व्यवहारों में ज़रा भी विश्वास न था। वह समझता था, यह जहाँ जाते हैं, वहीं कुछ-न-कुछ घर से खो आते हैं। धनियाँ प्रसन्न थी। रहा होरी, वह धर्म और स्वार्थ के बीच में डूब-उतरा रहा था।

होरी और गोबर मिलकर एक खाँचा बाहर लाये। भोला ने तुरन्त अपने अँगौछे का बीड़ बनाकर सिर पर रखते हुए कहा—मैं इसे रखकर अभी भाग आता हूँ। एक खाँचा और लूँगा।

होरी बोला—एक नहीं, अभी दो और भरे धरे हैं। और तुम्हें न आना पड़ेगा। मैं और गोबर एक-एक खाँचा लेकर तुम्हारे साथ ही चलते हैं।

भोला स्तम्भित हो गया। होरी उसे अपना भाई, बल्कि उससे भी निकट जान पड़ा। उसे अपने भीतर एक ऐसी तृप्ति का अनुभव हुआ, जिसने मानों उसके सम्पूर्ण जीवन को हरा कर दिया।

तीनों भूसा लेकर चले, तो राह में बातें होने लगीं।

भोला ने पूछा—दसहरा आ रहा है, मालिकों के द्वार पर तो बड़ी धूम-धाम होगी?

'हाँ, तम्बू-सामियाना गड़ गया है। अबकी लीला में मैं भी काम करूँगा। राय साहब ने कहा है, तुम्हें राजा जनक का माली बनना पड़ेगा।'

'मालिक तुमसे बहुत खुस हैं।'

'उनकी दया है।'

एक क्षण के बाद भोला ने फिर पूछा—सगुन करने के लिए रुपयों का कुछ जुगाड़ कर लिया है? माली बन जाने से तो गला न छूटेगा।

होरी ने मुँह का पसीना पोंछकर कहा—उसी की चिन्ता तो मारे डालती है दादा! अनाज तो सब-का-सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पाँच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातों-रात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता। जमींदार तो एक ही है; मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग, मँगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग। किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गये। सहुआइन से फिर रुपये उधार लिये तो काम चला। सब तरह किफायत करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जनम इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहायें और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका; पर मूल ज्यों-का-त्यों सिर पर सवार है। लोग कहते हैं, सादी-गमी में, तीरथ-बरत में हाथ बाँधकर खरच करो। मुदा रास्ता कोई नहीं दिखाता। राय साहब ने बेटे के ब्याह में बीस हजार लुटा दिये। उनसे कोई कुछ नहीं कहता। मँगरू ने अपने बाप के क्रिया-करम में पाँच हजार लगाये। उनसे कोई कुछ नहीं पूछता। वैसा ही मरजाद तो सबका है।

भोला ने करुण भाव से कहा—बड़े आदमियों की बराबरी तुम कैसे कर सकते हो भाई !

'आदमी तो हम भी हैं।'

'कौन कहता है कि हम-तुम आदमी हैं। हममें आदमियत है कहाँ ? आदमी वह है, जिसके पास धन है, अख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं, उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकता। एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढे, तो कोई जाफा कैसे करे, परेम तो संसार से उठ गया।'

बूढ़ों के लिए अतीत के सुखों और वर्तमान के दु खों और भविष्य के सर्वनाश से ज्यादा मनोरंजक और कोई प्रसंग नहीं होता। दोनों मित्र अपने-अपने दुखड़े रोते रहे। भोला ने अपने बेटों के करतूत सुनाये, होरी ने अपने भाइयों का रोना रोया और तब एक कुएँ पर बोझ रखकर पानी पीने के लिए बैठ गये। गोबर ने बनिये से लोटा माँगा और पानी खींचने लगा।

भोला ने सहृदयता से पूछा—अलगौझे के समय तो तुम्हें बड़ा रंज हुआ होगा। भाइयों को तो तुमने बेटों की तरह पाला था।

होरी आर्द्र-कण्ठ से बोला—कुछ न पूछो दादा, यही जी चाहता था कि कहीं जाके डूब मरूँ। मेरे जीते-जी सब कुछ हो गया। जिनके पीछे अपनी जवानी धूल में मिला दी, वही मेरे मुद्दई हो गये, और झगड़े की जड़ क्या थी ? यही कि मेरी घरवाली हार में काम करने क्यों नहीं जाती। पूछो, घर देखनेवाला भी कोई चाहिए कि नहीं। लेना-देना, धरना-उठाना, सँभालना-सहेजना. यह कौन करे। फिर वह घर पर बैठी तो नहीं रहती थी। झाड़ू-बुहारू, रसोई, चौका-बरतन, लड़कों की देख-भाल, यह कोई थोड़ा काम है। सोभा की औरत घर सँभाल लेती, कि हीरा की औरत में यह सलीका था ? जब से अलगौझा हुआ है, दोनों घरों में एक जून रोटी पकती है। नहीं, सबको दिन में चार बार भूख लगती थी। अब खायँ चार दफे, तो देखूँ। इस मालिकपन में गोबर की मा की जो दुर्गत हुई है, वह मैं ही जानता हूँ। बेचारी अपनी देवरानियों के फटे-पुराने कपड़े पहनकर दिन काटती थी, खुद भूखी सो रही होगी ; लेकिन बहुओं के लिए जलपान तक का ध्यान रखती थी। अपनी देह पर गहने के नाम कच्चा धागा भी न था, देवरानियों के लिए दो-दो, चार-चार गहने बनवा दिये।

सोने के न सही, चाँदी के तो हैं। जलन यही थी कि यह मालिक क्यों है। बहुत अच्छा हुआ कि अलग हो गये। मेरे सिर से बला टली।

भोला ने एक लोटा पानी चढ़ाकर कहा—यही हाल घर-घर है भैया! भाइयों की बात ही क्या, यहां तो लड़कों से भी नहीं पटती और पटतो इसलिए नहीं कि मैं किसी की कुचाल देखकर मुँह नहीं बन्द कर सकता। तुम जुआ खेलोगे, चरस पीओगे, गांजे के दम लगाओगे; मगर आये किसके घर से? खरचा करना चाहते हो, तो कमाओ; मगर कमाई तो किसी से न होगी। खरच दिल खोलकर करेंगे। जेठा कामता सौदा लेकर बाजार जायगा, तो आधे पैसे गायब! पूछो तो कोई जवाब नहीं। छोटा जंगी है, वह संगत के पीछे मतवाला रहता है। साँझ हुई और ढोल-मजीरा लेकर बैठ गये। संगत को मैं बुरा नहीं कहता। गाना-बजाना ऐब नहीं; लेकिन यह सब काम फुरसत के हैं। यह नहीं कि घर का तो कोई काम न करो, आठों पहर उसी धुन में पड़े रहो। जाती है मेरे सिर; सानी-पानी मैं करूँ, गाय-भैंस मैं दुहूँ, दूध लेकर बाजार मैं जाऊँ। यह गृहस्थी जी का जंजाल है, सोने की हँसिया जिसे न उगलते बनता है, न निगलते। लड़की है झुनिया, वह भी नसीब की खोटी। तुम तो उसकी सगाई में आये थे। कितना अच्छा घर-बर था। उसका आदमी बम्बई में दूध की दूकान करता था। उन दिनों वहां हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हुआ, तो किसी ने उसके पेट में छुरा भोंक दिया। घर ही चौपट हो गया। वहां अब उसका निबाह नहीं। जाकर लिवा लाया कि दूसरी सगाई कर दूँगा; मगर वह राजी ही नहीं होती। और दोनों भावजे हैं कि रात-दिन उसे जलाती रहती हैं। घर में महाभारत मचा रहता है। बिपत की मारी यहां आई, यहां भी चैन नहीं।

इन्हीं दुखड़ों में रास्ता कट गया। भोला का पुरवा था तो छोटा; मगर बहुत गुलजार। अधिकतर अहीर ही बसते थे, और किसानों के देखते इनकी दशा बहुत बुरी न थी। भोला गांव का मुखिया था। द्वार पर बड़ी-सी चरनी थी, जिस पर दस-बारह गायें-भैंसें खड़ी सानी खा रही थीं। ओसारे में एक बड़ा-सा तख्त पड़ा था, जो शायद दस आदमियों से भी न उठता। किसी खूँटी पर ढोल लटक रही थी, किसी पर मजीरा। एक ताख पर कोई पुस्तक बस्ते में बँधी रखी हुई थी, जो शायद रामायण हो। दोनों बहुएँ सामने बैठी गोबर पाथ रही थीं और झुनिया चौखट पर खड़ी थी। उसकी आंखें लाल थीं और नाक के सिरे पर भी सुर्खी थी। मालूम होता

था, अभी रोकर उठी है। उसके मांसल, स्वस्थ, सुगठित अङ्गों में मानों यौवन लहरें मार रहा था। मुँह बड़ा और गोल था, कपोल फूले हुए, आँखें छोटी और भीतर धँसी हुई, माथा पतला ; पर वक्ष का उभार और गात का वह गुदगुदापन आँखों को खींचता था। उस पर छपी हुई गुलाबी साड़ी उसे और भी शोभा प्रदान कर रही थी।

भोला को देखते ही उसने लपककर उनके सिर से खाँचा उतरवाया। भोला ने गोबर और होरी के खाँचे उतरवाये और झुनिया से बोले—पहले एक चिलम भर ला, फिर थोड़ा-सा रस बना ले। पानी न हो तो गगरा ला, मैं खींच दूँ। होरी महतो को पहचानती है न ?

फिर होरी से बोला—घरनी के बिना घर नहीं रहता भैया। पुरानी कहावत है—'नाटन खेती, बहुरियन घर।' नाटे बैल क्या खेती करेंगे और बहुएँ क्या घर सँभालेंगी। जब से इसकी मा मरी है, जैसे घर की बरकत ही उठ गई। बहुएँ आटा पाथ लेती हैं ; पर गृहस्थी चलाना क्या जानें। हाँ, मुँह चलाना खूब जानती हैं। लौंडे कहीं फड़ पर जमे होंगे। सब-के-सब आलसी हैं, कामचोर। जब तक जीता हूँ, इनके पीछे मरता हूँ। मर जाऊँगा, तो आप सिर पर हाथ धरकर रोयेंगे। लड़की भी वैसी ही है। छोटा-सा अढ़ौना भी करेगी, तो भुनभुनाकर। मैं तो सह लेता हूँ, खसम थोड़े ही सहेगा।

झुनिया एक हाथ में भरी हुई चिलम, दूसरे में लोटे का रस लिये बड़ी फुर्ती से आ पहुँची। फिर रस्सी और कलसा लेकर पानी भरने चली। गोबर ने उसके हाथ से कलसा लेने के लिए हाथ बढ़ाकर झेंपते हुए कहा—तुम रहने दो, मैं भरे लाता हूँ।'

झुनिया ने कलसा न दिया। कुएँ की जगत पर जाकर मुस्कराती हुई बोली—तुम हमारे मेहमान हो। कहोगे, एक लोटा पानी भी किसी ने न दिया।

'मेहमान काहे से हो गया ? तुम्हारा पड़ोसी ही तो हूँ।'

'पड़ोसी साल-भर में एक बार भी सूरत न दिखाये, तो मेहमान ही है।'

'रोज़-रोज़ आने से मरजाद भी तो नहीं रहती।'

झुनिया हँसकर तिरछी नज़रों से देखती हुई बोली—वही मरजाद तो दे रही हूँ। महीने में एक बेर आओगे, ठण्डा पानी दूँगी। पन्द्रहवें दिन आओगे, चिलम पाओगे। सातवें दिन आओगे, खाली बैठने को माँची दूँगी। रोज-रोज आओगे, कुछ न पाओगे।

'दरसन तो दोगी ?'

'दरसन के लिए पूजा करनी पड़ेगी।'

यह कहते-कहते जैसे उसे कोई भूली हुई बात याद आ गई। उसका मुँह उदास हो गया। वह विधवा है। उसके नारीत्व के द्वार पर पहले उसका पति रक्षक बना बैठा रहता था। वह निश्चिन्त थी। अब उस द्वार पर कोई रक्षक न था; इसलिए वह उस द्वार को सदैव बन्द रखती है। कभी-कभी घर के सूनेपन से उकताकर वह द्वार खोलती है; पर किसी को आते देखकर भयभीत होकर दोनों पट भेड़ लेती है।

गोबर ने कलसा भरकर निकाला। सबों ने रस पिया, और एक चिलम तमाखू और पीकर लौटे। भोला ने कहा—कल तुम आकर गाय ले जाना गोबर, इस वखत तो सानी खा रही है।

गोबर की आंखें उसी गाय पर लगी हुई थीं और मन-ही-मन वह मुग्ध हुआ जाता था। गाय इतनी सुन्दर और सुडौल है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी।

होरी ने लोभ को रोककर कहा—मँगवा लूँगा, जल्दी क्या है?

'तुम्हें जल्दी न हो, हमें तो जल्दी है। उसे द्वार पर देखकर तुम्हें वह बात याद रहेगी।'

'उसकी मुझे बड़ी फिकर है दादा!'

'तो कल गोबर को भेज देना।'

दोनों ने अपने-अपने खांचे सिर पर रखे और आगे बढ़े। दोनों इतने प्रसन्न थे, मानों ब्याह करके लौटे हों। होरी को तो अपनी चिरसंचित अभिलाषा को पूरे होने का हर्ष था, और बिना पैसे के। गोबर को इससे भी बहुमूल्य वस्तु मिल गई थी। उसके मन में अभिलाषा जाग उठी थी।

अवसर पाकर उसने पीछे की तरफ़ देखा, झुनिया द्वार पर खड़ी थी, मत्त आशा की भांति अधीर, चंचल।

४

होरी को रात-भर नींद नहीं आई। नीम के पेड़-तले अपनी बांस की खाट पर पड़ा बार-बार तारों की ओर देखता था। गाय के लिए एक नांद गाड़नी है। बैलों से अलग उसकी नांद रहे तो अच्छा। अभी तो रात को बाहर ही रहेगी; लेकिन

चौमासे में उसके लिए कोई दूसरी जगह ठीक करनी होगी। बाहर लोग नजर लगा देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा टोना-टोटका कर देते हैं कि गाय का दूध ही सूख जाता है। थन में हाथ ही नहीं लगाने देती। लात मारती है। नहीं, बाहर बाँधना ठीक नहीं। और बाहर नाँद भी कौन गाड़ने देगा। कारिन्दा साहब नजर के लिए मुँह फुलायेंगे। छोटी-छोटी बात के लिए राय साहब के पास फरियाद ले जाना तो उचित नहीं। और कारिन्दे के सामने मेरी सुनता ही कौन है। उनसे कुछ कहूँ, तो कारिन्दा दुश्मन हो जाय। जल में रहकर मगर से वेर करना बुद्धकपन है। भीतर ही बाँधूँगा। आँगन है तो छोटा-सा; लेकिन एक मड़ैया डाल देने से काम चल जायगा। अभी पहला ही ब्यान है। पाँच सेर से कम क्या दूध देगी। सेर-भर तो गोबर ही को चाहिए। रुपिया दूध देखकर कैसी ललचाती रहती है। अब पिये जितना चाहे। कभी-कभी दो-चार सेर मालिकों को दे आया करूँगा। कारिन्दा साहब की पूजा भी करनी ही होगी। और भोला के रुपये भी दे देना चाहिए। सगाई के ढकोसले में उसे क्यों डालूँ। जो आदमी अपने ऊपर इतना विश्वास करे, उससे दगा करना नीचता है। अस्सी रुपये की गाय मेरे विश्वास पर दे दी। नहीं, यहाँ तो कोई एक पैसे को नहीं पतियाता। सन में क्या कुछ न मिलेगा? अगर पचीस रुपये भी दे दूँ, तो भोला को ढाढ़स हो जाय। धनिया से नाहक बता दिया। चुपके-से गाय लेकर बाँध देता, तो चकरा जाती। लगती पूछने, किसकी गाय है? कहाँ से लाये हो? खूब दिक करके तब बताता; लेकिन जब पेट में बात पचे भी। कभी दो-चार पैसे ऊपर से आ जाते हैं, उनको भी तो नहीं छिपा सकता। और यह अच्छा भी है। उसे घर की चिन्ता रहती है; अगर उसे मालूम हो जाय कि इनके पास भी पैसे रहते हैं, तो फिर नखड़े बघारने लगे। गोबर जरा आलसी है, नहीं में गऊ की ऐसी सेवा करता कि जैसी चाहिए। आलसी-वालसी कुछ नहीं है। इस उमिर में कौन आलसी नहीं होता। मैं भी दादा के सामने मटरगश्ती ही किया करता था। बेचारे पहर रात से कुट्टी काटने लगते। कभी द्वार पर झाड़ू लगाते, कभी खेत में खाद फेंकते। मैं पड़ा सोता रहता था। कभी जगा देते, तो मैं बिगड़ जाता और घर छोड़कर भाग जाने की धमकी देता था। लड़के जब अपने माँ-बाप के सामने भी ज़िन्दगी का थोड़ा-सा सुख न भोगेंगे, तो फिर जब अपने सिर पड़ गई तो क्या भोगेंगे? दादा के मरते ही क्या मैंने घर नहीं सँभाल लिया? सारा गाँव यही कहता

था कि होरी घर बरबाद कर देगा ; लेकिन सिर पर बोझ पड़ते ही मैंने ऐसा चोला बदला कि लोग देखते रह गये। सोभा और हीरा अलग ही हो गये, नहीं आज इस घर की और ही बात होती। तीन हल एक साथ चलते थे। अब तीनों अलग-अलग चलते हैं। बस समय का फेर है। धनिया का क्या दोष था। बेचारी जब से घर में आई, कभी तो आराम से न बैठी। डोली से उतरते ही सारा काम सिर पर उठा लिया। अम्माँ को पान की तरह फेरती रहती थी। जिसने घर के पीछे अपने को मिटा दिया, देवरानियों से काम करने को कहती थी, तो क्या बुरा करती थी। आखिर उसे भी तो कुछ आराम मिलना चाहिए, लेकिन भाग्य में आराम लिखा होता तब तो मिलता। तब देवरों के लिए मरती थी, अब अपने बच्चों के लिए मरती है। वह इतनी सीधी, गमखोर, निर्छल न होती, तो आज सोभा और हीरा जो मूँछों पर ताव देते फिरते हैं, कहीं भीख माँगते होते। आदमी कितना स्वार्थी हो जाता है। जिसके लिए मरो, वही जान का दुश्मन हो जाता है।

होरी ने फिर पूर्व की ओर देखा। साइत भिनसार हो रहा है। गोबर काहे को जागने लगा, नहीं कहके तो यही सोया था कि मैं अँधेरे ही अँधेरे चला जाऊँगा। जाकर नाँद तो गाड़ दूँ, लेकिन नहीं, जब तक गाय द्वार पर न आ जाय, नाँद गाड़ना ठीक नहीं। कहीं भोला बदल गये या और किसी कारन से गाय न दी, तो सारा गाँव तालियाँ पीटने लगेगा, चले थे गाय लेने। पट्ठे ने इतनी फुर्ती से नाँद गाड़ दी, मानों इसी की कसर थी। भोला है तो अपने घर का मालिक; लेकिन जब लड़के सयाने हो गये, तो बाप की कौन चलती है। कामता और जंगी अकड़ जायँ, तो क्या भोला अपने मन से गाय मुझे दे देंगे, कभी नहीं।

सहसा गोबर चौंककर उठ बैठा और आँखें मलता हुआ बोला—अरे! यह तो भोर हो गया। तुमने नाँद गाड़ दी दादा?

होरी गोबर के सुगठित शरीर और चौड़ी छाती की ओर गर्व से देखकर और मन में यह सोचते हुए कि कहीं इसे गोरस मिलता तो कैसा पट्ठा हो जाता, बोला—नहीं गाड़ी। सोचा, कहीं न मिले, तो नाहक भद्द हो।

गोबर ने त्योरी चढ़ाकर कहा—मिलेगी क्यों नहीं?

'उनके मन में कोई चोर पैठ जाय?'

'चोर पैठे या डाकू, गाय तो उन्हें देनी ही पड़ेगी।'

गोबर ने और कुछ न कहा। लाठी कन्धे पर रखी और चल दिया।

होरी उसे जाते देखता हुआ अपना कलेजा ठण्ढा करता रहा। अब लड़के की सगाई में देर न करनी चाहिए। सत्रहवाँ लग गया; मगर करे कैसे ? कहीं पैसे के भी दरसन हों। जब से तीनों भाइयों में अलगौझा हो गया, घर की साख जाती रही। महतो लड़का देखने आते हैं; पर घर की दशा देखकर मुँह फीका करके चले जाते हैं। दो-एक राजी भी हुए, तो रुपये माँगते हैं। दो-तीन सौ लड़की का दाम चुकाये और इतना ही ऊपर से खर्च करे, तब जाकर ब्याह हो। कहाँ से आयें इतने रुपये। रास खलिहान में तुल जाती है। खाने-भर को भी नहीं बचता। ब्याह कहाँ से हो। और अब तो सोना ब्याहने योग्य हो गई। लड़के का ब्याह न हुआ, न सही। लड़की का ब्याह न हुआ, तो सारी बिरादरी में हँसी होगी। पहले तो उसी की सगाई करनी है, पीछे देखी जायगी।

एक आदमी ने आकर राम-राम किया और पूछा—तुम्हारी कोठी में कुछ बाँस होंगे महतो ?

होरी ने देखा, दमड़ी बँसोर सामने खड़ा है, नाटा, काला, खूब मोटा, चौड़ा मुँह, बड़ी-बड़ी मूँछें, लाल-लाल आँखें, कमर में बाँस काटने की कटार खोंसे हुए। साल में एक-दो बार आकर चिकें, कुरसियाँ, मोढ़े, टोकरियाँ आदि बनाने के लिए कुछ बाँस काट ले जाता था।

होरी प्रसन्न हो गया। मुट्ठी गर्म होने की कुछ आशा बँधी। चौधरी को ले जाकर अपनी तीनों कोठियाँ दिखाईं, मोल-भाव किया और पचीस रुपये सैकड़े में पचास बाँसों का बयाना ले लिया। फिर दोनों लौटे। होरी ने उसे चिलम पिलाई, जलपान कराया और तब रहस्यमय भाव से बोला—मेरे बाँस कभी तीस रुपये से कम में नहीं जाते; लेकिन तुम घर के आदमी हो, तुमसे क्या मोल-भाव करता। तुम्हारा वह लड़का, जिसकी सगाई हुई थी, अभी परदेश से लौटा कि नहीं ?

चौधरी ने चिलम का दम लगाकर खाँसते हुए कहा—उस लौंडे के पीछे तो मर मिटा महतो! जवान औरत घर में बैठी थी और वह बिरादरी की एक दूसरी औरत के साथ परदेश में मौज करने चल दिया। बहू भी दूसरे के साथ निकल गई। बड़ी नाकिस जात है महतो, किसी की नहीं होती। कितना समझाया कि तू जो चाहे खा, जो चाहे पहन, मेरी नाक न कटवा, मुदा कौन सुनता है। औरत को भगवान्

सब कुछ दे, रूप न दे, नहीं वह काबू में नहीं रहती। कोठियाँ तो बँट गई होंगी?

होरी ने आकाश की ओर देखा और मानों उसकी महानता में उड़ता हुआ बोला—सब कुछ बँट गया चौधरी! जिनको लड़कों की तरह पाला-पोसा, वह अब बराबर के हिस्सेदार हैं; लेकिन भाई का हिस्सा खाने की अपनी नीयत नहीं है। इधर तुमसे रुपये मिलेंगे, उधर दोनों भाइयों को बाँट दूँगा। चार दिन की जिन्दगी में क्यों किसी से छल-कपट करूँ। नहीं, कह दूँ कि बीस रुपये सैकड़े में बेचे हैं, तो उन्हें क्या पता चलेगा। तुम उनसे कहने थोड़े ही जाओगे। तुम्हें तो मैंने बराबर अपना भाई समझा है।

व्यवहार में हम 'भाई' के अर्थ का कितना ही दुरुपयोग करें; लेकिन उसकी भावना में जो पवित्रता है, वह हमारी कालिमा से कभी मलिन नहीं होती।

होरी ने अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रस्ताव करके चौधरी के मुँह की ओर देखा कि वह स्वीकार करता है या नहीं। उसके मुख पर कुछ ऐसा मिथ्या विनीत भाव प्रकट हुआ, जो भिक्षा माँगते समय मोटे भिक्षुकों के मुँह पर आ जाता है।

चौधरी ने होरी का आसन पाकर चाबुक जमाया—हमारा-तुम्हारा पुराना भाई-चारा है महतो, ऐसी बात है भला, लेकिन बात यह है कि ईमान आदमी बेचता है, तो किसी लालच से। बीस रुपये नहीं, मैं पन्द्रह रुपये कहूँगा; लेकिन जो बीस रुपये के दाम लो।

होरी ने खिसियाकर कहा—तुम तो चौधरी अन्धेर करते हो, बीस रुपये में कहीं ऐसे बाँस जाते हैं?

'ऐसे क्या, इससे अच्छे बाँस जाते हैं दस रुपये पर, हाँ, दस कोस और पच्छिम चले जाओ। मोल बाँस का नहीं है, सहर के नगीच होने का है। आदमी सोचता है, जितनी देर वहाँ जाने में लगेगी, उतनी देर में तो दो-चार रुपये का काम हो जायगा।'

सौदा पट गया। चौधरी ने मिर्जई उतारकर छान पर रख दी और बाँस काटने लगा।

ऊख की सिंचाई हो रही थी। हीरा-बहू कलेवा लेकर कुएँ पर जा रही थी। चौधरी को बाँस काटते देखकर घूँघट के अन्दर से बोली—कौन बाँस काटता है? यहाँ बाँस न कटेंगे।

चौधरी ने हाथ रोककर कहा—बाँस मोल लिये हैं, पन्द्रह रुपये सैकड़े का बयाना हुआ है। सेंत में नहीं काट रहे हैं।

हीरा-बहू अपने घर की मालकिन थी। उसी के विद्रोह से भाइयों में अलगौझा हुआ था। धनिया को परास्त करके शेर हो गई थी। हीरा कभी-कभी उसे पीटता था। अभी हाल में इतना मारा था कि वह कई दिन तक खाट से न उठ सकी; लेकिन अपना पदाधिकार वह किसी तरह न छोड़ती थी। हीरा क्रोध में उसे मारता था; लेकिन चलता था उसी के इशारों पर, उस घोड़े की भाँति जो कभी-कभी स्वामी को लात मारकर भी उसी के आसन के नीचे चलता है।

कलेवे की टोकरी सिर से उतारकर बोली—पन्द्रह रुपये में हमारे बाँस न जायँगे।

चौधरी औरत जात से इस विषय में बातचीत करना नीति-विरुद्ध समझता था। बोला—जाकर अपने आदमी को भेज दे। जो कुछ कहना हो; आकर कहें।

हीरा-बहू का नाम था पुन्नी। बच्चे दो ही हुए थे; लेकिन ढल गई थी। बनाव-सिंगार से समय के आघात का शमन करना चाहती थी; लेकिन गृहस्थी में भोजन ही का ठिकाना न था, सिंगार के लिए पैसे कहाँ से आते। इस अभाव और विवशता ने उसकी प्रकृति का जल सुखाकर कठोर और शुष्क बना दिया था, जिस पर एक बार फावड़ा भी उचट जाता था।

समीप आकर चौधरी का हाथ पकड़ने की चेष्टा करती हुई बोली—आदमी को क्यों भेज दूँ। जो कुछ कहना हो, मुझसे कहो न। मैंने कह दिया, मेरे बाँस न कटेंगे।

चौधरी हाथ छुड़ाता था, और पुन्नी बार-बार पकड़ लेती थी। एक मिनट तक यही हाथा-पाई होती रही। अन्त में चौधरी ने उसे ज़ोर से पीछे ढकेल दिया। पुन्नी धक्का खाकर गिर पड़ी; मगर फिर सँभली और पाँव से तली निकालकर चौधरी के सिर, मुँह, पीठ पर अन्धाधुन्ध जमाने लगी। बँसोर होकर उसे ढकेल दे? उसका यह अपमान! मारती जाती थी और रोती भी जाती थी। चौधरी उसे धक्का देकर—नारी-जाति पर बल का प्रयोग करके—गच्चा खा चुका था। खड़े-खड़े मार खाने के सिवा इस संकट से बचने की उसके पास और कोई दवा न थी।

पुन्नी का रोना सुनकर होरी भी दौड़ा हुआ आया। पुन्नी ने उसे देखकर और

ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया। होरी ने समझा, चौधरी ने पुनिया को मारा है। .खून ने जोश मारा और अलगौझे की ऊँची बाँध को तोड़ता हुआ, सब कुछ अपने अन्दर समेटने के लिए बाहर निकल पड़ा। चौधरी को ज़ोर से एक लात जमाकर बोला—अब अपना भला चाहते हो चौधरी, तो यहाँ से चले जाओ, नहीं तुम्हारी लहास उठेगी। तुमने अपने को समझा क्या है? तुम्हारी इतनी मजाल है कि मेरी बहू पर हाथ उठाओ!

चौधरी क़समें खा-खाकर अपनी सफ़ाई देने लगा। तल्लियों की चोट में उसकी अपराधी आत्मा मौन थी। यह लात उसे निरपराध मिली और उसके फूले हुए गाल आँसुओं से भींग गये। उसने तो बहू को छुआ भी नहीं। क्या वह इतना गँवार है कि महतो के घर की औरतों पर हाथ उठायेगा।

होरी ने अविश्वास करके कहा—आँखों में धूल मत झोंको चौधरी, तुमने कुछ कहा नहीं, तो बहू झूठ-मूठ रोती है? रुपये की गर्मी है, तो वह निकाल दी जायगी। अलग हैं, तो क्या हुआ, है तो एक खून। कोई तिरछी आँख से देखे, तो आँख निकाल लें।

पुन्नी चण्डी बनी हुई थी। गला फाड़कर बोली— तूने मुझे धक्का देकर गिरा नहीं दिया? खा अपने बेटे की क़सम!

हीरा को भी खबर मिली कि चौधरी और पुनिया में लड़ाई हो रही है। चौधरी ने पुनिया को धक्का दिया। पुनिया ने उसे तल्लियों से पीटा। उसने पुर वहीं छोड़ा और औंगी लिये घटनास्थल की ओर चला। हीरा गाँव में अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध था। छोटा डील, गठा हुआ शरीर, आँखें कौड़ी की तरह निकल आई थीं और गर्दन की नसें तन गई थीं; मगर उसे चौधरी पर क्रोध न था, क्रोध था पुनिया पर। वह क्यों चौधरी से लड़ी? क्यों उसकी इज्जत मिट्टी में मिला दी? बँसोर से लड़ने-झगड़ने का उसे क्या प्रयोजन था? उसे जाकर हीरा से सारा समाचार कह देना चाहिए था। हीरा जैसा उचित समझता, करता। वह उससे लड़ने क्यों गई? उसका बस होता, तो वह पुनिया को पर्दे में रखता। पुनिया किसी बड़े से मुँह खोलकर बातें करे, यह उसे असह्य था। वह .खुद जितना उद्दण्ड था, पुनिया को उतना ही शान्त रखना चाहता था। जब भैया ने पन्द्रह रुपये में सौदा कर लिया, तो वह बीच में कूदनेवाली कौन?

आते ही उसने पुन्नी का हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ अलग ले जाकर लगा लातें जमाने—हरामजादी, तू हमारी नाक काटने पर लगी हुई है! तू छोटे-छोटे आदमियों से लड़ती फिरती है, किसकी पगड़ी नीची होती है, बता! (एक लात और जमाकर) हम तो वहाँ कलेऊ की बाट देख रहे हैं, तू यहाँ लड़ाई ठाने बैठी है। इतनी बेसर्मी! आँख का पानी ऐसा गिर गया! खोदकर गाड़ दूँगा।

पुन्नी हाय-हाय करती जाती थी और कोसती जाती थी, तेरी मिट्टी उठे, तुझे हैजा हो जाय, तुझे मरी आये, देवी मैया तुझे लील जायँ, तुझे इनफ्लुइंजा हो जाय; भगवान् करें, तू कोढ़ी हो जाय, हाथ-पाँव कट-कट गिरें।

और गालियाँ तो हीरा खड़ा-खड़ा सुनता रहा; लेकिन यह पिछली गाली उसे लग गई। हैजा, मरी आदि में विशेष कष्ट न था। इधर बीमार पड़े, उधर बिदा हो गये; लेकिन कोढ़! यह घिनौनी मौत, और उससे भी घिनौना जीवन। वह तिल-मिला उठा, दाँत पीसता हुआ फिर पुनिया पर झपटा और झोंटे पकड़कर उसका सिर ज़मीन पर रगड़ता हुआ बोला—हाथ-पाँव कटकर गिर जायँगे, तो मैं तुझे लेकर चाटूँगा! तू ही मेरे बाल-बच्चों को पालेगी? ऐं, तू ही इतनी बड़ी गिरस्ती चलायेगी? तू तो दूसरा भतार करके किनारे खड़ी हो जायगी।

चौधरी को पुनिया की इस दुर्गति पर दया आ गई। हीरा को उदारता-पूर्वक समझाने लगा—हीरा महतो, अब जाने दो, बहुत हुआ। क्या हुआ, बहू ने मुझे मारा। मैं तो छोटा नहीं हो गया। धन्य भाग कि भगवान् ने यह दिन तो दिखाया।

हीरा ने चौधरी को डाँटा—तुम चुप रहो चौधरी, नहीं मेरे क्रोध में पड़ जाओगे, तो बुरा होगा। औरत जात इसी तरह बकती है। आज तो तुमसे लड़ गई, कल को दूसरों से लड़ जायगी। तुम भलेमानस हो, हँसकर टाल गये, दूसरा तो बरदास न करेगा। कहीं उसने भी हाथ छोड़ दिया, तो कितनी आबरू रह जायगी, बताओ!

इस खयाल ने उसके क्रोध को फिर भड़काया। लपका था कि होरी ने दौड़कर पकड़ लिया और उसे पीछे हटाते हुए बोला—अरे तो हो तो गया। देख तो लिया दुनिया ने कि बड़े बहादुर हो। अब क्या उसे पीसकर पी जाओगे?

हीरा अब भी बड़े भाई का अदब करता था। सीधे-सीधे न लड़ता था। चाहता तो एक झटके में अपना हाथ छुड़ा लेता; लेकिन इतनी बेअदबी न कर सका।

चौधरी की ओर देखकर बोला—अब क्या खड़े ताकते हो। जाकर अपने बाँस काटो। मैंने सही कर दिया। पन्द्रह रुपये सैकड़े में तय है।

कहाँ तो पुन्नी बैठी रो रही थी। कहाँ झमककर उठी और अपना सिर पीटकर बोली—लगा दे घर में आग, मुझे क्या करना है। भाग फूट गया कि तुझ-जैसे कसाई के पाले पड़ी। लगा दे घर में आग।

उसने कलेऊ की टोकरी वहीं छोड़ दी और घर की ओर चली। हीरा गरजा—वहाँ कहाँ जाती है, चल कुएँ पर, नहीं खून पी जाऊँगा।

पुनिया के पाँव रुक गये। इस नाट्य का दूसरा अङ्क न खेलना चाहती थी। चुपके से टोकरी उठाकर रोती हुई कुएँ की ओर चली। हीरा भी पीछे-पीछे चला।

होरी ने कहा—अब फिर मार-धाड़ न करना। इससे औरत बेसरम हो जाती है।

धनिया ने द्वार पर आकर हाँक लगाई—तुम वहाँ खड़े-खड़े क्या तमाशा देख रहे हो। कोई तुम्हारी सुनता भी है, कि यों ही शिक्षा दे रहे हो। उस दिन इसी बहू ने तुम्हें घूँघट की आड़ में डाढ़ीजार कहा था, भूल गये? बहुरिया होकर पराये मरदों से लड़ेगी, तो डाँटी न जायगी।

होरी द्वार पर आकर नटखटपन के साथ बोला—और जो मैं इसी तरह तुझे मारूँ?

'क्या कभी मारा नहीं है, जो मारने की साध बनी हुई है?'

'इतनी बेदरदी से मारता, तो तू घर छोड़कर भाग जाती। पुनिया बड़ी गमखोर है।'

'ओ हो! ऐसे ही तो बड़े दरदवाले हो। अभी तक मार का दाग बना हुआ है। हीरा मारता है तो दुलारता भी है। तुमने खाली मारना सीखा, दुलार करना सीखा ही नहीं। मैं ही ऐसी हूँ कि तुम्हारे साथ निबाह हुआ।'

'अच्छा रहने दे, बहुत अपना बखान न कर। तू ही रूठ-रूठकर नैहर भागती थी। जब महीनों खुशामद करता था, तब जाकर आती थी।'

'जब अपनी गरज सताती थी, तब मनाने जाते थे लाला! मेरे दुलार से नहीं जाते थे।'

'इसी से तो मैं सबसे तेरा बखान करता हूँ।'

वैवाहिक-जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं, और पृथ्वी काँपने लगती है। लालसा का सुनहरा आवरण हट जाता है, और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय सन्ध्या आती है, शीतल और शांत, जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन-भर की यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं, तटस्थ भाव से, मानों हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहाँ नीचे का जन-रव हम तक नहीं पहुँचता।

धनिया ने आँखों में रस भरकर कहा—चलो-चलो, बड़े बखान करनेवाले। ज़रा-सा कोई काम बिगड़ जाय, तो गरदन पर सवार हो जाते हो।

होरी ने मीठे उलाहने के साथ कहा—ले अब यही तेरी बेइन्साफ़ी मुझे अच्छी नहीं लगती धनिया! भोला से पूछ, मैंने उनसे तेरे बारे में क्या कहा था?

धनिया ने बात बदलकर कहा—देखो, गोबर गाय लेकर आता है कि खाली हाथ।

'भोला अच्छा आदमी है; लेकिन लड़के बड़े कपूत हैं। मुझे तो डर लग रहा है, कहीं सबों ने गोल माल न कर दिया हो।'

चौधरी ने पसीने में लथ-पथ आकर कहा—महतो, चलकर बाँस गिन लो। कल ठेला लाकर उठा ले जाऊँगा।

होरी ने बाँस गिनने की कोई ज़रूरत न समझी। चौधरी ऐसा आदमी नहीं है। फिर एकाध बाँस बेसी ही काट लेगा, तो क्या। रोज ही तो मँगनी बाँस कटते रहते हैं। सहालगों में तो मण्डप बनाने के लिए लोग दरजनों बाँस काट ले जाते हैं।

चौधरी ने साढ़े सात रुपये निकालकर उसके हाथ पर रख दिये। होरी ने गिनकर कहा—और निकालो। हिसाब से ढाई और होते हैं।

चौधरी ने बेमुरौवती से कहा—पन्द्रह रुपये में तय हुए हैं कि नहीं?

'पन्द्रह रुपये में नहीं, बीस रुपये में।'

'हीरा महतो ने तुम्हारे सामने पन्द्रह रुपये कहे थे। कहो तो बुला लाऊँ।'

'तय तो बीस रुपये में ही हुए थे चौधरी! अब तुम्हारी जीत है, जो चाहे कहो। ढाई रुपये निकलते हैं, तुम दो ही दे दो।'

मगर चौधरी कच्ची गोलियाँ न खेला था ! अब उसे किसका डर। होरी के मुँह में तो ताला पड़ा हुआ था। क्या कहे, माथा ठोककर रह गया, बस इतना बोला—यह अच्छी बात नहीं है, चौधरी, दो रुपये दबाकर राजा न हो जाओगे।

चौधरी तीक्ष्ण स्वर में बोला—और तुम क्या भाइयों के थोड़े-से पैसे दबाकर राजा हो जाओगे ? ढाई रुपये पर अपना ईमान बिगाड़ रहे थे, उस पर मुझे उपदेश देते हो। अभी परदा खोल दूँ, तो सिर नीचा हो जाय।

होरी पर जैसे सैकड़ों जूते पड़ गये। चौधरी तो रुपये सामने जमीन पर रखकर चला गया; पर वह नीम के नीचे बैठा बड़ी देर तक पछताता रहा। वह कितना लोभी और स्वार्थी है, इसका उसे आज पता चला। चौधरी ने ढाई रुपए दे दिये होते, तो वह खुशी से कितना फूल उठता। अपनी चालाकी को सराहता कि बैठे-बैठाये ढाई रुपये मिल गये। ठोकर खाकर ही तो हम सावधानी के साथ पग उठाते हैं।

धनिया अन्दर चली गई थी। बाहर आई तो रुपये जमीन पर पड़े देखे। गिनकर बोली—और रुपये क्या हुए, दस न चाहिए ?

होरी ने लम्बा मुँह बनाकर कहा—हीरा ने पन्द्रह रुपये में दे दिये, तो मैं क्या करता।

'हीरा पाँच रुपये में दे दे। हम नहीं देते इन दामों !'

'वहाँ मार-पीट हो रही थी। मैं बीच में क्या बोलता।'

होरी ने अपनी पराजय अपने मन में ही डाल ली; जैसे कोई चोरी से आम तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़े और गिर पड़ने पर धूल झाड़ता हुआ उठ खड़ा हो कि कोई देख न ले। जीतकर आप अपनी धोखेबाज़ियों की डींग मार सकते हैं, जीत में सब कुछ माफ़ है। हार की लज्जा तो पी जाने की ही वस्तु है।

धनिया पति को फटकारने लगी। ऐसे सुअवसर उसे बहुत कम मिलते थे। होरी उससे चतुर था; पर आज बाजी धनिया के हाथ थी। हाथ मटकाकर बोली—क्यों न हो, भाई ने पन्द्रह रुपये कह दिये, तो तुम कैसे टोकते। अरे राम-राम ! लाड़ले भाई का दिल छोटा हो जाता कि नहीं। फिर जब इतना बड़ा अनर्थ हो रहा था कि लाड़ली बहू के गले पर छुरी चल रही थी, तो भला तुम कैसे बोलते। उस बखत कोई तुम्हारा सरबस लूट लेता, तो भी तुम्हें सुध न होती।

होरी चुपचाप सुनता रहा। मिनका तक नहीं। झुँझलाहट हुई, क्रोध आया,

खून खौला, आँख जली, दाँत पिसे ; लेकिन बोला नहीं। चुपके से कुदाल उठाई और ऊख गोड़ने चला।

धनिया ने कुदाल छीनकर कहा—क्या अभी सबेरा है, जो ऊख गोड़ने चले। सूरज देवता माथे पर आ गये। नहाने-धोने जाव। रोटी तैयार है।

होरी ने घुन्नाकर कहा—मुझे भूख नहीं है।

धनिया ने जले पर नोन छिड़का—हाँ, काहे को भूख लगेगी, भाई ने बड़े-बड़े लड्डू खिला दिये हैं न। भगवान् ऐसे सपूत भाई सबको दें।

होरी बिगड़ा। क्रोध अब रस्सियाँ तुड़ा रहा था—तू आज मार खाने पर लगी हुई है?

धनिया ने नक़ली विनय का नाटय करके कहा—क्या करूँ, तुम दुलार ही इतना करते हो कि मेरा सिर फिर गया है।

'तू घर में रहने देगी कि नहीं ?'

'घर तुम्हारा, मालिक तुम, मैं भला कौन होती हूँ तुम्हें घर से निकालनेवाली।'

होरी आज धनिया से किसी तरह पेश नहीं पा सकता। उसकी अक्ल जैसे कुन्द हो गई है। इन व्यग्य-वाणों के रोकने के लिए उसके पास कोई ढाल नहीं है। धीरे से कुदाल रख दी और गमछा लेकर नहाने चला गया। लौटा कोई आध घण्टे में ; मगर गोबर अभी तक न आया था। अकेले कैसे भोजन करे। लौंडा वहाँ जाकर सो रहा। भोला की वह मदमाती छोकरी नहीं है झुनिया। उसके साथ हँसी-दिल्लगी कर रहा होगा। कल भी तो उसके पीछे लगा हुआ था। नहीं गाय दी, तो लौट क्यों नहीं आया। क्या वहाँ ढई देगा।

धनिया ने कहा—अब खड़े क्या हो ? गोबर साँझ को आवेगा।

होरी ने और कुछ न कहा। कहीं धनिया फिर न कुछ कह बैठे।

भोजन करके नीम की छाँह में लेट रहा।

रूपा रोती हुई आई, नगे बदन एक लँगोटी लगाये, झबरे बाल इधर-उधर बिखरे हुए। होरी की छाती पर लोट गई। उसकी बड़ी बहन सोना कहती है—गाय आयेगी, तो उसका गोबर मैं पाथूँगी। रूपा यह नहीं बरदाश्त कर सकती। सोना ऐसी कहाँ की बड़ी रानी है कि सारा गोबर आप पाथ डाले। रूपा उससे किस बात में कम है। सोना रोटी पकाती है, तो क्या रूपा बरतन नहीं माँजती ? सोना पानी

लाती है, तो क्या रूपा कुएँ पर रस्सी नहीं ले जाती ? सोना तो कलसा भरकर अठिलाती चली आती है। रस्सी समेटकर रूपा ही लाती है। गोबर दोनों साथ पाथती हैं। सोना खेत गोड़ने जाती है, तो क्या रूपा बकरी चराने नहीं जाती। फिर सोना क्यों अकेली गोबर पाथेगी ? यह अन्याय रूपा कैसे सहे।

होरी ने उसके भोलेपन पर मुग्ध होकर कहा—नहीं, गाय का गोबर तू पाथना। सोना गाय के पास जाय, तो भगा देना।

रूपा ने पिता के गले में हाथ डालकर कहा—दूध भी मैं ही दुहूँगी।

'हाँ हाँ, तू न दुहेगी, तो और कौन दुहेगा ?'

'वह मेरी गाय होगी।'

'हाँ, सोलहों आने तेरी।'

रूपा प्रसन्न होकर अपनी विजय का शुभ समाचार पराजिता सोना को सुनाने चली गई। गाय मेरी होगी, उसका दूध मैं दुहूँगी, उसका गोबर मैं पाथूँगी, तुझे कुछ न मिलेगा।

सोना उम्र से किशोरी, देह की गठन में युवती और बुद्धि से बालिका थी, जैसे उसका यौवन उसे आगे खींचता था, बालपन पीछे। कुछ बातों में इतनी चतुर कि ग्रेजुएट युवतियों को पढ़ाये, कुछ बातों में इतनी अल्हड़ कि शिशुओं से भी पीछे। लम्बा, रूखा, किन्तु प्रसन्न-मुख, ठोढ़ी नीचे को खिंची हुई, आँखों में एक प्रकार की तृप्ति, न केशों में तेल, न आँखों में काजल, न देह पर कोई आभूषण, जैसे गृहस्थी के भार ने यौवन को दबाकर बौना कर दिया हो।

सिर को एक झटका देकर बोली—जा, तू गोबर पाथ। जब तू दूध दुहकर रखेगी, तो मैं पी जाऊँगी।

'मैं दूध की हाँड़ी ताले में बन्द करके रखूँगी।'

'मैं ताला तोड़कर दूध निकाल लाऊँगी।'

यह कहती हुई वह बाग़ की तरफ़ चल दी। आम गदरा गये थे। हवा के झोंकों से एकाध ज़मीन पर गिर पड़ते थे, लू के मारे चुचके, पीले; लेकिन बालवृन्द उन्हें टपके समझकर बाग़ को घेरे रहते थे। रूपा भी बहन के पीछे हो ली। जो काम सोना करे, वह रूपा ज़रूर करेगी। सोना के विवाह की बातचीत हो रही थी, रूपा के विवाह की कोई चर्चा नहीं करता; इसलिए वह स्वयं अपने विवाह के लिए आग्रह

करती है। उसका दूल्हा कैसा होगा, क्या-क्या लायेगा, उसे कैसे रखेगा, उसे क्या खिलायेगा, क्या पहनायेगा, इसका वह बड़ा विशद वर्णन करती, जिसे सुनकर कदाचित् कोई बालक उससे विवाह करने पर राज़ी न होता।

साँझ हो रही थी। होरी ऐसा अलसाया कि ऊख गोड़ने न जा सका। बैलों को नाँद में लगाया, सानी-खली दी और एक चिलम भरकर पीने लगा। इस फ़सल में सब कुछ खलिहान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ का क़र्ज था, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे। मँगरू साह से आज पाँच साल हुए बैल के लिए साठ रुपये लिये थे। उसमें साठ दे चुका था; पर वह साठ रुपये ज्यों-के-त्यों बने हुए थे। दातादीन पंडित से तीस रुपये लेकर आलू बोये थे। आलू तो चोर खोद ले गये, और उस तीस के इन तीन बरसों में सौ हो गये थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी जो गाँव में नोन, तेल, तमाखू की दूकान रखे हुए थी। बटवारे के समय उससे चालीस रुपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रुपये हो गये थे; क्योंकि आने रुपये का ब्याज था। लगान के भी अभी पच्चीस रुपये बाक़ी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रुपयों का भी कोई प्रबन्ध करना था। बाँसों के रुपये बड़े अच्छे समय पर मिल गये। शगुन की समस्या हल हो जायगी; लेकिन कौन जाने। यहाँ तो एक धेला भी हाथ में आ जाय, तो गाँव में शोर मच जाता है, और लेन-दार चारों तरफ़ से नोचने लगते हैं; ये पाँच रुपये तो वह शगुन में देगा, चाहे कुछ हो जाय; मगर अभी ज़िन्दगी के दो बड़े-बड़े काम सिर पर सवार थे। गोबर और सोना का विवाह। बहुत हाथ बाँधने पर भी तीन सौ से कम खर्च न होंगे। ये तीन सौ किसके घर से आयेंगे। कितना चाहता है कि किसी से एक पैसा क़र्ज़ न ले, जिसका आता है, उसका पाई-पाई चुका दे; लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता। इसी तरह सूद बढ़ता जायगा और एक दिन उसका घर-द्वार सब नीलाम हो जायगा, उसके बाल-बच्चे निराश्रय होकर भीख माँगते फिरेंगे। होरी जब काम-धन्धे से छुट्टी पाकर चिलम पीने लगता था, तो यह चिंता एक काली दीवार की भाँति चारों ओर से घेर लेती थी, जिसमें से निकलने की उसे कोई गली न सूझती थी; अगर संतोष था, तो यही कि यह विपत्ति अकेले उसी के सिर न थी। प्रायः सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी। सोभा और हीरा को उससे अलग हुए अभी कुल तीन साल हुए थे; मगर दोनों पर

चार-चार सौ का बोझ लद गया था। झींगुर दो हल की खेती करता है। उस पर एक हज़ार से कुछ बेसी ही देना है। जियावन महतो के घर भिखारी भीख भी नहीं पाता; लेकिन क़रज़े का कोई ठिकाना नहीं। यहाँ कौन बचा है।

सहसा सोना और रूपा दोनों दौड़ी हुई आईं और एक साथ बोलीं—भैया गाय ला रहे हैं। आगे-आगे गाय, पीछे-पीछे भैया हैं।

रूपा ने पहले गोबर को आते देखा था, यह ख़बर सुनाने की सुर्ख़रूई उसे मिलनी चाहिए थी। सोना बराबर की हिस्सेदार हुई जाती है, यह उससे कैसे सहा जाता।

उसने आगे बढ़कर कहा—पहले मैंने देखा था। तभी दौड़ी। बहन ने तो पीछे से देखा।

सोना इस दावे को स्वीकार न कर सकी। बोली—तूने भैया को कहाँ पहचाना। तू तो कहती थी, कोई गाय भागी आ रही है। मैंने ही कहा, भैया हैं।

दोनों फिर बाग़ की तरफ़ दौड़ीं, गाय का स्वागत करने के लिए।

धनिया और होरी दोनों गाय बाँधने का प्रबन्ध करने लगे। होरी बोला—चलो, जल्दी से नाँद गाड़ दें?

धनिया के मुख पर जवानी चमक उठी थी—नहीं, पहले थाली में थोड़ा-सा आटा और गुड़ घोलकर रख दें। बेचारी धूप में चली होगी। प्यासी होगी। तुम जाकर नाँद गाड़ो, मैं घोलती हूँ।

'कहीं एक घण्टी पड़ी थी। उसे ढूँढ ले। उसके गले में बाँधेंगे।'

'सोना कहाँ गई। सहुआइन की दूकान से थोड़ा-सा काला डोरा मँगवा लो। गाय को नजर बहुत लगती है।'

'आज मेरे मन की बड़ी भारी लालसा पूरी हो गई।'

धनिया अपने हार्दिक उल्लास को दबाये रखना चाहती थी। इतनी बड़ी सम्पदा अपने साथ कोई नई बाधा न लाये, यह शका उसके निराश हृदय में कम्पन डाल रही थी। आकाश की ओर देखकर बोली—गाय के आने का आनन्द तो जब है कि उसका पौरा भी अच्छा हो। भगवान् के मन की बात है।

मानों वह भगवान् को भी धोखा देना चाहती थी। भगवान् को भी दिखाना चाहती थी कि इस गाय के आने से उसे इतना आनन्द नहीं हुआ कि ईर्ष्यालु भगवान् सुख का पलरा ऊँचा करने के लिए कोई नई विपत्ति भेज दें।

वह अभी आटा घोल ही रही थी कि गोबर गाय को लिये, बालकों के एक जुलूस के साथ द्वार पर आ पहुँचा। होरी दौड़कर गाय के गले से लिपट गया। धनिया ने आटा छोड़ दिया और जल्दी से एक पुरानी साड़ी का काला किनारा फाड़कर गाय के गले में बाँध दिया।

होरी श्रद्धाविह्वल नेत्रों से गाय को देख रहा था, मानो साक्षात् देवीजी ने घर में पदार्पण किया हो। आज भगवान् ने यह दिन दिखाया कि उसका घर गऊ के चरणों से पवित्र हो गया। यह सौभाग्य! न जाने किसके पुन्य-प्रताप से।

धनिया ने भयातुर होकर कहा—खड़े क्या हो, आँगन में नाँद गाड़ दो।

'आँगन में! जगह कहाँ है?'

'बहुत जगह है।'

'मैं तो बाहर ही गाड़ता हूँ।'

'पागल न बनो। गाँव का हाल जानकर भी अनजान बनते हो?'

'अरे बित्ते भर के आँगन में गाय कहाँ बँधेगी भाई?'

'जो बात नहीं जानते, उसमें टाँग मत अड़ाया करो। संसार-भर की विद्या तुम्हीं नहीं पढ़े हो।'

होरी सचमुच आपे में न था। गऊ उसके लिए केवल भक्ति और श्रद्धा की वस्तु नहीं, सजीव सम्पत्ति भी थी। वह उससे अपने द्वार की शोभा और अपने घर का गौरव बढ़ाना चाहता था। वह चाहता था, लोग गाय को द्वार पर बँधे देखकर पूछें—यह किसका घर है? लोग कहें—होरी महतो का। तभी लड़कीवाले भी उसकी विभूति से प्रभावित होंगे। आँगन में बँधी, तो कौन देखेगा? धनिया इसके विपरीत सशङ्क थी। वह गाय को सात परदों के अन्दर छिपाकर रखना चाहती थी, अगर गाय आठों पहर कोठरी में रह सकती, तो शायद वह उसे बाहर न निकलने देती। यों हर बात में होरी की जीत होती थी। वह अपने पक्ष पर अड़ जाता था और धनिया को दबना पड़ता था; लेकिन आज धनिया के सामने होरी की एक न चली। धनिया लड़ने पर तैयार हो गई। गोबर और सोना और रूपा, सारा घर होरी के पक्ष में था; पर धनिया ने अकेले सबको परास्त कर दिया। आज उसमें एक विचित्र आत्म-विश्वास और होरी में एक विचित्र विनय का उदय हो गया था।

मगर तमाशा कैसे रुक सकता था। गाय डोली में बैठकर तो आई न थी। कैसे

सम्भव था कि गाँव में इतनी बड़ी बात हो जाय और तमाशा न लगे। जिसने सुना, सब काम छोड़कर देखने दौड़ा। यह मामूली देसी गऊ नहीं है। भोला के घर से अस्सी रुपये में आई है। होरी अस्सी रुपये तो क्या देंगे, पचास-साठ रुपये में लाये होंगे। गाँव के इतिहास में पचास-साठ रुपये की गाय आना भी अभूतपूर्व बात थी। बैल तो पचास रुपये के भी आये, सौ के भी आये; लेकिन गाय के लिए इतनी बड़ी रक़म किसान क्या खाके ख़र्च करेगा। यह तो ग्वालों ही का कलेजा है कि अँजुलियों रुपये गिन आते हैं। गाय क्या है, साक्षात् देवी का रूप है। दर्शकों, आलोचकों का ताँता लगा हुआ था और होरी दौड़-दौड़कर सबका सत्कार कर रहा था। इतना विनम्र, इतना प्रसन्नचित्त वह कभी न था।

सत्तर साल के बूढ़े पण्डित दातादीन लठिया टेकते हुए आये और पोपले मुँह से बोले—कहाँ हो होरी, तनक हम भी तुम्हारी गाय देख लें। सुना, बड़ी सुन्दर है।

होरी ने दौड़कर पालागन किया और मन में अभिमानमय उल्लास का आनन्द उठाता हुआ, बड़े सम्मान से पण्डितजी को आँगन में ले गया। महाराज ने गऊ को अपनी पुरानी, अनुभवी, आँखों से देखा, सींगें देखीं, थन देखा, पुट्ठा देखा और घनी सफेद भौंवों के नीचे छिपी हुई आँखों में जवानी की उमंग भरकर बोले—कोई दोष नहीं है बेटा, बाल-भौंरी, सब ठीक। भगवान् चाहेंगे, तो तुम्हारे भाग खुल जायँगे। ऐसे अच्छे लच्छन हैं कि वाह! बस, रातिब न कम होने पाये। एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा।

होरी ने आनन्द के सागर में डुबकियाँ खाते हुए कहा—सब आपका आसीर-बाद है दादा।

दातादीन ने सुरती की पीक थूकते हुए कहा—मेरा आसीरबाद नहीं है बेटा, भगवान् की दया है। यह सब प्रभु की दया है। रुपये नगद दिये?

होरी ने बे-पर की उड़ाई। अपने महाजन के सामने भी अपने समृद्धि-प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कैसे छोड़े। टके की नई टोपी सिर पर रखकर जब हम अकड़ने लगते हैं, ज़रा देर के लिए किसी सवारी पर बैठकर जब हम आकाश में उड़ने लगते हैं, तो इतनी बड़ी विभूति पाकर क्यों न उसका दिमाग़ आसमान पर चढ़े। बोला—भोला ऐसा भलामानस नहीं है महाराज! नगद गिनाये, पूरे, चौकस।

अपने महाराज के सामने यह डींग मारकर होरी ने नादानी तो की थी; पर

दातादीन के मुख पर असन्तोष का कोई चिह्न न दिखाई दिया। इस कथन में कितना सत्य है, यह उनकी उन बुझी आँखों से छिपा न रह सका, जिनमें ज्योति की जगह अनुभव छिपा बैठा था।

प्रसन्न होकर बोले—कोई हरज नहीं बेटा, कोई हरज नहीं। भगवान् सब कल्यान करेंगे। पाँच सेर दूध है इसमें, बच्चे के लिए छोड़कर।

धनिया ने तुरन्त टोका—अरे नहीं महाराज, इतना दूध कहाँ? बुढ़िया तो हो गई है। फिर यहाँ रातिब कहाँ धरा है।

दातादीन ने मर्म-भरी आँखों से देखकर उसकी सतर्कता को स्वीकार किया, मानों कह रहे हों, 'गृहिणी का यही धर्म है, सींटना मरदों का काम है, उन्हें सींटने दो।' फिर रहस्य-भरे स्वर में बोले—बाहर न बाँधना, इतना कहे देते हैं।

धनिया ने पति की ओर विजयी आँखों से देखा, मानों कह रही हो—लो, अब तो मानोगे।

दातादीन से बोली—नहीं महाराज, बाहर क्या बाँधेंगे, भगवान् दें तो इसी आँगन में तीन गायें और बँध सकती हैं।

सारा गाँव गाय देखने आया। नहीं आये तो सोभा और हीरा, जो अपने सगे भाई थे। होरी के हृदय में भाइयों के लिए अब भी कोमल स्थान था। वह दोनों आकर देख लेते और प्रसन्न हो जाते, तो उसकी मनोकामना पूरी हो जाती। साँझ हो गई। दोनों पुर लेकर लौट आये, इसी द्वार से निकले; पर पूछा कुछ नहीं।

होरी ने डरते-डरते धनिया से कहा—न सोभा आया, न हीरा। सुना न होगा?

धनिया बोली—तो यहाँ कौन उन्हें बुलाने जाता है।

'तू बात तो समझती नहीं। लड़ने को तैयार रहती है। भगवान् ने जब यह दिन दिखाया है, तो हमें सिर झुकाकर चलना चाहिए। आदमी को अपने सगों के मुँह से अपनी भलाई-बुराई सुनने की जितनी लालसा होती है, बाहरवालों के मुँह से नहीं। फिर अपने भाई लाख बुरे हों, हैं तो अपने भाई। अपने हिस्से-बखरे के लिए सभी लड़ते हैं; पर इससे खून थोड़े ही बँट जाता है। दोनों को बुलाकर दिखा देना चाहिए। नहीं, कहेंगे, गाय लाये, हमसे कहा तक नहीं।

धनिया ने नाक सिकोड़कर कहा—मैंने तुमसे सौ बार, हजार बार कह दिया, मेरे मुँह पर भाइयों का बखान न किया करो, उनका नाम सुनकर मेरी देह में आग

लगा जाती है। सारे गाँव ने सुना, क्या उन्होंने न सुना होगा? कुछ इतनी दूर भी तो नहीं रहते। सारा गाँव देखने आया, उन्हीं के पाँवों में मेहदी लगी हुई थी; मगर आयें कैसे। जलन हो रही होगी कि इसके घर गाय आ गई। छाती फटी जाती होगी।

दिया-बत्ती का समय आ गया था। धनिया ने जाकर देखा, तो बोतल में मिट्टी का तेल न था। बोतल उठाकर तेल लाने चली गई। पैसे होते, तो रूपा को भेजती, उधार लाना है, कुछ मुँहदेखी कहेगी, कुछ लल्लो-चप्पो करेगी, तभी तो तेल उधार मिलेगा।

होरी ने रूपा को बुलाकर प्यार से गोद में बैठाया और कहा—ज़रा जाकर देख, होरा काका आ गये हैं कि नहीं। सोभा काका को भी देखती आना। कहना, दादा ने तुम्हें बुलाया है। न आयें, तो हाथ पकड़कर खींच लाना।

रूपा ठुनककर बोली—छोटी काकी मुझे डाँटती है।

'काकी के पास क्या करने जायगी। फिर सोभा-बहू तो तुझे प्यार करती है?'

'सोभा काका मुझे चिढ़ाते हैं, कहते हैं···मैं न कहूँगी।'

'क्या कहते हैं, बता?'

'चिढ़ाते हैं।'

'क्या कहकर चिढ़ाते हैं?'

'कहते हैं, तेरे लिए मूस पकड़ रखा है। ले जा, भूनकर खा ले।'

होरी के अन्तस्तल में गुदगुदी हुई।

'तू कहती नहीं, पहले तुम खा लो, तो मैं खाऊँगी।'

'अम्माँ मने करती हैं। कहती हैं, उन लोगों के घर न जाया कर।'

'तू अम्माँ की बेटी है कि दादा की?'

रूपा ने उसके गले में हाथ डालकर कहा—अम्माँ की, और हँसने लगी।

'तो फिर मेरी गोद से उतर जा। आज मैं तुझे अपनी थाली में न खिलाऊँगा।'

घर में एक ही फूल की थाली थी; होरी उसी थाली में खाता था। थाली में खाने का गौरव पाने के लिए रूपा होरी के साथ खाती थी। इस गौरव का परित्याग कैसे करे। हुमककर बोली—अच्छा, तुम्हारी।

'तो फिर मेरा कहना मानेगी कि अम्माँ का?'

'तुम्हारा।'

'तो जाकर हीरा और सोभा को खींच ला।'

'और जो अम्माँ बिगड़ें?'

'अम्माँ से कहने कौन जायगा।'

रूपा कूदती हुई हीरा के घर चली। द्वेष का मायाजाल बड़ी-बड़ी मछलियों को ही फँसाता है। छोटी मछलियाँ या तो उसमें फँसती ही नहीं या तुरन्त निकल जाती हैं। उनके लिए वह घातक जाल क्रीड़ा की वस्तु है, भय की नहीं। भाइयों से होरी की बोल-चाल बन्द थी; पर रूपा दोनों घरों में आती-जाती थी। बच्चों से क्या बैर।

लेकिन रूपा घर से निकली ही थी कि धनिया तेल लिये मिल गई। उसने पूछा—साँझ की बेला कहाँ जाती है, चल घर। रूपा माँ को प्रसन्न करने के प्रलोभन को न रोक सकी।

धनिया ने डाँटा—चल घर, किसी को बुलाने नहीं जाना है।

रूपा का हाथ पकड़े हुए वह घर लाई और होरी से बोली—मैंने तुमसे हज़ार बार कह दिया, मेरे लड़कों को किसी के घर न भेजा करो। किसी ने कुछ कर-करा दिया, तो मैं तुम्हें लेकर चाटूँगी? ऐसा ही बड़ा परेम है, तो आप क्यों नहीं जाते? अभी पेट नहीं भरा जान पड़ता है।

होरी नाँद जमा रहा था। हाथों में मिट्टी लपेटे हुए अज्ञान का अभिनय करके बोला—किस बात पर बिगड़ती है भाई! यह तो अच्छा नहीं लगता कि अन्धे कूकर की तरह हवा को भूँका करे।

धनिया को कुप्पी में तेल डालना था, इस समय झगड़ा न बढ़ाना चाहती थी। रूपा भी लड़कों में जा मिली।

पहर रात से ज़्यादा जा चुकी थी। नाँद गड़ चुकी थी। सानी और खली डाल दी गई थी। गाय मनमारे उदास बैठी थी, जैसे कोइ वधू ससुराल आई हो। नाँद में मुँह तक न डालती थी। होरी और गोबर खाकर आधी-आधी रोटियाँ उसके लिए लाये, पर उसने सूँघा तक नहीं। मगर यह कोई बात न थी। जानवरों को भी बहुधा घर छूट जाने का दुःख होता है।

होरी बाहर खाट पर बैठकर चिलम पीने लगा, तो फिर भाइयों की याद आई। नहीं, आज इस शुभ अवसर पर वह भाइयों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसका हृदय वह विभूति पाकर विशाल हो गया था। भाइयों से अलग हो गया है, तो क्या

हुआ। उनका दुश्मन तो नहीं है। यही गाय तीन साल पहले आई होती, तो सभी का उस पर बराबर अधिकार होता। और कल को यही गाय दूध देने लगेगी, तो क्या वह भाइयों के घर दूध न भेजेगा? ऐसा तो उसका धरम नहीं है। भाई उसका बुरा चेतें, वह क्यों उनका बुरा चेते। अपनी-अपनी करनी तो अपने-अपने साथ है।

उसने नारियल खाट के पाये से लगाकर रख दिया और हीरा के घर की ओर चला। सोभा का घर भी उधर ही था। दोनों अपने-अपने द्वार पर लेटे हुए थे। काफ़ी अँधेरा था। होरी पर उनमें से किसी की निगाह नहीं पड़ी। दोनों में कुछ बातें हो रही थीं। होरी ठिठक गया और उनकी बातें सुनने लगा। ऐसा आदमी कहाँ है, जो अपनी चर्चा सुनकर टाल जाय।

हीरा ने कहा—जब तक एक में थे, एक बकरी भी नहीं ली। अब पछाईं गाय ली जाती है। भाई का हक मारकर किसी को फलते-फूलते नहीं देखा।

सोभा बोला—यह तुम अन्याय कर रहे हो हीरा! भैया ने एक-एक पैसे का हिसाब दे दिया था। यह मैं कभी न मानूँगा कि उन्होंने पहले की कमाई छिपा रखी थी।

'तुम मानो चाहे न मानो, है यह पहले की कमाई।'

'किसी पर झूठा इलजाम न लगाना चाहिए।'

'अच्छा तो ये रुपये कहाँ से आ गये? कहाँ से हुन बरस पड़ा। उतने ही खेत तो हमारे पास भी हैं। उतनी ही उपज हमारी भी है। फिर क्यों हमारे पास कफन को कौड़ी नहीं और उनके घर नई गाय आती है?'

'उधार लाये होंगे।'

'भोला उधार देनेवाला आदमी नहीं है।'

'कुछ भी हो, गाय है बड़ी सुन्दर, गोबर लिये आता था, तो मैंने रास्ते में देखा।'

'बेईमानी का धन जैसे आता है, वैसे ही जाता है। भगवान् चाहेंगे, तो बहुत दिन गाय घर में न रहेगी।'

होरी से और न सुना गया। वह बीती बातों को बिसराकर अपने हृदय में स्नेह और सौहार्द भरे भाइयों के पास आया था। इस आघात ने जैसे उसके हृदय में छेद कर दिया और वह रस-भाव उसमें किसी तरह नहीं टिक रहा था। लत्ते और चिथड़े

ठूँसकर अब वह उस प्रवाह को नहीं रोक सकता। जी में एक उबाल आया कि उसी क्षण इस आक्षेप का जवाब दे; लेकिन बात बढ़ जाने के भय से चुप रह गया। अगर उसकी नीयत साफ है, तो कोई कुछ नहीं कर सकता। भगवान् के सामने वह निर्दोष है। दूसरों की उसे परवाह नहीं। उलटे पाँव लौट आया। और वही जला हुआ तम्बाकू पीने लगा; लेकिन जैसे वह विष प्रतिक्षण उसकी धमनियों में फैलता जाता था। उसने सो जाने का प्रयास किया; पर नींद न आई। बैलों के पास जाकर उन्हें सहलाने लगा, विष शान्त न हुआ। दूसरी चिलम भरी; लेकिन उसमें भी कुछ रस न था। विष ने जैसे चेतना को आक्रान्त कर दिया हो। जैसे नशे में चेतना एकांगी हो जाती है, जैसे फैला हुआ पानी एक दिशा में बहकर वेगवान् हो जाता है, वही मनोवृत्ति उसकी हो रही थी। उसी उन्माद की दशा में वह अन्दर गया। अभी द्वार खुला हुआ था। आँगन में एक किनारे चटाई पर लेटी हुई धनिया सोना से देह दबवा रही थी, और रूपा जो रोज़ साँझ होते ही सो जाती थी, आज खड़ी गाय का मुँह सहला रही थी। होरी ने जाकर गाय को खूँटे से खोल लिया और द्वार की ओर ले चला। वह इसी वक्त गाय को भोला के घर पहुँचाने का दृढ़ निश्चय कर चुका था। इतना बड़ा कलंक सिर पर लेकर वह अब गाय को घर में नहीं रख सकता। किसी तरह नहीं।

धनिया ने पूछा—कहाँ लिये जाते हो रात को?

होरी ने एक पग आगे बढ़ाकर कहा—ले जाता हूँ भोला के घर। लौटा दूँगा। धनिया को विस्मय हुआ। उठकर सामने आ गई और बोली—लौटा क्यों दोगे? लौटाने के लिए ही लाये थे?

'हाँ, इसके लौटा देने में ही कुशल है।'

'क्यों, बात क्या है? इतने अरमान से लाये और अब लौटाने जा रहे हो? क्या भोला रुपये माँगते हैं?

'नहीं, भोला यहाँ कब आया?'

'तो फिर क्या बात हुई?'

'क्या करेगी पूछकर?'

धनिया ने लपककर पगहिया उसके हाथ से छीन ली। उसकी चपल बुद्धि ने जैसे उड़ती हुई चिड़िया पकड़ ली। बोली—तुम्हें भाइयों का डर हो, तो जाकर उनके पैरों

पर गिरो। मैं किसी से नहीं डरती। अगर हमारी बढ़ती देखकर किसी की छाती फटती है, तो फट जाय, मुझे परवाह नहीं है।

होरी ने विनीत स्वर में कहा—धीरे-धीरे बोल महरानी! कोई सुने, तो कहे, ये सब इतनी रात गये लड़ रहे हैं! मैं अपने कानों से क्या सुन आया हूँ, तू क्या जाने! यहाँ चरचा हो रही है कि मैंने अलग होते समय रुपये दबा लिये थे और भाइयों को धोखा दिया था, यह रुपये अब निकल रहे हैं।

'हीरा कहता होगा?'

'सारा गाँव कह रहा है। हीरा को क्यों बदनाम करूँ।'

'सारा गाँव नहीं कह रहा है, अकेला हीरा कह रहा है। मैं अभी जाकर पूछती हूँ न कि तुम्हारे बाप कितने रुपये छोड़कर मरे थे। डाढ़ीजारों के पीछे हम बरबाद हो गये, सारी जिन्दगी मिट्टी में मिला दी, पाल-पोसकर संडा किया, और अब हम बेईमान हैं। मैं कहे देती हूँ, अगर गाय घर के बाहर निकली, तो अनर्थ हो जायगा। रख लिये हमने रुपये, दबा लिये, बीच खेत दबा लिये। डके की चोट कहती हूँ, मैंने हंडे-भर असर्फियां छिपा लीं। हीरा और सोभा और ससार को जो करना हो, कर ले। क्यों न रुपये रख लें? दो-दो सडों का ब्याह नहीं किया, गौना नहीं किया!'

होरी सिटपिटा गया। धनिया ने उसके हाथ से पगहिया छीन ली और गाय को खूँटे से बाँधकर द्वार की ओर चली। होरी ने उसे पकड़ना चाहा; पर वह बाहर जा चुकी थी। वहीं सिर थामकर बैठ गया। बाहर उसे पकड़ने की चेष्टा करके वह कोई नाटक नहीं दिखाना चाहता था। धनिया के क्रोध को वह खूब जानता था। बिगड़ती है, तो चण्डी बन जाती है। मारो, काटो, सुनेगी नहीं; लेकिन हीरा भी तो एक ही गुस्सेवर है। कहीं हाथ चला दे तो परलै ही हो जाय। नहीं, हीरा इतना मूरख नहीं है। मैंने कहाँ-से-कहाँ यह आग लगा दी। उसे अपने आप पर क्रोध आने लगा। बात मन में रख लेता, तो क्यों यह टंटा खड़ा होता। सहसा धनिया का कर्कश स्वर कान में आया। हीरा की गरज भी सुन पड़ी। फिर पुन्नी की पैनी पीक भी कानों में चुभी। सहसा उसे गोबर की याद आई। बाहर लपककर उसकी खाट देखी। गोबर वहाँ न था। गजब हो गया! गोबर भी वहीं पहुँच गया। अब कुशल नहीं। उसका नया खून है, न जाने क्या कर बैठे; लेकिन होरी वहाँ कैसे जाय? हीरा कहेगा, आप तो बोलते नहीं, जाकर इस डाइन को लड़ने के लिए भेज दिया।

कोलाहल प्रतिक्षण प्रचंड होता जाता था। सारे गाँव में जाग पड़ गई। मालूम होता था, कहीं आग लग गई है, और लोग खाट से उठ-उठ बुझाने दौड़े जा रहे हैं।

इतनी देर तक तो वह ज़ब्त किये बैठा रहा। फिर न रहा गया। धनिया पर क्रोध आया। वह क्यों चढ़कर लड़ने गई? अपने घर में आदमी न जाने किसको क्या कहता है। जब तक कोई मुँह पर बात न कहे, यही समझना चाहिए कि उसने कुछ नहीं कहा। होरी की कृषक-प्रकृति झगड़े से भागती थी। चार बातें सुनकर ग़म खा जाना इससे कहीं अच्छा है कि आपस में तनाज़ा हो। कहीं मार-पीट हो जाय, तो थाना-पुलिस हो, बँधे-बँधे फिरो, सबकी चिरौरी करो, अदालत की धूल फाँको, खेती-बारी जहन्नुम में मिल जाय। उसका हीरा पर तो कोई बस न था; मगर धनिया को तो वह ज़बरदस्ती खींच ला सकता है। बहुत होगा, गालियाँ दे लेगी, एक-दो दिन रूठी रहेगी, थाना-पुलिस की नौबत तो न आयेगी। जाकर हीरा के द्वार पर सबसे दूर दीवार की आड़ में खड़ा हो गया। एक सेनापति की भाँति मैदान में आने के पहले परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लेना चाहता था। अगर अपनी जीत हो रही है, तो बोलने की कोई ज़रूरत नहीं। हार हो रही है, तो तुरन्त कूद पड़ेगा। देखा, तो वहाँ पचासों आदमी जमा हो गये हैं। पण्डित दातादीन, लाला पटेश्वरी, दोनों ठाकुर जो गाँव के करता-धरता थे, सभी पहुँचे हुए हैं। धनिया का पल्ला हलका हो रहा था। उसकी उग्रता जनमत को उसके विरुद्ध किये देती थी। वह रणनीति में कुशल न थी। क्रोध में ऐसी जली कटी सुना रही थी कि लोगों की सहानुभूति उससे दूर होती जाती थी।

वह गरज रही थी—तू हमें देखकर क्यों जलता है? हमें देखकर क्यों तेरी छाती फटती है? पाल पोसकर जवान कर दिया, यह उसका इनाम है? हमने न पाला होता, तो आज कहीं भीख माँगते होते। रूख की छाँह भी न मिलती।

होरी को ये शब्द ज़रूरत से ज्यादा कठोर जान पड़े। भाइयों को पालना-पोसना तो उसका धर्म था। उनके हिस्से की जायदाद तो उसके हाथ में थी। कैसे न पालता-पोसता। दुनिया में कहीं मुँह दिखाने लायक रहता?

हीरा ने जवाब दिया—हम किसी का कुछ नहीं जानते। तेरे घर में कुत्तों की तरह एक टुकड़ा खाते थे और दिन-भर काम करते थे। जाना ही नहीं कि लड़कपन कैसा होता है और जवानी कैसी होती है। दिन-दिन भर सूखा गोबर बीना करते थे। उस पर भी

तू बिना दस गाली दिये रोटी न देती थी। तेरी-जैसी राच्छसिन के हाथ में पड़कर जिन्दगी तलख हो गई।

धनिया और भी तेज हुई—जबान सँभाल, नहीं जीभ खींच लूँगी। राच्छसिन तेरी औरत होगी। तू है किस फेर में मूँड़ी-काटे, टुकड़े-खोर, नमक-हराम!

दातादीन ने टोका—इतना कटु वचन क्यों कहती है धनिया? नारी का धरम है कि गम खाय। वह तो उजड्ड है, क्यों उसके मुँह लगती है?

लाला पटेश्वरी पटवारी ने उसका समर्थन किया—बात का जवाब बात है, गाली नहीं। तूने लड़कपन में उसे पाला-पोसा; लेकिन यह क्यों भूल जाती है कि उसकी जायदाद तेरे हाथ में थी?

धनिया ने समझा, सब-के-सब मिलकर मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। चौमुखी लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो गई—अच्छा, तुम रहने दो लाला! मैं सबको पहचानती हूँ। इस गाँव में रहते बीस साल हो गये। एक-एक की नस-नस पहचानती हूँ। मैं गाली दे रही हूँ, वह फूल बरसा रहा है, क्यों?

दुलारी सहुआइन ने आग पर घी डाला—बाकी बड़ी गाल-दराज औरत है भाई! मरद के मुँह लगती है। होरी ही जैसा मरद है कि इसका निबाह होता है। दूसरा मरद होता, तो एक दिन न पटती।

अगर हीरा इस समय ज़रा नर्म हो जाता, तो उसकी जीत हो जाती; लेकिन ये गालियाँ सुनकर आपे से बाहर हो गया। औरों को अपने पक्ष में देखकर वह कुछ शेर हो रहा था। गला फाड़कर बोला—चली जा मेरे द्वार से, नहीं जूतों से बात करूँगा। झोंटा पकड़कर उखाड़ लूँगा। गाली देती है डाइन! बेटे का घमण्ड हो गया है। खून···

पाँसा पलट गया। होरी का ख़ून खौल उठा। बारूद में जैसे चिनगारी पड़ गई हो। आगे आकर बोला—अच्छा बस, अब चुप हो जाओ हीरा, अब नहीं सुना जाता। मैं इस औरत को क्या कहूँ। जब मेरी पीठ में धूल लगती है, तो इसी के कारन। न जाने क्यों इससे चुप नहीं रहा जाता।

चारों ओर से हीरा पर बौछार पड़ने लगी। दातादीन ने निर्लज्ज कहा, पटेश्वरी ने गुण्डा बनाया, झिंगुरीसिंह ने शैतान की उपाधि दी, दुलारी सहुआइन ने कपूत कहा। एक उद्दण्ड शब्द ने धनिया का पल्ला हलका कर दिया था। दूसरे उग्र शब्द ने

हीरा को गच्चे में डाल दिया। उस पर होरी के संयत वाक्य ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी।

हीरा सँभल गया। सारा गाँव उसके विरुद्ध हो गया। अब चुप रहने में ही उसकी कुशल है। क्रोध के नशे में भी इतना होश उसे बाकी था।

धनिया का कलेजा दूना हो गया। होरी से बोली—सुन लो कान खोलके। भाइयों के लिए मरते रहते हो। ये भाई हैं, ऐसे भाई का मुँह न देखे। यह मुझे जूतों से मारेगा। खिला-पिला ..

होरी ने डाँटा—फिर क्यों बक-बक करने लगी तू! घर क्यों नहीं जाती?

धनिया ज़मीन पर बैठ गई और आर्त्त स्वर में बोली—अब तो इसके जूते खाके जाऊँगी। जरा इसकी मरदुमी देख लूँ, कहाँ है गोबर? अब किस दिन काम आयेगा? तू देख रहा है बेटा, तेरी माँ को जूते मारे जा रहे हैं!

यों विलाप करके उसने अपने क्रोध के साथ होरी के क्रोध को भी क्रियाशील बना डाला। आग को फूँक-फूँककर उसमें ज्वाला पैदा कर दी। हीरा पराजित-सा पीछे हट गया। पुन्नी उसका हाथ पकड़कर घर की ओर खींच रही थी। सहसा धनिया ने सिंहिनी की भाँति झपटकर हीरा को इतने ज़ोर से धक्का दिया कि वह धम से गिर पड़ा और बोली—कहाँ जाता है, जूते मार, मार जूते, देखूँ तेरी मरदुमी!

होरी ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ घर ले चला।

५

उधर गोबर खाना खाकर अहिराने में जा पहुँचा। आज झुनिया से उसकी बहुत-सी बातें हुई थीं। जब वह गाय लेकर चला था, तो झुनिया आधे रास्ते तक उसके साथ आई थी। गोबर अकेला गाय को कैसे ले जाता। अपरिचित व्यक्ति के साथ जाने में उसे आपत्ति होना स्वाभाविक था। कुछ दूर चलने के बाद झुनिया ने गोबर को मर्म-भरी आँखों से देखकर कहा—अब तुम काहे को यहाँ कभी आओगे!

एक दिन पहले तक गोबर कुमार था। गाँव में जितनी युवतियाँ थीं, वह या तो उसकी बहनें थीं या भाभियाँ। बहनों से तो कोई छेड़-छाड़ हो ही क्या सकती थी। भाभियाँ अलबत्ता कभी-कभी उससे ठठोली किया करती थीं; लेकिन वह केवल

सरल विनोद होता था। उनकी दृष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जब तक फल न लग जायँ, उस पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन न पाकर उसका कौमार्य उसके गले से चिपटा हुआ था। झुनिया का वंचित मन जिसे भाभियों के व्यंग्य और हास-विलास ने और भी लोलुप बना दिया था, उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा।

गोबर ने आवरण-हीन रसिकता के साथ कहा—अगर भिच्छुक को भीख मिलने की आसा हो, तो वह दिन-भर और रात-भर दाता के द्वार पर खड़ा रहे।

झुनिया ने कटाक्ष करके कहा—तो यह कहो, तुम भी मतलब के यार हो।

गोबर की धमनियों का रक्त प्रबल हो उठा। बोला—भूखा आदमी अगर हाथ फैलाये, तो उसे क्षमा कर देना चाहिए।

झुनिया और गहरे पानी में उतरी—भिच्छुक जब तक दस द्वारे न जाय, उसका पेट कसे भरेगा। मैं ऐसे भिच्छुकों को मुँह नहीं लगाती। ऐसे तो गली-गली मिलते हैं। फिर भिच्छुक देता क्या है, असीस! असीसों से तो किसी का पेट नहीं भरता।

मन्दबुद्धि गोबर झुनिया का आशय न समझ सका। झुनिया छोटी-सी थी, तभी से गाहकों के घर दूध लेकर जाया करती थी। ससुराल में भी उसे गाहकों के घर दूध पहुँचाना पड़ता था। आजकल भी दही बेचने का भार उसी पर था। उसे तरह-तरह के मनुष्यों से साबिका पड़ चुका था। दो-चार रुपये उसके हाथ लग जाते थे, घड़ी-भर के लिए मनोरंजन भी हो जाता था; मगर यह आनन्द जैसे मँगनी की चीज़ हो। उसमें टिकाव न था, समर्पण न था, अधिकार न था। वह ऐसा प्रेम चाहती थी, जिसके लिए वह जिये और मरे, जिस पर वह अपने को समर्पित कर दे। वह केवल जुगनू की चमक नहीं, दीपक का स्थायी प्रकाश चाहती थी। वह एक गृहस्थ की बालिका थी, जिसके गृहिणीत्व को रसिकों की लगावटबाज़ियों ने कुचल नहीं पाया था।

गोबर ने कामना से उद्दीप्त मुख से कहा—भिच्छुक को एक ही द्वार पर भर-पेट मिल जाय, तो क्यों द्वार-द्वार घूमे?

झुनिया ने सदय भाव से उसकी ओर ताका। कितना भोला है, कुछ समझता ही नहीं।

'भिच्छुक को एक द्वार पर भर-पेट कहाँ मिलता है। उसे तो चुटकी ही मिलेगी। सर्बस तो तभी पाओगे, जब अपना सर्बस दोगे।'

'मेरे पास क्या है झुनिया?'

'तुम्हारे पास कुछ नहीं है? मैं तो समझती हूँ, मेरे लिए तुम्हारे पास जो कुछ है, वह बड़े-बड़े लखपतियों के पास नहीं है। तुम मुझसे भीख न माँगकर मुझे मोल ले सकते हो।'

गोबर चकित नेत्रों से उसे देखने लगा।

झुनिया ने फिर कहा—और जानते हो, दाम क्या देना होगा? मेरा होकर रहना पड़ेगा। फिर किसी के सामने हाथ फैलाते देखूँगी, तो घर से निकाल दूँगी।

गोबर को जैसे अँधेरे में टटोलते हुए इच्छित वस्तु मिल गई। एक विचित्र भय-मिश्रित आनन्द से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा; लेकिन यह कैसे होगा? झुनिया को रख ले, तो रखेली को लेकर घर में रहेगा कैसे? बिरादरी का झंझट जो है। सारा गाँव काँव-काँव करने लगेगा। सभी दुसमन हो जायँगे। अम्माँ तो इसे घर में घुसने भी न देंगी; लेकिन जब स्त्री होकर यह नहीं डरती, तो पुरुष होकर वह क्यों डरे। बहुत होगा, लोग उसे अलग कर देंगे। वह अलग ही रहेगा। झुनिया-जैसी औरत गाँव में दूसरी कौन है? कितनी समझदारी की बातें करती है। क्या जानती नहीं कि मैं उसके जोग नहीं हूँ। फिर भी मुझसे प्रेम करती है। मेरी होने को राजी है। गाँववाले निकाल देंगे, तो क्या संसार में दूसरा गाँव ही नहीं है? और गाँव क्यों छोड़े? मातादीन ने चमारिन बैठा ली, तो किसी ने क्या कर लिया। दातादीन दाँत कटकटाकर रह गये। मातादीन ने इतना ज़रूर किया कि अपना धरम बचा लिया। अब भी बिना असनान-पूजा किये मुँह में पानी नहीं डालते। दोनों जून अपना भोजन आप पकाते हैं और अब तो अलग भोजन भी नहीं पकाते। दातादीन और वह साथ बैठकर खाते हैं। झिंगुरीसिंह ने बाम्हनी रख ली, उनका किसी ने क्या कर लिया? उनका जितना आदर-मान तब था, उतना ही आज भी है; बल्कि और बढ़ गया। पहले नौकरी खोजते फिरते थे। अब उसके रुपये से महाजन बन बैठे। ठकुराई का रोब तो था ही, महाजनी का रोब भी जम गया। मगर फिर खयाल आया, कहीं झुनिया दिल्लगी न कर रही हो। पहले इसकी ओर से निश्चिन्त हो जाना आवश्यक था।

उसने पूछा—मन से कहती हो दुला, कि खाली लालच दे रही हो ? मैं तो तुम्हारा हो चुका ; लेकिन तुम भी हो जाओगी ?

'तुम मेरे हो चुके ? कैसे जानूँ ?'

'तुम जान भी चाहो, तो दे दूँ ।'

'जान देने का अरथ भी समझते हो ?'

'तुम समझा दो न ।'

झुनिया ने उसकी पीठ में हल्का-सा घूँसा जमाया—लगे औरों की तरह तुम भी चापलूसी करने । मैं जैसी कुछ हूँ, वह मैं जानती हूँ ; मगर इन लोगों का तो जवान मिल जाय । घड़ी-भर मन बहलाने को और क्या चाहिए । गुन तो आदमी उसमें देखता है, जिसके साथ जनम-भर निबाह करना हो । सुनती भी हूँ और देखती भी हूँ, आजकल बड़े घरों की विचित्र लीला है । जिस महल्ले में मेरी ससुराल है; उसी में गपड़ू-गपड़ू नाम के कासमीरी रहते थे । बड़े भारी आदमी थे । उनके यहाँ पाँच सेर दूध लगता था । उनकी तीन लड़कियाँ थीं । कोई बीस-बेस, पचीस-पचीस की होंगी । एक-से-एक सुन्दर । तीनों बड़े कालिज में पढ़ने जाती थीं । एक साइत कालिस में पढ़ाती भी थी । तीन सौ का महीना पाती थी । सितार वह सब जवावें, हरमुनियाँ वह सब बजावें, नाचें वह ; गायें वह ; लेकिन ब्याह कोई न करती थी । राम जानें, वह किसी मरद को पसन्द नहीं करती थीं कि मरद उन्हीं को पसन्द नहीं करता था। एक बार मैंने बड़ी बीबी से पूछा, तो हँसकर बोलीं—हम लोग यह रोग नहीं पालते; मगर भीतर ही-भीतर खूब गुलछर्रे उड़ाती थीं । जब देखूँ, दो-चार लौंडे उनको घेरे हुए हैं । जो सबसे बड़ी थी, वह तो कोट-पतलून पहनकर घोड़े पर सवार होकर मर्दों के साथ सैर करने जाती थी । सारे सहर में उनकी लीला मसहूर थी । गपड़ू बाबू सिर नीचा किये, जैसे मुँह में कालिख-सी लगाये रहते थे । लड़कियों को डाँटते थे, समझाते थे ; पर सब-की-सब खुल्लमखुल्ला कहती थीं—तुमको हमारे बीच में बोलने का कुछ मजाल नहीं है । हम अपने मन की रानी हैं, जो हमारी इच्छा होगी, वह हम करेंगे । बेचारा बाप जवान-जवान लड़कियों से क्या बोले । मारने-बाँधने से रहा, डाँटने-डपटने से रहा ; लेकिन भाई, बड़े आदमियों की बातें कौन चलाये । वह जो कुछ करें, सब ठीक है । उन्हें तो बिरादरी और पंचायत का भी डर नहीं । मेरी समझ में तो यही नहीं आता कि किसी का रोज-रोज मन कैसे बदल जाता है । क्या आदमी

गाय-बकरी से भी गया-बीता हो गया ? लेकिन किसी को बुरा नहीं कहती भाई ! मन को जैसा बनाओ, वैसा बनता है। ऐसों को भी देखती हूँ, जिन्हें रोज-रोज की दाल-रोटी के बाद कभी कभी मुँह का सवाद बदलने के लिए हलुआ-पूरी भी चाहिए। और ऐसों को भी देखती हूँ, जिन्हें घर को रोटी-दाल देखकर ज्वर आता है। कुछ बेचारियाँ ऐसी भी हैं जो अपनी रोटी दाल में ही मगन रहती हैं। हलुआ-पूरी से उन्हें कोई मतलब नहीं। मेरी दोनों भावजों ही को देखो। हमारे भाई काने-कुबड़े नहीं हैं, दस जवानों में एक जवान हैं; लेकिन भावजों को नहीं भाते। उन्हें तो वह चाहिए, जो सोने की बालियाँ बनवाये, महीन साड़ियाँ लाये, रोज चाट खिलाये। बालियाँ और साड़ियाँ और मिठाइयाँ मुझे भी कम अच्छी नहीं लगतीं, लेकिन जो कहो कि इसके लिए अपनी लाज बेचती फिरूँ, तो भगवान् इससे बचायें। एक के साथ मोटा-झोटा खा-पहनकर उमिर काट देना, बस, अपना तो यही राग है। बहुत करके तो मर्द ही औरतों को बिगाड़ते हैं। जब मर्द इधर-उधर ताक-झाँक करेगा, तो औरत भी आँख लड़ायेगी। मर्द दूसरी औरतों के पीछे दौड़ेगा, तो औरत भी जरूर मर्दों के पीछे दौड़ेगी। मर्द का हरजाईपन औरत को भी उतना ही बुरा लगता है, जितना औरत का मर्द को। यही समझ लो। मैंने तो अपने आदमी से साफ-साफ कह दिया था, अगर तुम इधर-उधर लपके, तो मेरी भी जो इच्छा होगी वह करूँगी। जो यह चाहो कि तुम तो अपने मन की करो और औरत को मार के डर से अपने काबू में रखो, तो यह न होगा। तुम खुले-खजाने करते हो, वह छिपकर करेगी। तुम उसे जलाकर सुखी नहीं रख सकते।

गोबर के लिए यह एक नई दुनिया की बातें थीं। तन्मय होकर सुन रहा था। कभी-कभी तो आप-ही-आप उसके पाँव रुक जाते, फिर सचेत होकर चलने लगता। झुनिया ने पहले अपने रूप से मोहित किया था। आज उसने अपने ज्ञान और अनुभव से भरी बातों और अपने सतीत्व के बखान से मुग्ध कर लिया। ऐसी रूप, गुण, ज्ञान की आगरी उसे मिल जाय, तो धन्य भाग। फिर वह क्यों पंचायत और बिरादरी से डरे ?

झुनिया ने जब देख लिया कि उसका गहरा रंग जम गया, तो छाती पर हाथ रखकर जीभ दाँत से काटती हुई बोली—अरे, यह तो तुम्हारा गाँव आ गया ! तुम भी बड़े मुरहे हो, मुझसे कहा भी नहीं कि लौट जाओ।

यह कहकर वह लौट पड़ी।

गोबर ने आग्रह करके कहा—एक छन के लिए मेरे घर क्यों नहीं चली चलतीं? अम्माँ भी तो देख लें।

झुनिया ने लज्जा से आँखें चुराकर कहा—तुम्हारे घर यों न जाऊँगी। मुझे तो यही अचरज होता है कि मैं इतनी दूर कैसे आ गई। अच्छा, बताओ, अब कब आओगे? रात को मेरे द्वार पर अच्छी संगत होगी। चले आना, मैं अपने पिछवाड़े मिलूँगी।

'और जो न मिलीं?'

'तो लौट जाना।'

'फिर तो मैं न आऊँगा।'

'आना पड़ेगा, नहीं कहे देती हूँ।'

'तुम भी वचन दो कि मिलोगी?'

'मैं वचन नहीं देती।'

'तो मैं भी नहीं आता।'

'मेरी बला से!'

झुनिया अँगूठा दिखाकर चल दी। प्रथम-मिलन में ही दोनों एक दूसरे पर अपना-अपना अधिकार जमा चुके थे। झुनिया जानती थी, वह आयेगा, कैसे न आयेगा? गोबर जानता था, वह मिलेगी, कैसे न मिलेगी?

जब वह अकेला गाय को हाँकता हुआ चला, तो ऐसा लगता था, मानों स्वर्ग से गिर पड़ा है।

६

जब से होरी के घर में गाय आ गई है, घर की श्री ही कुछ और हो गई है। धनिया का घमण्ड तो उसके सँभाल से बाहर हो-हो जाता है। जब देखो, गाय की चर्चा।

भूसा छिज गया था। ऊख में थोड़ी-सी चरी बो दी गई थी। उसी को कुट्टी काटकर जानवरों को खिलाना पड़ता था। आँखें आकाश की ओर लगी रहती थीं कि कब पानी बरसे और घास निकले। आधा असाढ़ बीत गया और वर्षा न हुई।

सहसा एक दिन बादल उठे और असाढ़ का पहला दौंगड़ा गिरा। किसान खरीफ़ बोने के लिए हल ले-लेकर निकले कि राय साहब के कारकुन ने कहला भेजा, जब तक बाक़ी न चुक जायगी, किसी को खेत में हल न ले जाने दिया जायगा। किसानों पर जैसे वज्रपात हो गया। और कभी तो इतनी कड़ाई न होती थी, अबकी यह कैसा हुक्म! कोई गाँव छोड़कर भागा थोड़ा ही जाता है; अगर खेतों में हल न चले, तो रुपये कहाँ से आ जायँगे। निकालेंगे तो खेत ही से। सब मिलकर कारकुन के पास जाकर रोये। कारकुन का नाम था पण्डित नोखेराम। आदमी बुरे न थे; मगर मालिक का हुक्म था। उसे कैसे टालें। अभी उस दिन राय साहब ने होरी से कैसी दया और धर्म की बातें की थीं। और आज असामियों पर यह जुल्म। होरी मालिक के पास जाने को तैयार हुआ; लेकिन फिर सोचा, उन्होंने कारकुन को एक बार जो हुक्म दे दिया, उसे क्यों टालने लगे। वह अगुवा बनकर क्यों बुरा बने। जब और कोई कुछ नहीं बोलता, तो वही क्यों आग में कूदे। जो सबके सिर पड़ेगी, वह भी झेल लेगा।

किसानों में खलबली मची हुई थी। सभी गाँव के महाजनों के पास रुपये के लिए दौड़े। गाँव में मँगरू साह की आजकल चढ़ी हुई थी। इस साल सन में उसे अच्छा फ़ायदा हुआ था। गेहूँ और अलसी में भी उसने कुछ कम नहीं कमाया था। पण्डित दातादीन और दुलारी सहुआइन भी लेन-देन करती थीं। सबसे बड़े महाजन थे झिंगुरीसिंह। वह शहर के एक बड़े महाजन के एजेण्ट थे। उनके नीचे कई आदमी और थे, जो आस-पास के देहातों में घूम-घूमकर लेन-देन करते थे। इनके उपरान्त और भी कई छोटे-मोटे महाजन थे, जो दो आने रुपये ब्याज पर बिना लिखा-पढ़ी के रुपये देते थे। गाँववालों को लेन-देन का कुछ ऐसा शौक़ था कि जिसके पास दस-बीस रुपये जमा हो जाते, वही महाजन बन बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी। उसी का यह प्रभाव था कि लोग अभी तक यही समझते थे कि होरी के पास दबे हुए रुपये हैं। आखिर वह धन गया कहाँ। बँटवारे में निकला नहीं, होरी ने कोई तीर्थ, व्रत, भोज किया नहीं, गया तो कहाँ गया। जूते जाने पर भी उसके घट्टे बने रहते हैं।

किसी ने किसी देवता को सीधा किया, किसी ने किसी को। किसी ने आना रुपया ब्याज देना स्वीकार किया, किसी ने दो आना। होरी में आत्मसम्मान का

सर्वथा लोप न हुआ था। जिन लोगों के रुपये उस पर बाक़ी थे, उनके पास कौन मुँह लेकर जाय। झिंगुरीसिंह के सिवा उसे और कोई न सूझा। वह पक्का काग़ज़ लिखाते थे, नज़राना अलग लेते थे, दस्तूरी अलग, स्टाम्प की लिखाई अलग। उस पर एक साल का ब्याज पेशगी काटकर रुपया देते थे। पचीस रुपये का काग़ज़ लिखो, तो मुश्किल से सत्रह रुपये हाथ लगते थे; मगर इस गाढ़े समय में और क्या किया जाय। राय साहब की ज़बरदस्ती है, नहीं, इस समय किसी के सामने क्यों हाथ फैलाना पड़ता।

झिंगुरीसिंह बैठे दतून कर रहे थे। नाटे, मोटे, खल्वाट, काले, लम्बी नाक और बड़ी-बड़ी मूछोंवाले आदमी थे, बिलकुल विदूषक-जैसे। और थे भी बड़े हँसोड़। इस गाँव को अपनी ससुराल बनाकर मर्दों ने साले या ससुर और औरतों से साली या सलहज का नाता जोड़ लिया था। रास्ते में लड़के उन्हें चिढ़ाते—पण्डितजी पालगी! और झिंगुरीसिंह उन्हें चटपट आशीर्वाद देते—तुम्हारी आँखें फूटें, घुटना टूटे, मिर्गी आये, घर में आग लग जाय आदि। लड़के इस आशीर्वाद से कभी न अघाते थे; मगर लेने-देने के मामले में बड़े कठोर थे। सूद की एक पाई न छोड़ते थे और वादे पर बिना रुपये लिये द्वार से न टलते थे।

होरी ने सलाम करके अपनी विपत्ति कथा सुनाई।

झिंगुरीसिंह ने मुस्कराकर कहा—वह सब पुराना रुपया क्या कर डाला?

'पुराने रुपये होते ठाकुर, तो महाजनों से अपना गला न छुड़ा लेता, कि सूद भरते किसी को अच्छा लगता है?'

'गड़े रुपये न निकलें चाहे सूद कितना ही देना पड़े। तुम लोगों की यही नीति है।'

'कहाँ के गड़े रुपये बाबू साहब, खाने को तो होता नहीं। लड़का जवान हो गया; ब्याह का कहीं ठिकाना नहीं। बड़ी लड़की भी ब्याहने जोग हो गई। रुपये होते, तो किस दिन के लिए गाड़ रखते।'

झिंगुरीसिंह ने जब से उसके द्वार पर गाय देखी थी, उस पर दाँत लगाये हुए थे। गाय का डील-डौल और गठन कह रहा था कि उसमें पाँच सेर से कम दूध नहीं है। मन में सोच लिया था, होरी को किसी अरदब में डालकर गाय को उड़ा लेना चाहिए। आज वह अवसर आ गया।

बोले—अच्छा भाई, तुम्हारे पास कुछ नहीं है, अब राजी हुए। जितने रुपये चाहो, ले जाओ ; लेकिन तुम्हारे भले के लिए कहते हैं, कुछ गहने-गाठे हों, तो गिरों रखकर रुपये ले लो। इसटाम लिखोगे, तो सूद बढ़ेगा और झमेले में पड़ जाओगे।

होरी ने क़सम खाई कि घर में गहने के नाम का कच्चा सूत भी नहीं है। धनिया के हाथों में कड़े हैं, वह भी गिलट के।

झिंगुरीसिंह ने सहानुभूति का रंग मुँह पर पोतकर कहा—तो एक बात करो, यह नई गाय जो लाये हो, इसे हमारे हाथ बेच दो। सूद-इसटाम सब झगड़ों से बच जाओ ; चार आदमी जो दाम कहें, वह हमसे ले लो। हम जानते हैं, तुम उसे अपने शौक़ से लाये हो और बेचना नहीं चाहते ; लेकिन यह संकट तो टालना ही पड़ेगा।

होरी पहले तो इस प्रस्ताव पर हँसा, उस पर शान्त-मन से विचार भी न करना चाहता था ; लेकिन ठाकुर ने ऐसा ऊँच-नीच सुझाया, महाजनी के हथकण्डों का ऐसा भीषण रूप दिखाया कि उसके मन में भी यह बात बैठ गई। ठाकुर ठीक ही तो कहते हैं, जब हाथ में रुपये आ जायँ, गाय ले लेना। तीस रुपये का कागद लिखने पर कहीं पचीस रुपये मिलेंगे और तीन-चार साल तक न दिये गये तो पूरे सौ हो जायँगे। पहले का अनुभव यही बता रहा था कि कर्ज वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।

बोला—मैं घर जाकर सबसे सलाह कर लूँ, तो बताऊँ।

'सलाह नहीं करना है, उनसे कह देना है कि रुपये उधार लेने में अपनी बर्बादी के सिवा और कुछ नहीं।'

'मैं समझ रहा हूँ ठाकुर, अभी आके जवाब देता हूँ।'

लेकिन घर आकर उसने ज्यों ही वह प्रस्ताव किया कि कुहराम मच गया। धनिया तो कम चिल्लाई, दोनों लड़कियों ने तो दुनिया सिर पर उठा ली। नहीं देते अपनी गाय, रुपये जहाँ से चाहे लाओ। सोना ने तो यहाँ तक कह डाला, इससे तो कहीं अच्छा है, मुझे बेच डालो। गाय से कुछ बेसी ही मिल जायगा। होरी असमंजस में पड़ गया।

दोनों लड़कियाँ सचमुच गाय पर जान देती थीं। रूपा तो उसके गले से लिपट

जाती थी और बिना उसे खिलाये कौर मुँह में न डालती थी। गाय कितने प्यार से उसका हाथ चाटती थी, कितनी स्नेह-भरी आँखों से उसे देखती थी। उसका बछड़ा कितना सुन्दर होगा। अभी से उसका नामकरण हो गया था—मटरू। वह उसे अपने साथ लेकर सोयेगी। इस गाय के पीछे दोनों बहनों में कई बार लड़ाइयाँ हो चुकी थीं। सोना कहती, मुझे ज्यादा चाहती है, रूपा कहती, मुझे। इसका निर्णय अभी तक न हो सका था और दोनों दावे क़ायम थे।

मगर होरी ने आगा-पीछा सुझाकर आखिर धनिया को किसी तरह राजी कर लिया। एक मित्र से गाय उधार लेकर बेच देना थी बहुत ही वैसी बात; लेकिन बिपत में तो आदमी का धरम तक चला जाता है, यह कौन-सी बड़ी बात है। ऐसा न हो, तो लोग बिपत से इतना डरें क्यों। गोबर ने भी विशेष आपत्ति न की। वह आजकल दूसरी ही धुन में मस्त था। यह तय किया गया कि जब दोनों लड़कियाँ रात को सो जायँ, तो गाय झिंगुरीसिंह के पास पहुँचा दी जाय।

दिन किसी तरह कट गया। साँझ हुई। दोनों लड़कियाँ आठ बजते-बजते खा-पीकर सो गईं। गोबर इस करुण दृश्य से भागकर कहीं चला गया था। वह गाय को जाते कैसे देख सकेगा? अपने आँसुओं को कैसे रोक सकेगा? होरी भी ऊपर ही से कठोर बना हुआ था। मन उसका चंचल था। ऐसा कोई माई का लाल नहीं, जो इस वक्त उसे पचीस रुपये उधार दे दे, चाहे फिर पचास रुपये ही ले ले। वह गाय के सामने जाकर खड़ा हुआ, तो उसे ऐसा जान पड़ा कि उसकी काली-काली सजीव आँखों में आँसू भरे हुए हैं और वह कह रही है—क्या चार दिन में ही तुम्हारा मन मुझसे भर गया? तुमने तो वचन दिया था कि जीते-जी इसे न बेचूँगा। यही वचन था तुम्हारा! मैंने तो तुमसे कभी किसी बात का गिला नहीं किया। जो कुछ रूखा-सूखा तुमने दे दिया, वही खाकर सन्तुष्ट हो गई। बोलो।

धनिया ने कहा—लड़कियाँ तो सो गईं। अब इसे ले क्यों नहीं जाते। जब बेचना ही है, तो अभी बेच दो।

होरी ने काँपते हुए स्वर में कहा—मेरा तो हाथ नहीं उठता धनिया! उसका मुँह नहीं देखती। रहने दे, रुपये सूद पर ले लूँगा। भगवान् ने चाहा, तो सब अदा हो जायँगे। तीन-चार सौ होते ही क्या हैं। एक बार ऊख लग जाय।

धनिया ने गर्व-भरे प्रेम से उसकी ओर देखा—और क्या? इतनी तपस्या के

बाद तो घर में गऊ आई। उसे भी बेच दो। ले लो कल रुपये। जैसे और सब चुकाये जायँगे, वैसे इसे भी चुका देंगे।

भीतर बड़ी उमस हो रही थी। हवा बन्द थी। एक पत्ती भी न हिलती थी। बादल छाये हुए थे, पर वर्षा के लक्षण न थे। होरी ने गाय को लाकर बाहर बाँध दिया। धनिया ने टोका भी, कहाँ लिये जाते हो? पर होरी ने सुना नहीं, बोला—बाहर हवा में बाँधे देता हूँ। आराम से रहेगी। उसके भी तो जान है। गाय बाँधकर वह अपने मँझले भाई शोभा को देखने गया। शोभा को इधर कई महीने से दमे का अरज़ा हो गया था। दवा-दारू को जुगत नहीं। खाने-पीने का प्रबन्ध नहीं, और काम करना पड़ता था जी तोड़कर; इसलिए उसकी दशा दिन-दिन बिगड़ती जाती थी। शोभा सहनशील आदमी था, लड़ाई-झगड़े से कोसों भागनेवाला। किसी से मतलब नहीं। अपने काम से काम। होरी उसे चाहता था। और वह भी होरी का अदब करता था। दोनों में रुपये-पैसे की बातें होने लगीं। राय साहब का यह नया फ़रमान आलोचनाओं का केन्द्र बना हुआ था।

कोई ग्यारह बजते-बजते होरी लौटा और भीतर जा रहा था कि उसे भास हुआ, जैसे गाय के पास कोई आदमी खड़ा है। पूछा—कौन है वहाँ खड़ा?

हीरा बोला—मैं हूँ दादा, तुम्हारे कौड़े में आग लेने आया था।

हीरा उसके कौड़े में आग लेने आया है, इस ज़रा-सी बात में होरी को भाई की आत्मीयता का परिचय मिला। गाँव में और भी तो कौड़े हैं। कहीं से भी आग मिल सकती थी। हीरा उसके कौड़े में आग ले रहा है, तो अपना ही समझकर तो। सारा गाँव इस कौड़े में आग लेने आता था। गाँव में सबसे सम्पन्न यही कौड़ा था; मगर हीरा का आना दूसरी बात थी। और उस दिन की लड़ाई के बाद! हीरा के मन में कपट नहीं रहता। गुस्सैल है; लेकिन दिल का साफ।

उसने स्नेह-भरे स्वर में पूछा—तमाखू है कि ला दूँ?

'नहीं, तमाखू तो है दादा।'

'सोभा तो आज बहुत बेहाल है।'

'कोई दवाई नहीं खाता, तो क्या किया जाय। उसके लेखे तो सारे बैद, डाक्टर, हकीम अनाड़ी हैं। भगवान् के पास जितनी अकल थी, वह उसके और उसकी घरवाली के हिस्से पड़ गई।'

होरी ने चिन्ता से कहा—यही तो बुराई है उसमें। अपने सामने किसी को गिनता ही नहीं। और चिढ़ने तो बीमारी में सभी हो जाते हैं। तुम्हें याद है कि नहीं, जब तुम्हें इंफ़िजा हो गया था, तो दवाई उठाकर फेंक देते थे। मैं तुम्हारे दोनों हाथ पकड़ता था, तब तुम्हारी भाभी तुम्हारे मुँह में दवाई डालती थी। उस पर तुम उसे हज़ारों गालियाँ देते थे।

'हाँ दादा, भला वह बात भूल सकता हूँ। तुमने इतना न किया होता, तो तुमसे लड़ने के लिए कैसे बचा रहता।'

होरी को ऐसा मालूम हुआ कि हीरा का स्वर भारी हो गया है। उसका गला भी भर आया।

'बेटा, लड़ाई-झगड़ा तो जिन्दगी का धरम है। इससे जो अपने हैं, वह पराये थोड़े ही हो जाते हैं। जब घर में चार आदमी रहते हैं, तभी तो लड़ाई-झगड़े भी होते हैं। जिसके कोई है ही नहीं, उसके कौन लड़ाई करेगा।'

दोनों ने साथ चिलम पी। तब हीरा अपने घर गया, होरी अन्दर भोजन करने चला।

धनिया रोष से बोली—देखी अपने सपूत की लीला? इतनी रात हो गई और अभी उसे अपने सैल से छुट्टी नहीं मिली। मैं सब जानती हूँ। मुझको सारा पता मिल गया है। भोला की वह राँड लड़की नहीं है, झुनिया! उसी के फेर में पड़ा रहता है।

होरी के कानों में भी इस बात की भनक पड़ी थी, पर उसे विश्वास न आया था। गोबर बेचारा इन बातों को क्या जाने।

बोला—किसने कहा तुमसे?

धनिया प्रचण्ड हो गई—तुमसे छिपी होगी, और तो सभी जगह चर्चा चल रही है। यह है भुग्गा, वह बहत्तर घाट का पानी पिये हुए। इसे उँगलियों पर नचा रही है, और यह समझता है, वह इस पर जान देती है। तुम उसे समझा दो, नहीं कोई ऐसी-वैसी बात हो गई, तो कहीं के न रहोगे।

होरी का दिल उमंग पर था। चुहल की सूझी—झुनिया देखने-सुनने में तो बुरी नहीं है। उसी से कर ले सगाई। ऐसी सस्ती मेहरिया और कहाँ मिली जाती है।

धनिया को यह चुहल तीर-सी लगी—झुनिया इस घर में आये, तो मुँह झुलस दूँ राँड़ का। गोबर की चहेती है, तो उसे लेकर जहाँ चाहे, रहे।

'और जो गोबर इसी घर में लाये !'

'तो यह दोनो लड़कियाँ किसके गले बाँधोगे ? फिर बिरादरी में तुम्हें कौन पूछेगा, कोई द्वार पर खड़ा तक तो होगा नहीं।'

'उसे इसकी क्या परवाह।'

'इस तरह नहीं छोड़ूँगी लाला को। मर-मर मैंने पाला है और झुनिया आकर राज करेगी। मुँह में आग लगा दूँगी राँड़ के।'

सहसा गोबर आकर घबड़ाई हुई आवाज़ में बोला—दादा, सुन्दरिया को क्या हो गया ? क्या काले ने छू लिया ? वह तो पड़ी तड़प रही है।

होरी चौके में जा चुका था। थाली सामने छोड़कर बाहर निकल आया और बोला—क्या असगुन मुँह से निकालते हो। अभी तो मैं देखे आ रहा हूँ। लेटी थी।

तीनों बाहर गये। चिराग लेकर देखा। सुन्दरिया के मुँह से फिचकुर निकल रहा था। आँखें पथरा गई थीं, पेट फूल गया था और चारों पाँव फैल गये थे। धनिया सिर पीटने लगी। होरी पण्डित दातादीन के पास दौड़ा। गाँव में पशु-चिकित्सा के वही आचार्य थे। पण्डितजी सोने जा रहे थे। दौड़े हुए आये। दम के दम में सारा गाँव जमा हो गया। गाय को किसी ने कुछ खिला दिया। लक्षण स्पष्ट थे। साफ़ विष दिया गया है; लेकिन गाँव में ऐसा कौन मुद्दई है, जिसने विष दिया हो। ऐसी वारदात तो इस गाँव में कभी हुई नहीं; लेकिन बाहर का कौन आदमी गाँव में आया। होरी को किसी से दुश्मनी भी न थी कि उस पर सन्देह किया ज़ाय। हीरा से कुछ कहा-सुनी हुई थी; मगर वह भाई-भाई का झगड़ा था। सबसे ज़्यादा दुखी तो हीरा ही था। धमकियाँ दे रहा था कि जिसने यह हत्यारों का काम किया है, उसे पाये तो ख़ून पी जाय। वह लाख गुस्सैल हो; पर इतना नीच काम नहीं कर सकता।

आधी रात तक जमघट रहा। सभी होरी के दुःख में दुखी थे और बधिक को गालियाँ देते थे। वह इस समय पकड़ा जा सकता, तो उसके प्राणों की कुशल न थी। जब यह हाल है तो कोई जानवरों को बाहर कैसे बाँधेगा। अभी तक रात-बिरात सभी जानवर बाहर पड़े रहते थे। किसी तरह की चिन्ता न थी; लेकिन अब तो एक नई विपत्ति आ खड़ी हुई थी। क्या गाय थी कि बस देखता रहे। पूजने

जोग। पाँच सेर से कम दूध न था। सौ-सौ का एक-एक बाछा होता। आते देर न हुई और यह वज्र गिर पड़ा।

जब सब लोग अपने-अपने घर चले गये, तो धनिया होरी को कोसने लगी। तुम्हें कोई लाख समझाये, करोगे अपने मन की। तुम गाय खोलकर आँगन से चले, तब तक मैं जूझती रही कि बाहर न ले जाओ। हमारे दिन पतले हैं, न जाने कब क्या हो जाय; लेकिन नहीं, उसे गर्मी लग रही है। अब तो ख़ूब ठण्डी हो गई और तुम्हारा कलेजा भी ठण्डा हो गया। ठाकुर माँगते थे; दे दिया होता, तो एक बोझ सिर से उतर जाता और निहोरे का निहोरा होता; मगर फिर यह तमाचा कैसे पड़ता। कोई बुरी बात होनेवाली होती है तो मति पहले ही हर जाती है। इतने दिन मजे से घर में बँधती रही, न गर्मी लगी, न जूड़ी आई। इतनी जल्दी सबको पहचान गई थी कि मालूम ही न होता था कि बाहर से आई है। बच्चे उसकी सींगों से खेलते रहते थे। सिर तक न हिलाती थी। जो कुछ नाद में डाल दो, चाट-पोंछकर साफ़ कर देती थी। लच्छमी थी, अभागों के घर क्या रहती। सोना और रूपा भी यह हलचल सुनकर जाग गई थीं और बिलख-बिलखकर रो रही थीं। उसकी सेवा का भार अधिकतर उन्हीं दोनों पर था। उनकी संगिनी हो गई थी। दोनों खाकर उठतीं तो एक-एक टुकड़ा रोटी उसे अपने हाथों से खिलातीं। कैसा जीभ निकालकर खा लेती थी और जब तक उनके हाथ का कौर न पा लेती, खड़ी ताकती रहती। भाग्य फूट गये!

गोबर और दोनों लड़कियाँ रो-धोकर सो गई थीं। होरी भी लेटा। धनिया उसके सिरहाने पानी का लोटा रखने आई तो होरी ने धीरे से कहा—तेरे पेट में बात पचती नहीं, कुछ सुन पायेगी तो गाँव-भर ढिंढोरा पीटती फिरेगी।

धनिया ने आपत्ति की—भला सुनूँ; मैंने कौन-सी बात पीट दी कि यों ही नाम बदनाम कर दिया।

'अच्छा, तेरा सन्देह किसी पर होता है?'

'मेरा सन्देह तो किसी पर नहीं है। कोई बाहरी आदमी था।'

'किसी से कहेगी तो नहीं?'

'कहूँगी नहीं, तो गाँववाले मुझे गहने कैसे गढ़वा देंगे!'

'अगर किसी से कहा, तो मार ही डालूँगा।'

'मुझे मारकर सुखी न रहोगे। अब दूसरी मेहरिया नहीं मिली जाती। जब तक हूँ, तुम्हारा घर सँभाले हुए हूँ। जिस दिन मर जाऊँगी, सिर पर हाथ धरकर रोओगे। अभी मुझमें सारी बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं, तब आँखों से आँसू निकलेंगे।'

'मेरा सन्देह हीरा पर होता है।'

'झूठ, बिलकुल झूठ! हीरा इतना नीच नहीं है। वह मुँह का ही खराब है।'

'मैंने अपनी आँखों देखा। सच, तेरे सिर की सौंह।'

'तुमने अपनी आँखों देखा! कब?'

'वही, मैं सोभा को देखकर आया; तो वह सुन्दरिया की नाँद के पास खड़ा था। मैंने पूछा—कौन है! तो बोला, मैं हूँ हीरा, कौड़े में से आग लेने आया था। थोड़ी देर मुझसे बातें करता रहा। मुझे चिलम पिलाई। वह उधर गया, मैं भीतर आया और वही गोबर ने पुकार मचाई। मालूम होता है, मैं गाय बाँधकर सोभा के घर गया हूँ, और इसने उधर आकर कुछ खिला दिया है। साइत फिर यह देखने आया था कि मरी या नहीं।'

धनिया ने लम्बी साँस लेकर कहा—इस तरह के होते हैं भाई, जिन्हें भाई का गला काटने में भी हिचक नहीं होती। उफ्फोह! हीरा मन का इतना काला है! और डाढ़ीजार को मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया।

'अच्छा जा सो रह; मगर किसी से भूलकर भी जिकर न करना।'

'कौन, सबेरा होते ही लाला को थाने न पहुँचाऊँ, तो अपने असल बाप की नहीं। यह हत्यारा भाई कहने जोग है! यही भाई का काम है! वह बैरी है, पक्का बैरी और बैरी को मारने में पाप नहीं, छोड़ने में पाप है।'

होरी ने धमकी दी—मैं कहे देता हूँ धनिया, अनर्थ हो जायगा।

धनिया आवेश में बोली—अनर्थ नहीं, अनर्थ का बाप हो जाय। मैं बिना लाला को बड़े घर भेजवाये मानूँगी नहीं। तीन साल चक्की पिसवाऊँगी, तीन साल। वहाँ से छूटेंगे, तो हत्या लगेगी। तीरथ करना पड़ेगा, भोज देना पड़ेगा। इस धोखे में न रहें लाला! और गवाही दिलाऊँगी तुमसे, बेटे के सिर पर हाथ रखकर।

उसने भीतर जाकर किवाड़ बन्द कर लिये और होरी बाहर अपने को कोसता पड़ा रहा। जब स्वयं उसके पेट में बात न पची, तो धनिया के पेट में क्या पचेगी।

अब यह चुड़ैल माननेवाली नहीं। ज़िद पर आ जाती है, तो किसी की सुनती ही नहीं। आज उसने अपने जीवन में सबसे बड़ी भूल की।

चारों ओर नीरव अन्धकार छाया हुआ था। दोनों बैलों के गले की घण्टियाँ कभी-कभी बज उठती थीं। दस क़दम पर मृतक गाय पड़ी हुई थी और होरी घोर पश्चात्ताप में करवटें बदल रहा था। अन्धकार में प्रकाश की रेखा कहीं नज़र न आती थी।

७

प्रातःकाल होरी के घर में एक पूरा हंगामा हो गया। होरी धनिया को मार रहा था। धनिया उसे गालियाँ दे रही थी। दोनों लड़कियाँ बाप के पाँवों से लिपटी चिल्ला रही थीं, और गोबर माँ को बचा रहा था। बार-बार होरी का हाथ पकड़कर पीछे ढकेल देता; पर ज्योंही धनिया के मुँह से कोई गाली निकल जाती, होरी अपने हाथ छुड़ाकर उसे दो-चार घूँसे और लात जमा देता। उसका बूढ़ा क्रोध जैसे किसी गुप्त संचित शक्ति को निकाल लाया हो। सारे गाँव में हलचल पड़ गई। लोग समझाने के बहाने तमाशा देखने आ पहुँचे। सोभा लाठी टेकता आ खड़ा हुआ। दातादीन ने डाँटा—यह क्या है होरी, तुम बावले हो गये हो क्या? कोई इस तरह घर की लक्ष्मी पर हाथ छोड़ता है? तुम्हें तो यह रोग न था। क्या हीरा की छूत तुम्हें भी लग गई?

होरी ने पालागन करके कहा—महाराज, तुम इस बखत न बोलो। मैं आज इसकी बान छुड़ाकर तब दम लूँगा। मैं जितना ही तरह देता हूँ, उतना ही यह सिर चढ़ती जाती है।

धनिया सजल क्रोध में बोली—महाराज, तुम गवाह रहना। मैं आज इसे और इसके हत्यारे भाइयों को जेहल भेजवाकर तब पानी पिऊँगी। इसके भाई ने गाय को माहुर खिलाकर मार डाला। अब जो मैं थाने में रपट लिखाने जा रही हूँ तो यह हत्यारा मुझे मारता है। इसके पीछे अपनी ज़िन्दगी चौपट कर दी, उसका यह इनाम दे रहा है।

होरी ने दाँत पीसकर और आँखें निकालकर कहा—फिर वही बात मुँह से निकाली। तूने देखा था हीरा को माहुर खिलाते?

'तू कसम खा जा कि तूने हीरा को गाय की नाँद के पास खड़े नहीं देखा ?'

'हाँ, मैंने नहीं देखा, कसम खाता हूँ।'

'बेटे के माथ पर हाथ रख के कसम खा !'

होरी ने गोबर के माथ पर काँपता हुआ हाथ रखकर काँपते हुए स्वर में कहा—मैं बेटे की कसम खाता हूँ कि मैंने हीरा को नाँद के पास नहीं देखा।

धनिया ने ज़मीन पर थूककर कहा—थुड़ी है, तेरी झुठाई पर ! तूने खुद मुझसे कहा कि हीरा चोरों की तरह नाँद के पास खड़ा था। और अब भाई के पक्ष में झूठ बोलता है। थुड़ी है ! अगर मेरे बेटे का बाल भी बाँका हुआ, तो घर में आग लगा दूँगी। सारी गृहस्ती में आग लगा दूँगी। भगवान्, आदमी मुँह से बात कहकर इतनी बेसरमी से मुकुर जाता है !

होरी पाँव पटककर बोला—धनिया, गुस्सा मत दिला, नहीं बुरा होगा।

'मार तो रहा है, और मार ले। जो तू अपने बाप का बेटा होगा, तो आज मुझे मारकर तब पानी पियेगा। पापी ने मारते-मारते मेरा भुरकस निकाल लिया, फिर भी इसका जो नहीं भरा। मुझे मारकर समझता है, मैं बड़ा बीर हूँ। भाइयों के सामने भीगी बिल्ली बन जाता है, पापी कहीं का, हत्यारा !'

फिर वह बैन कहकर रोने लगी—इस घर में आकर उसने क्या-क्या नहीं झेला, किस-किस तरह पेट-तन नहीं काटा, किस तरह एक-एक लत्ते को तरसी, किस तरह एक-एक पैसा प्राणों की तरह सचा, किस तरह घर-भर को खिलाकर आप पानी पीकर सो रही। और आज उन सारे बलिदानों का यह पुरस्कार ! भगवान् बैठे यह अन्याय देख रहे हैं और उसकी रक्षा को नहीं दौड़ते। गज की और द्रौपदी की रक्षा करने बैकुण्ठ से दौड़े थे। आज क्यों सीठी नींद सोये हुए हैं।

जनमत धीरे-धीरे धनिया की ओर आने लगा। इसमें अब किसी को सन्देह नहीं रहा कि हीरा ने ही गाय को ज़हर दिया। होरी ने बिलकुल झूठी क़सम खाई है, इसका भी लोगों को विश्वास हो गया। गोबर को भी बाप की इस झूठी क़सम और उसके फलस्वरूप आनेवाली विपत्ति की शंका ने होरी के विरुद्ध कर दिया। उस पर जो दातादीन ने डाँट बताई, तो होरी परास्त हो गया। चुपके से बाहर चला गया, सत्य ने विजय पाई।

दातादीन ने शोभा से पूछा—तुम कुछ जानते हो सोभा, क्या बात हुई ?

शोभा ज़मीन पर लेटा हुआ बोला—मैं तो महराज आठ दिन से बाहर नहीं निकला। होरी दादा कभी-कभी जाकर कुछ दे आते हैं, उसी से काम चलता है। रात भी वह मेरे पास गये थे। किसने क्या किया, मैं कुछ नहीं जानता। हाँ, कल साँझ को हीरा मेरे घर खुरपी माँगने गया था। कहता था, एक जड़ी खोदना है। फिर तब से मेरी उससे भेंट नहीं हुई।

धनिया इतना शह पाकर बोली—पण्डित दादा, यह उसी का काम है। शोभा के घर से खुरपी माँगकर लाया और कोई जड़ी खोदकर गाय को खिला दी। उस रात को जो झगड़ा हुआ था, उसी दिन से वह खार खाये बैठा था।

दातादीन बोले—यह बात साबित हो गई, तो उसे हत्या लगेगी। पुलीस कुछ करे या न करे, धरम तो बिना दण्ड दिये न रहेगा। चली तो जा रुपिया, हीरा को बुला ला। कहना, पण्डित दादा बुला रहे हैं। अगर उसने हत्या नहीं की है, तो गंगाजली उठा ले और चौरे पर चलकर क़सम खाय।

धनिया बोली—महाराज, उसके क़सम का भरोसा नहीं। चटपट खा लेगा। जब इसने झूठी क़सम खा ली, जो बड़ा धर्मात्मा बनता है, तो हीरा का क्या बिसवास!

गोबर बोला—खा ले झूठी क़सम, बंस का अन्त हो जाय। बूढ़े जीते रहें। जवान जीकर क्या करेंगे।

रूपा एक क्षण में आकर बोली—काका घर में नहीं हैं, पण्डित दादा! काकी कहती है, कहीं चले गये हैं।

दातादीन ने लम्बी दाढ़ी फटकारकर कहा—तूने पूछा नहीं, कहाँ चले गये हैं? घर में छिपा बैठा न हो। देख तो सोना, भीतर तो नहीं बैठा है।

धनिया ने टोका—उसे मत भेजो दादा! हीरा के सिर हत्या सवार है, न जाने क्या कर बैठे।

दातादीन ने खुद लकड़ी सँभाली और खबर लाये कि हीरा सचमुच कहीं चला गया है। पुनिया कहती है, लुटिया-डोर और डण्डा सब लेकर गये हैं। पुनिया ने पूछा भी, कहाँ जाते हो; पर बताया नहीं। उसने पाँच रुपये आले में रखे थे। रुपये वहाँ नहीं हैं। साइत रुपये भी लेता गया।

धनिया शीतल हृदय से बोली—मुँह में कालिख लगाकर कहीं भागा होगा।

शोभा बोला—भाग के कहाँ जायगा। गंगा नहाने न चला गया हो।

धनिया ने शंका की—गंगा जाता, तो रुपये क्यों ले जाता, और आजकल कोई परब भो तो नहीं है ?

इस शंका का कोई समाधान न मिला। धारणा दृढ़ हो गई।

आज होरी के घर भोजन नहीं पका। न किसी ने बैलों को पानी दिया। सारे गाँव में सनसनी फैली हुई थी। दो-दो, चार-चार आदमी जगह-जगह जमा होकर इसी विषय की आलोचना कर रहे थे। हीरा अवश्य कहीं भाग गया। देखा होगा कि भेद खुल गया, अब जेहल अलग जाना पड़ेगा, हत्या अलग लगेगी, तब कहीं भाग गया। पुनिया भी रो रही थी, कुछ कहा, न सुना, न जाने कहाँ चल दिये।

जो कुछ कसर रह गई थी वह संध्या-समय हलके के थानेदार ने आकर पूरी कर दी। गाँव के चौकीदार ने इस घटना की रपट की, जैसा उसका कर्तव्य था। और थानेदार साहब भला अपने कर्तव्य से कब चूकनेवाले थे। अब गाँववालों को भी उनका सेवा-सत्कार करके अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। दातादीन, झिंगुरी-सिंह, नोखेराम, उनके चारों प्यादे, मँगरू साह और लाला पटेश्वरी, सभी आ पहुँचे और दारोगाजी के सामने हाथ बाँधकर खड़े हो गये। होरी की तलबी हुई। जीवन में यह पहला अवसर था कि वह दारोगा के सामने आया। ऐसा डर रहा था, जैसे फाँसी हो जायगी। धनिया को पीटते समय उसका एक-एक अंग फड़क रहा था। दारोगा के सामने कछुए की भाँति भीतर सिमटा जाता था। दारोगा ने उसे आलोचक नेत्रों से देखा और उसके हृदय तक पहुँच गये। आदमियों की नस पहचानने का उन्हें अच्छा अभ्यास था। किताबी मनोविज्ञान में कोरे, पर व्यावहारिक मनोविज्ञान के मर्मज्ञ थे। यक़ीन हो गया, आज अच्छे का मुँह देखकर उठे हैं। होरी का चेहरा कहे देता था, इसे केवल एक घुड़की काफी है।

दारोगा ने पूछा—तुझे किस पर शुबहा है ?

होरी ने जमीन छुई और हाथ बाँधकर बोला—मेरा सुबहा किसी पर नहीं है सरकार, गाय अपने मौत से मरी है। बुड्ढी हो गई थी।

धनिया भी आकर पीछे खड़ी थी। तुरत बोली—गाय मारी है तुम्हारे भाई हीरा ने। सरकार ऐसे बौड़म नहीं हैं कि जो कुछ तुम कह दोगे, वह मान लेंगे। यहाँ जाँच-तहकियात करने आते हैं।

दारोगाजी ने पूछा—यह कौन औरत है ?

कई आदमियों ने दारोगाजी से कुछ बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए चढ़ा-ऊपरी की। एक साथ बोले और अपने मन को इस कल्पना से सन्तोष दिया कि पहले मैं बोला—होरी की घरवाली है सरकार !

'तो इसे बुलाओ, मैं पहले इसीका बयान लिखूँगा। वह कहाँ है, हीरा ?'

विशिष्ट जनों ने एक स्वर से कहा—वह तो आज सवेरे से ही कहीं चला गया है सरकार !

'मैं उसके घर की तलाशी लूँगा।'

तलाशी ! होरी की साँस तले-ऊपर होने लगी। उसके भाई हीरा के घर तलाशी होगी, और हीरा घर में नहीं है। तो फिर होरी के जीते जी, और उसके देखते यह तलाशी न होने पायगी, और धनिया से अब उसका कोई सम्बन्ध नहीं। जहाँ चाहे, जाय। जब वह उसकी इज्ज़त बिगाड़ने पर आ गई है, तो उसके घर में कैसे रह सकती है। जब गली-गली ठोकर खायेगी, तब पता चलेगा।

गाँव के विशिष्ट जनों ने इस महान संकट को टालने के लिए काना-फूसी शुरू की।

दातादीन ने गंजा सिर हिलाकर कहा—यह सब कमाने के ढंग हैं। पूछो, हीरा के घर में क्या रखा है।

पटेश्वरीलाल बहुत लम्बे थे; पर लंबे होकर भी बेवकूफ़ न थे। अपना लम्बा काला मुँह और लम्बा करके बोले—और यहाँ आया है किसलिए, और जब आया है, बिना कुछ लिये-दिये गया कब है ?

झिंगुरीसिंह ने होरी को बुलाकर कान में कहा—निकालो जो कुछ देना हो। यों गला न छूटेगा।

दारोगाजी ने अब ज़रा गरजकर कहा—मैं हीरा के घर की तलाशी लूँगा।

होरी के मुख का रंग ऐसा उड़ गया था, जैसे देह का सारा रक्त सूख गया हो। तलाशी उसके घर हुई तो, उसके भाई के घर हुई तो, एक ही बात है। हीरा अलग सही; पर दुनिया तो जानती है, वह उसका भाई है; मगर इस वक्त उसका कुछ बस नहीं। उसके पास रुपये होते, तो इसी वक्त पचास रुपये लाकर दारोगाजी के चरणों पर रख देता और कहता—सरकार, मेरी इज्जत अब आपके हाथ है। मगर उसके पास तो ज़हर खाने को भी एक पैसा नहीं है। धनिया के पास चाहे दो-चार रुपये

पड़े हों; पर वह चुड़ैल भला क्यों देने लगी। मृत्युदण्ड पाये हुए आदमी की भाँति सिर झुकाये, अपने अपमान की वेदना का तीव्र अनुभव करता हुआ चुपचाप खड़ा रहा।

दातादीन ने होरी को सचेत किया—अब इस तरह खड़े रहने से काम न चलेगा होरी, रुपये की कोई जुगत करो।

होरी दीन स्वर में बोला—अब मैं क्या अरज करूँ महाराज! अभी तो पहले ही की गठरी सिर पर लदी है, और किस मुँह से माँगूँ; लेकिन इस संकट से उबार लो। जीता रहा, तो कौड़ी-कौड़ी चुका दूँगा। मैं मर भी जाऊँ, तो गोबर तो है ही।

नेताओं में सलाह होने लगी—दारोगाजी को क्या भेंट किया जाय। दातादीन ने पचास का प्रस्ताव किया। झिंगुरीसिंह के अनुमान में सौ से कम पर सौदा न होगा। नोखेराम भी सौ के पक्ष में थे। और होरी के लिए सौ और पचास में कोई अन्तर न था। इस तलाशी का संकट उसके सिर से टल जाय। पूजा चाहे कितनी ही चढ़ानी पड़े। मरे को मन-भर लकड़ी से जलाओ, या दस मन से, उसे क्या चिन्ता!

मगर पटेश्वरी से यह अन्याय न देखा गया। कोई डाका या क़तल तो हुआ नहीं। केवल तलाशी हो रही है। इसके लिए बीस रुपये बहुत हैं।

नेताओं ने उन्हें धिक्कारा—तो फिर तुम्हीं दारोगाजी से बातचीत करना। हम लोग नगीच न जायँगे। कौन घुड़कियाँ खाय।

होरी ने पटेश्वरी के पाँव पर सिर रख दिया—भैया, मेरा उद्धार करो। जब तक जीऊँगा, तुम्हारी तावेदारी करूँगा।

दारोगाजी ने फिर अपने विशाल वक्ष और विशालतर उदर की पूरी शक्ति से कहा—कहाँ है होरी का घर? मैं उसके घर की तलाशी लूँगा।

पटेश्वरी ने आगे बढ़कर दारोगाजी के कान में कहा—तलाशी लेकर क्या करोगे हुजूर, उसका भाई आपकी तावेदारी के लिए हाज़िर है।

दोनों आदमी ज़रा अलग जाकर बातें करने लगे।

'कैसा आदमी है?'

'बहुत ही ग़रीब हुजूर! भोजन का ठिकाना भी नहीं।'

'सच!'

'हाँ हुजूर, ईमान से कहता हूँ।'

'अरे, तो क्या एक पचासे का डौल भी नहीं है ?'

'कहाँ की बात हुजूर! दस मिल जायँ, तो हज़ार समझिए। पचास तो पचास जनम में भी मुमकिन नहीं और वह भी जब कोई महाजन खड़ा हो जायगा!'

दारोग़ाजी ने एक मिनट तक विचार करके कहा—तो फिर उसे सताने से क्या फ़ायदा। मैं ऐसों को नहीं सताता, जो आप ही मर रहे हों।

पटेश्वरी ने देखा, निशाना और आगे जा पड़ा। बोले—नहीं हुजूर, ऐसा न कीजिए, नहीं फिर हम कहाँ जायँगे। हमारे पास दूसरी कौन-सी खेती है।

'तुम इलाके के पटवारी हो जी, कैसी बातें करते हो ?'

'जब ऐसा ही कोई अवसर आ जाता है, तो आपकी बदौलत हम भी कुछ पा जाते हैं। नहीं, पटवारी को कौन पूछता है।'

'अच्छा जाओ, तीस रुपये दिलवा दो। बीस रुपये हमारे, दस रुपये तुम्हारे।'

'चार मुखिया हैं, इसका ख़्याल कीजिए।'

'अच्छा, आधे-आध पर रखो और जल्दी करो। मुझे देर हो रही है।'

पटेश्वरी ने झिंगुरी से कहा, झिंगुरी ने होरी को इशारे से बुलाया, अपने घर ले गये, तीस रुपये गिनकर उसके हवाले किये और एहसान से दबाते हुए बोले—आज ही कागद लिखा लेना। तुम्हारा मुँह देखकर रुपये दे रहा हूँ, तुम्हारी भलमंसी पर।

होरी ने रुपये लिये और अँगोछे के कोर में बाँधे प्रसन्न-मुख आकर दारोग़ाजी की ओर चला।

सहसा धनिया झपटकर आगे आई और अँगोछी एक झटके के साथ उसके हाथ से छीन ली। गाँठ पक्की न थी। झटका पाते ही खुल गई और सारे रुपये ज़मीन पर बिखर गये। नागिन की तरह फुँकारकर बोली—ये रुपये कहाँ लिये जा रहा है, बता? भला चाहता है, तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ। घर के परानी रात-दीन मरें और दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अँजुली-भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने! ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत! जिसके घर में चूहे लोटें, वह भी इज्जतवाला है! दरोगा तलासी ही तो लेगा। ले ले जहाँ चाहे तलासी। एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर यह पलेथन! वाह री तेरी इज्जत!

होरी खून का घूँट पीकर रह गया। सारा समूह जैसे थर्रा उठा। नेताओं के सिर

झुक गये और दारोगा का मुँह ज़रा-सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी लताड़ न मिली थी।

होरी स्तम्भित-सा खड़ा रहा। जीवन में आज पहली बार धनिया ने उसे भरे अखाड़े में पटकनी दी, आकाश तका दिका। अब वह कैसे सिर उठाये।

मगर दारोगाजी इतनी जल्द हार माननेवाले न थे। खिसियाकर बोले—मुझे ऐसा मालूम होता है कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फँसाने के लिए खुद गाय को ज़हर दे दिया।

धनिया हाथ मटकाकर बोली—हाँ, दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली, फिर? किसी दूसरे का जानवर तो नहीं मारा? तुम्हारे तहकियात में यही निकलता है, तो यही लिखो। पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ियाँ। देख लिया तुम्हारा न्याय और तुम्हारे अक्कल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है, दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।

होरी आँखों से अँगारे बरसाता धनिया की ओर लपका; पर गोबर सामने आकर खड़ा हो गया और उग्र भाव से बोला—अच्छा दादा, अब बहुत हुआ। पीछे हट जाओ, नहीं मैं कहे देता हूँ, मेरा मुँह न देखोगे। तुम्हारे ऊपर हाथ न उठाऊँगा। ऐसा कपूत नहीं हूँ। यहीं गले में फाँसी लगा लूँगा।

होरी पीछे हट गया और धनिया शेर होकर बोली—तू हट जा गोबर, देखूँ तो क्या करता है मेरा। दरोगाजी बैठे हैं। इसकी हिम्मत देखूँ। घर में तलासी होने से इसकी इज्जत जाती है, अपनी मेहरिया को सारे गाँव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जाती! यही तो बीरों का धरम है। बड़ा बीर है, तो किसी मर्द से लड़। जिसकी बाँह पकड़कर लाया, उसे मारकर बहादुर न कहलायेगा। तू समझता होगा, मैं इसे रोटी-कपड़ा देता हूँ। आज से अपना घर सँभाल। देख तो इसी गाँव में तेरी छाती पर मूँग दलकर रहती हूँ कि नहीं, और उससे अच्छा खाऊँ-पहनूँगी। इच्छा हो देख ले।

होरी परास्त हो गया। उसे ज्ञात हुआ, स्त्री के सामने पुरुष कितना निर्बल, कितना निरुपाय है।

नेताओं ने रुपये चुनकर उठा लिये थे और दारोगाजी को वहाँ से चलने का इशारा कर रहे थे। धनिया ने एक ठोकर और जमाई—जिसके रुपये हों, ले जाकर

उसे दे दो। हमें किसी से उधार नहीं लेना है। और जो देना है, तो उसी से लेना। मैं दमड़ी भी न दूँगी, चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही चढ़ना पड़े। हम बाकी चुकाने को पचीस रुपये माँगते थे, किसी ने न दिया। आज अँजुली-भर रुपये ठनाठन निकालके दे दिये। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाँट-बखरा होनेवाला था। सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसनेवाले। सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।

नेताओं के मुँह में कालिख-सी लगी हुई थी। दारोगाजी के मुँह पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी। इज्ज़त बचाने के लिए होरी के घर की ओर चले।

रास्ते में दारोगा ने स्वीकार किया—औरत है बड़ी दिलेर।

पटेश्वरी बोले—दिलेर क्या है हुजूर, कर्कशा है। ऐसी औरत को तो गोली से मार दे।

'तुम लोगों का क़ाफ़िया तंग कर दिया उसने। चार-चार तो मिलते ही।'

'हुजूर के भी तो पन्द्रह रुपये गये।'

'मेरे कहाँ जा सकते हैं। वह न देगा, गाँव के मुखिया देंगे और पन्द्रह रुपये की जगह पूरे पचास रुपये। आप लोग चटपट इन्तज़ाम कीजिए।'

पटेश्वरीलाल ने हँसकर कहा—हुजूर बड़े दिल्लगीबाज़ हैं।

दातादीन बोले—बड़े आदमियों के यही लक्षण हैं। ऐसे भाग्यवानों के दर्शन कहाँ होते हैं।

दारोगाजी ने कठोर स्वर में कहा—यह खुशामद फिर कीजिएगा। इस वक्त तो मुझे पचास रुपये दिलवाइए, नक़द; और यह समझ लो कि आना-कानी की, तो मैं तुम चारों के घर की तलाशी लूँगा। बहुत मुमकिन है कि तुमने हीरा और होरी को फँसाकर उनसे सौ-पचास ऐंठने के लिए यह पाखण्ड रचा हो।

नेतागण अभी तक यह समझ रहे हैं, दारोगाजी विनोद कर रहे हैं।

झिंगुरीसिंह ने आँखें मारकर कहा—निकालो पचास रुपये पटवारी साहब!

नोखेराम ने उनका समर्थन किया—पटवारी साहब का इलाका है। उन्हें ज़रूर आपकी खातिर करनी चाहिए।

पण्डित नोखेरामजी की चौपाल आ गई। दारोगाजी एक चारपाई पर बैठ गये

और बोले—तुम लोगों ने क्या निश्चय किया ? रुपये निकालते हो या तलाशी करवाते हो ?

दातादीन ने आपत्ति की—मगर हुजूर···

'मैं अगर-मगर कुछ नहीं सुनना चाहता।'

झिंगुरीसिंह ने साहस किया—सरकार, यह तो सरासर···

'मैं पन्द्रह मिनट का समय देता हूँ। अगर इतनी देर में पूरे पचास रुपये न आये, तो तुम चारों के घर की तलाशी होगी। और गण्डासिंह को जानते हो। उसका मारा पानी भी नहीं माँगता।'

पटेश्वरीलाल ने तेज़ होकर कहा—आपको अख्तियार है, तलाशी ले लें। यह अच्छी दिल्लगी है, काम कौन करे, पकड़ा कौन जाय।

'मैंने पचीस साल थानेदारी की है, जानते हो ?'

'लेकिन ऐसा अन्धेर तो कभी नहीं हुआ।'

'तुमने अभी अन्धेर नहीं देखा। कहो तो वह भी दिखा दूँ। एक-एक को पाँच-पाँच साल के लिए भेजवा दूँ। यह मेरे बायें हाथ का खेल है। डाके में सारे गाँव को काले पानी भेजवा सकता हूँ। इस धोखे में न रहना।'

चारों सज्जन चौपाल के अन्दर जाकर विचार करने लगे।

फिर क्या हुआ, किसी को मालूम नहीं, हाँ, दारोग़ाजी प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। और चारों सज्जनों के मुँह पर फटकार बरस रही थी।

दारोग़ाजी घोड़े पर सवार होकर चले, तो चारों नेता दौड़ रहे थे। घोड़ा दूर निकल गया, तो चारों सज्जन लौटे, इस तरह मानों किसी प्रियजन का संस्कार करके श्मशान से लौट रहे हों।

सहसा दातादीन बोले—मेरा सराप न पड़े, तो मुँह न दिखाऊँ।

नोखेराम ने समर्थन किया—ऐसा धन कभी फलते नहीं देखा।

पटेश्वरी ने भविष्यवाणी की—हराम की कमाई हराम में जायेगी।

झिंगुरीसिंह को आज ईश्वर की न्यायपरता में सन्देह हो गया था—भगवान् न जाने कहाँ हैं कि यह अन्धेर देखकर भी पापियों को दण्ड नहीं देते।

इस वक्त इन सज्जनों की तस्वीर खींचने लायक़ थी।

८

हीरा का कहीं पता न चला और दिन गुज़रते जाते थे। होरी से जहाँ तक दौड़-धूप हो सकी, की, फिर हारकर बैठ रहा। खेती-बारी की भी फ़िक्र करनी थी। अकेला आदमी क्या-क्या करता। और अब अपनी खेती से ज़्यादा फ़िक्र थी पुनिया की खेती की। पुनिया अब अकेली होकर और प्रचंड हो गई थी। होरी को अब उसकी खुशामद करते बीतती थी। हीरा था, तो वह पुनिया को दबाये रहता था। उसके चले जाने से अब पुनिया पर कोई आँकुस न रह गया था। होरी की पट्टीदारी हीरा से थी। पुनिया अबला थी। उससे वह क्या तनातनी करता। और पुनिया उसके स्वभाव से परिचित थी और उसकी सज्जनता का उसे ख़ूब दण्ड देती थी। खैरियत यही हुई कि कारकुन साहब ने पुनिया से बक़ाया लगान वसूल करने की कोई सख़्ती न की, केवल थोड़ी सी पूजा लेकर राजी हो गये। नहीं, होरी अपने बक़ाया के साथ उसका बक़ाया चुकाने के लिए भी क़र्ज़ लेने को तैयार था। सावन में धान की रोपाई की ऐसी धूम रही कि मजूर न मिले और होरी अपने खेतों में धान न रोप सका; लेकिन पुनिया के खेतों में कैसे न रोपाई होती। होरी ने पहर रात-रात तक काम करके उसके धान रोपे। अब होरी ही तो उसका रक्षक है। अगर पुनिया को कोई कष्ट हुआ, तो दुनिया उसी को तो हँसेगी। नतीजा यह हुआ कि होरी को खरीफ़ की फसल में बहुत थोड़ा अनाज मिला, और पुनिया के बखार में धान रखने को जगह न रही।

होरी और धनिया में उस दिन से बराबर मनमुटाव चला आता था। गोबर से भी होरी की बोल-चाल बन्द थी। माँ-बेटे ने मिलकर जैसे उसका बहिष्कार कर दिया था। अपने घर में परदेशी बना हुआ था। दो नावों पर सवार होनेवालों की जो दुर्गति होती है, वही उसकी हो रही थी। गाँव में भी अब उसका उतना आदर न था। धनिया ने अपने साहस से स्त्रियों का ही नहीं, पुरुषों का नेतृत्व भी प्राप्त कर लिया था। महीनों तक आसपास के इलाक़ों में इस काण्ड की खूब चर्चा रही। यहाँ तक कि वह अलौकिक रूप तक धारण करता जाता था—'धनिया नाम है उसका जी। भवानी का इष्ट है उसे। दारोगाजी ने ज्यों ही उसके आदमी के हाथ में हथकड़ी डाली कि धनिया ने भवानी का सुमिरन किया। भवानी उसके सिर आ गईं।

फिर तो उसमें इतनी शक्ति आ गई कि उसने एक झटके में पति की हथकड़ी तोड़ डाली और दारोग़ा की मूँछ पकड़कर उखाड़ ली, फिर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। दारोग़ा ने जब बहुत मानता की, तब जाकर उसे छोड़ा।' कुछ दिन तक तो लोग धनिया के दर्शनों को आते रहे। वह बात तो अब पुरानी पड़ गई थी; लेकिन गाँव में धनिया का सम्मान बहुत बढ़ गया था। उसमें अद्भुत साहस है और समय पड़ने पर वह मर्दों के भी कान काट सकती है।

मगर धीरे धीरे धनिया में एक परिवर्तन हो रहा था। होरी को पुनिया की खेती में लगे देखकर भी वह कुछ न बोलती थी। और यह इसलिए नहीं कि वह होरी से विरक्त हो गई थी; बल्कि इसलिए कि पुनिया पर अब उसे भी दया आती थी। हीरा का घर से भाग जाना उसकी प्रतिशोध-भावना की तुष्टि के लिए काफ़ी था।

इसी बीच में होरी को ज्वर आने लगा। फस्ली बुखार फैला था ही। होरी उसकी चपेट में आ गया। और कई साल के बाद जो ज्वर आया; तो उसने सारा धकाया चुका लिया। एक महीने तक होरी खाट पर पड़ा रहा। इस बीमारी ने होरी को तो कुचल डाला ही; पर धनिया पर भी विजय पा गई। पति जब मर रहा है, तो उससे कैसा बैर। ऐसी दसा में तो बैरियों से भी बैर नहीं रहता, वह तो अपना पति है। लाख बुरा हो; पर उसी के साथ जीवन के पचीस साल कटे हैं, सुख किया है, तो उसी के साथ; दुख भोगा है तो उसी के साथ, अब तो चाहे वह अच्छा है या बुरा, अपना है। दाढ़ीजार ने मुझे सबके सामने मारा, सारे गाँव के सामने मेरा पानी उतार लिया; लेकिन तब से कितना लज्जित है कि सीधे ताकता नहीं। खाने आता है, तो सिर झुकाये खाकर उठ जाता है, डरता रहता है कि मैं कुछ कह न बैठूँ।

होरी जब अच्छा हुआ, तो पति पत्नी में मेल हो गया था।

एक दिन धनिया ने कहा—तुम्हें इतना गुस्सा कैसे आ गया? मुझे तो तुम्हारे ऊपर कितना ही गुस्सा आये; मगर हाथ न उठाऊँगी।

होरी लजाता हुआ बोला—अब उसकी चर्चा न कर धनिया! मेरे ऊपर कोई भूत सवार था। इसका मुझे कितना दुख हुआ है, वह मैं ही जानता हूँ।

'और जो मैं भी उसी क्रोध में डूब मरी होती?'

'तो क्या मैं रोने के लिए बैठा रहता? मेरी लहास भी तेरे साथ चिता पर जाती।'

'अच्छा चुप रहो, बेबात की बात मत बको।'

'गाय गई सो गई, मेरे सिर पर एक विपत डाल गई। पुनिया की फिकर मुझे मारे डालती है।'

'इसी लिए तो कहते हैं, भगवान् घर का बड़ा न बनायें। छोटों को कोई नहीं हँसता। नेकी-बदी सब बड़ों के सिर जाती है।'

माघ के दिन थे। महावट लगी हुई थी। घटाटोप अँधेरा छाया हुआ था। एक तो जाड़ों की रात, दूसरे माघ की वर्षा। मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था। अँधेरा तक न सूझता था। होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेंड़ पर अपनी मँड़ैया में लेटा हुआ था। चाहता था, शीत को भूल जाय और सो रहे; लेकिन तार-तार कम्बल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंकों से गीली पुआल, इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तमाखू भी न मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था; पर शीत में वह भी बुझ गया। बेवाय फटे पैरों में डालकर और हाथों को जाँघों के बीच में दबाकर और कम्बल में मुँह छिपाकर अपनी ही गर्म साँसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। पाँच साल हुए, यह मिर्जई बनवाई थी। धनिया ने एक प्रकार से जबरदस्ती बनवा दी थी, वही जब एक बार काबुली से कपड़े लिये थे, जिसके पीछे कितनी साँसत हुई, कितनी गालियाँ खानी पड़ीं। और कम्बल तो उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही बूढ़ा कम्बल उसका साथी है; पर अब वह भोजन को चबानेवाला दाँत नहीं, दुखनेवाला दाँत है। जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो। और बैठे-बैठाये यह एक नया जंजाल पड़ गया। न करो तो दुनिया हँसे, करो तो यह संशय बना रहे कि लोग क्या कहते हैं। सब यह समझते हैं कि वह पुनिया को लूटे लेता है, उसकी सारी उपज घर में भर लेता है। एहसान तो क्या होगा, उल्टा कलंक लग रहा है। और उधर भोला कई बेर याद दिला चुके हैं कि कहीं कोई सगाई का डौल करो, अब काम नहीं चलता। सोभा उससे कई बार कह चुका है कि पुनिया के विचार उसकी ओर से अच्छे नहीं हैं। न हों। पुनिया की गृहस्थी तो उसे सँभालनी ही पड़ेगी, चाहे हँसकर सँभाले या रोकर। धनिया का दिल भी अभी तक

साफ नहीं हुआ। अभी तक उसके मन में मलाल बना हुआ है। मुझे सब आदमियों के सामने उसको मारना न चाहिए था। जिसके साथ पचीस साल गुजर गये, उसे मारना और सारे गाँव के सामने, मेरी नीचता थी; लेकिन धनिया ने भी तो मेरी आबरू उतारने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मेरे सामने से कैसा कतराकर निकल जाती है, जैसे कभी की जान-पहचान ही नहीं। कोई बात कहनी होती है, तो सोना या रूपा से कहलाती है। देखता हूँ, उसकी साड़ी फट गई है; मगर कल मुझसे कहा भी, तो सोना की साड़ी के लिए, अपनी साड़ी का नाम तक न लिया। सोना की साड़ी अभी दो-एक महीने थेगलियाँ लगाकर चल चकती है। उसकी साड़ी तो मारे पेवंदों के बिलकुल कथरी हो गई है। और फिर मैं ही कौन उसका मनुहार कर रहा हूँ। अगर मैं ही उसके मन को दो-चार बातें करता रहता, तो कौन छोटा हो जाता। यही तो होता, वह थोड़ा-सा अदरावन कराती, दो-चार लगनेवाली बातें कहती, तो क्या मुझे चोट लग जाती; लेकिन मैं बुड्ढा होकर भी उल्लू बना रह गया। वह तो कहो, इस बीमारी ने आकर उसे नर्म कर दिया, नहीं जाने कब तक मुँह फुलाये रहती।

और आज उन दोनों में जो बातें हुई थीं, वह मानों भूखे का भोजन थीं। वह दिल से बोली थी और होरी गद्गद हो गया था। उसके जी में आया, उसके पैरों पर सिर रख दे और कहे—मैंने तुझे मारा है तो ले, मैं सिर झुकाये लेता हूँ, जितना चाहे, मार ले, जितनी गालियाँ देना चाहे, दे ले।

सहसा उसे मँड़ैया के सामने चूड़ियों की झंकार सुनाई दी। उसने कान लगाकर सुना। हाँ, कोई है। पटवारी की लड़की होगी, चाहे पण्डित की घरवाली हो। मटर उखाड़ने आई होगी। न जाने क्यों इन लोगों की नीयत इतनी खोटी है। सारे गाँव से अच्छा पहनते हैं, सारे गाँव से अच्छा खाते हैं, घर में हजारों रुपये गड़े हैं, लेन-देन करते हैं, ड्योढ़ी-सवाई चलाते हैं, घूस लेते हैं, दस्तूरी लेते हैं, एक न एक मामला खड़ा करके हमा-सुमा को पीसते ही रहते हैं, फिर भी नीयत का यह हाल! बाप जैसा होगा, वैसी ही सन्तान भी तो होगी; और आप नहीं आते, औरतों को भेजते हैं। अभी उठकर हाथ पकड़ लूँ तो क्या पानी रह जाय! नीच कहने ही को नीच हैं, जो ऊँचे हैं, उनका मन तो और भी नीचा है। औरत-जात का हाथ पकड़ते भी तो नहीं बनता। आँखों देखकर मक्खी निगलनी पड़ती है। उखाड़ ले भाई,

जितना तेरा जी चाहे। समझ ले, 'मैं नहीं हूँ। बड़े आदमी अपनी लाज न रखें, छोटों को तो उनकी लाज रखनी ही पड़ती है।

मगर नहीं, यह तो धनिया है। पुकार रही है।

धनिया ने पुकारा—सो गये कि जागते हो?

होरी झपटकर उठा और मँड़ैया के बाहर निकल आया। आज मालूम होता है, देवी प्रसन्न हो गई, उसे बरदान देने आई हैं; इसके साथ ही इस बादल-बूँदी और जाड़े-पाले में इतनी रात गये, उसका आना शंकाप्रद भी था। ज़रूर कोई-न-कोई बात हुई है।

बोला—ठण्ड के मारे नींद भी आती है? तू इस जाड़े-पाले में कैसे आई? कुशल तो है?

'हाँ, सब कुशल है।'

'गोबर को भेजकर मुझे क्यों नहीं बुलवा लिया।'

धनिया ने कोई उत्तर न दिया। मँड़ैया में आकर पुआल पर बैठती हुई बोली—गोबर ने तो मुँह में कालिख लगा दी, उसकी करनी क्या पूछते हो। जिस बात को डरती थी, वह होकर रही।'

'क्या, हुआ क्या? किसी से मार-पीट कर बैठा?'

'अब मैं क्या जानूँ, क्या कर बैठा, चलकर पूछो उसी राँड़ से?'

'किस राँड़ से? क्या कहती है तू? बौड़ा तो नहीं गई?'

'हाँ, बौड़ा क्यों न जाऊँगी। बात ही ऐसी हुई है कि छाती दुगुनी हो जाय।'

होरी के मन में प्रकाश की एक लम्बी रेखा ने प्रवेश किया।

'साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती? किस राँड़ को कह रही है?'

'उसी झुनिया को, और किसको!'

'तो झुनिया क्या यहाँ आई है?'

'और कहाँ जाती, पूछता कौन?'

'गोबर क्या घर में नहीं है?'

'गोबर का कहीं पता नहीं। जाने कहाँ भाग गया। इसे पाँच महीने का पेट है।'

होरी सब कुछ समझ गया। गोबर को बार-बार अहिराने जाते देखकर वह खटका था ज़रूर; मगर उसे ऐसा खिलाड़ी न समझता था। युवकों में कुछ रसिकता

होती है, इसमें कोइ नई बात नहीं। मगर जिस रूई के गाले को उसने नीले आकाश में हवा के झोंके से उड़ते देखकर केवल मुस्करा दिया था, वह सारे आकाश में छाकर उसके मार्ग को इतना अन्धकारमय बना देगा, यह तो कोई देवता भी न जान सकता था। गोबर ऐसा लम्पट! वह सरल गँवार जिसे वह अभी बच्चा समझता था; लेकिन उसे भोजन की चिन्ता न थी, पंचायत का भय न था, झुनिया घर में कैसे रहेगी, इसकी चिन्ता भी उसे न थी, उसे चिन्ता थी गोबर की। लड़का लज्जाशील है, अनाड़ी है, आत्माभिमानी है, कहीं कोई नादानी न कर बैठे।

घबड़ाकर बोला—झुनिया ने कुछ कहा नहीं, गोबर कहाँ गया? उससे कहकर ही गया होगा।

धनिया झुँझलाकर बोली—तुम्हारी अक्ल तो घास खा गई है। उसकी चहेती तो यहाँ बैठी है, भागके जायगा कहाँ। यहीं कहीं छिपा बैठा होगा। दूध थोड़े ही पीता है कि खो जायगा। मुझे तो इस कलमुँही झुनिया की चिन्ता है कि इसे क्या करूँ? अपने घर में तो मैं छन-भर भी न रहने दूँगी। जिस दिन गाय लाने गया है, उसी दिन से दोनों में ताक-झांक होने लगी। पेट न रहता, तो अभी बात न खुलती, मगर जब पेट रह गया, तो झुनिया लगी घबड़ाने। कहने लगी, कहीं भाग चलो। गोबर टालता रहा। एक औरत को साथ लेके कहाँ जाय, कुछ न सूझा। आखिर जब वह सिर हो गई कि मुझे यहाँ से ले चलो, नहीं मैं परान दे दूँगी, तो बोला—तू चलकर मेरे घर में रह, कोई कुछ न बोलेगा, अम्मा को मना लूँगा। यह गधी उसके साथ चल पड़ी। कुछ दूर तो आगे-आगे आता रहा, फिर न जाने किधर सरक गया। यह खड़ी-खड़ी उसे पुकारती रही। जब रात भीग गई और वह न लौटा, भागी यहाँ चली आई। मैंने तो कह दिया, जैसा किया है, उसका फल भोग। चुड़ैल ने लेके मेरे लड़के को चौपट कर दिया। तब से बैठी रो रही है। उठती ही नहीं। कहती है, अपने घर कौन मुँह लेकर जाऊँ। भगवान् ऐसी सन्तान से तो बाँझ ही रखें तो अच्छा। सबेरा होते-होते सारे गाँव में काँव-काँव मच जायगी। ऐसा जी होता है, माहुर खा लूँ। मैं तुमसे कहे देती हूँ, मैं अपने घर में न रखूँगी। गोबर को रखना हो, अपने सिर पर रखे। मेरे घर में ऐसी छत्तीसियों के लिए जगह नहीं है और अगर तुम बीच में बोले, तो फिर या तो तुम्हीं रहोगे, या मैं ही रहूँगी।

होरी बोला—तुमसे बना नहीं, उसे घर में आने ही न देना चाहिए था।

'सब कुछ कहके हार गई। टलती ही नहीं। धरना दिये बैठी है।'

'अच्छा चल, देखूँ कैसे नहीं उठती। घसीटकर बाहर निकाल दूँगा।'

'दाढ़ीजार भोला सब कुछ देख रहा था; पर चुप्पी साधे बैठा रहा। बाप भी ऐसे बेहया होते हैं!'

'वह क्या जानता था, इसके बीच में क्या खिचड़ी पक रही है।'

'जानता क्यों नहीं था। गोबर रात-दिन घेरे रहता था, तो क्या उसकी आँखें फूट गई थीं। सोचना चाहिए था न कि यहाँ क्यों दौड़-दौड़ आता है?'

'चल, मैं झुनिया से पूछता हूँ न।'

दोनों मँड़ैया से निकलकर गाँव की ओर चले। होरी ने कहा—पाँच घड़ी रात के ऊपर गई होगी।

धनिया बोली—हाँ, और क्या; मगर कैसा सोता पड़ गया है। कोई चोर आये, तो सारे गाँव को मूस ले जाय।

'चोर ऐसे गाँव में नहीं आते। धनियों के घर जाते हैं।'

धनिया ने ठिठककर होरी का हाथ पकड़ लिया और बोली—देखो, हल्ला न मचाना, नहीं सारा गाँव जाग उठेगा और बात फैल जायगी।

होरी ने कठोर स्वर में कहा—मैं यह कुछ नहीं जानता। हाथ पकड़कर घसीट लाऊँगा और गाँव के बाहर कर दूँगा। बात तो एक दिन खुलनी ही है, फिर आज ही क्यों न खुल जाय। वह मेरे घर आई क्यों? जाय जहाँ गोबर है। उसके साथ कुकरम किया, तो क्या हमसे पूछकर किया था?

धनिया ने फिर उसका हाथ पकड़ा और धीरे से बोली—तुम उसका हाथ पकड़ोगे, तो वह चिल्लायेगी।

'तो चिल्लाया करे।'

'मुदा इतनी रात गये इस अँधेरे-सन्नाटे में जायगी कहाँ, यह तो सोचो।'

'जाय जहाँ उसके सगे हों। हमारे घर में उसका क्या रखा है।'

'हाँ, लेकिन इतनी रात गये घर से निकालना उचित नहीं। पाँव भारी है। कहीं डर-डरा जाय तो और आफ़त हो। ऐसी दशा में कुछ करते-धरते भी तो नहीं बनता।'

'हमें क्या करना है, मरे या जीये। जहाँ चाहे जाय। क्यों अपने मुँह में कालिख लगाऊँ। मैं तो गोबर को भी निकाल बाहर करूँगा।'

धनिया ने गम्भीर चिन्ता से कहा—कालिख जो लगनी थी, वह तो अब लग चुकी। वह अब जीते-जी नहीं छूट सकती। गोबर ने नौका डुबा दी।

'गोबर ने नहीं डुबाई, डुबाई इसी ने। वह तो बच्चा था। इसके पंजे में आ गया।'

'किसी ने डुबाई, अब तो डूब गई।'

दोनों द्वार के सामने पहुँच गये। सहसा धनिया ने होरी के गले में हाथ डालकर कहा—देखो, तुम्हें मेरी सौंह, उस पर हाथ न उठाना, वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती, तो यह दिन ही क्यों आता।

होरी की आँखें आर्द्र हो गईं। धनिया का यह मातृ-स्नेह उस अँधेरे में जैसे दीपक के समान उसकी चिन्ता-जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत-यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस वीत-यौवना में भी वही कोमलहृदया बालिका नज़र आई, जिसने पचीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था, जो सारे कलंक, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परम्पराओं को अपने अन्दर समेट लेता था।

दोनों ने द्वार पर आकर किवाड़ों के दराज़ से अन्दर झाँका। दीवट पर तेल की कुप्पी जल रही थी और उसके मध्यम प्रकाश में झुनिया घुटने पर सिर रखे, द्वार की ओर मुँह किये, अन्धकार में उस आनन्द को खोज रही थी, जो एक क्षण पहले अपनी मोहिनी छवि दिखाकर विलीन हो गया था। वह आफ़त की मारी, व्यंग्य-बाणों से आहत और जीवन के आघातों से व्यथित किसी वृक्ष की छाँह खोजती फिरती थी, और उसे एक भवन मिल गया था, जिसके आश्रय में वह अपने को सुरक्षित और सुखी समझ रही थी; पर आज वह भवन अपना सारा सुख-विलास लिये अलादीन के राजमहल की भाँति गायब हो गया था और भविष्य एक विकराल दानव के समान उसे निगल जाने को खड़ा था।

एकाएक द्वार खुलते और होरी को आते देखकर वह भय से काँपती हुई उठी और होरी के पैरों पर गिरकर रोती हुई बोली—दादा, अब तुम्हारे सिवाय मुझे दूसरा ठौर नहीं है, चाहे मारो, चाहे काटो; लेकिन अपने द्वार से दुरदुराओ मत।

होरी ने झुककर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए प्यार-भरे स्वर में कहा—डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिन्ता मत कर। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आँखों न देख सकेगा। भोज-भात जो लगेगा, वह हम सब दे लेंगे, तू खातिरजमा रख।

झुनिया सान्त्वना पाकर और भी होरी के पैरों से चिमट गई और बोली—दादा, अब तुम्हीं मेरे बाप हो और अम्माँ, तुम्हीं मेरी माँ हो। मैं अनाथ हूँ। मुझे सरन दो, नहीं मेरे काका और भाई मुझे कच्चा ही खा जायँगे।

धनिया अपनी करुणा के आवेश को अब न रोक सकी। बोली—तू चल घर में बैठ, मैं देख लूँगी काका और भैया को। संसार में उन्हीं का राज नहीं है। बहुत करेंगे, अपने गहने ले लेंगे। फेंक देना उतारकर।

अभी ज़रा देर पहले धनिया ने क्रोध के आवेश में झुनिया को कुलटा और कलङ्किनी और कलमुँही न जाने क्या-क्या कह डाला था। झाड़ू मारकर घर से निकालने जा रही थी। अब जो झुनिया ने स्नेह और क्षमा और आश्वासन से भरे यह वाक्य सुने, तो होरी के पाँव छोड़कर धनिया के पाँव से लिपट गई और वही साध्वी जिसने होरी के सिवा किसी पुरुष को आँख भरकर देखा भी न था, इस पापिष्ठा को गले लगाये उसके आँसू पोंछ रही थी और उसके त्रस्त हृदय को अपने कोमल शब्दों से शान्त कर रही थी, जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चे को परों में छिपाये बैठी हो।

होरी ने धनिया को संकेत किया कि इसे कुछ खिला-पिला दे और झुनिया से पूछा—क्यों बेटी, तुझे कुछ मालूम है, गोबर किधर गया है?

झुनिया ने सिसकते हुए कहा—मुझसे तो कुछ नहीं कहा। मेरे कारन तुम्हारे ऊपर—यह कहते-कहते उसकी आवाज़ आँसुओं में डूब गई।

होरी अपनी व्याकुलता न छिपा सका।

'जब तूने आज उसे देखा, तो कुछ दुखी था?'

'बातें तो हँस-हँस कर रहे थे। मन का हाल भगवान् जानें।'

'तेरा मन क्या कहता है, है गाँव में ही कि कहीं बाहर चला गया?'

'मुझे तो संका होती है, कहीं बाहर चले गये हैं।'

'यही मेरा मन भी कहता है। कैसी नादानी की। हम उसके दुसमन थोड़े ही

थे। जब भली या बुरी एक बात हो गई, तो उसे निभानी पड़ती है। इस तरह भागकर तो इसने हमारी जान आफ़त में डाल दी।'

धनिया ने झुनिया का हाथ पकड़कर अन्दर ले जाते हुए कहा—कायर कहीं का, जिसकी बाँह पकड़ी, उसका निबाह करना चाहिए कि मुँह में कालिख लगाकर भाग जाना चाहिए। अब जो आये, तो घर में पैठने न दूँ।

होरी वहीं पुआल में लेटा। गोबर कहाँ गया? यह प्रश्न उसके हृदयाकाश में किसी पक्षी की भाँति मँडराने लगा।

९

ऐसे असाधारण काण्ड पर गाँव में जो कुछ हलचल मचना चाहिए था, वह मचा और महीनों तक मचता रहा। झुनिया के दोनों भाई लाठियाँ लिये गोबर को खोजते फिरते थे। भोला ने क़सम खाई कि अब न झुनिया का मुँह देखेंगे और न इस गाँव का। होरी से उन्होंने अपनी सगाई की जो बातचीत की थी, वह अब टूट गई थी। अब वह अपनी गाय के दाम लेंगे और नक़द, और इसमें विलम्ब हुआ तो होरी पर दावा करके उसका घर-द्वार नीलाम करा लेंगे। गाँववालों ने होरी को जातिबाहर कर दिया। कोई उसका हुक्का नहीं पीता, न उसके घर का पानी पीता है। पानी बन्द कर देने की कुछ बातचीत थी; लेकिन धनिया का चण्डी-रूप सब देख चुके थे; इसलिए किसी की आगे आने की हिम्मत न पड़ी। धनिया ने सबको सुना-सुनाकर कह दिया—किसी ने उसे पानी भरने से रोका, तो उसका और अपना ख़ून एक कर देगी। इस ललकार ने सभी के पित्त पानी कर दिये। सबसे दुखी है झुनिया, जिसके कारण यह सब उपद्रव हो रहा है, और गोबर की कोई खोज-खबर न मिलना इस दुःख को और भी दारुण बना रहा है। सारे दिन मुँह छिपाये घर में पड़ी रहती है। बाहर निकले, तो चारों ओर से वाग्बाणों की ऐसी वर्षा हो कि जान बचाना मुश्किल हो जाय। दिन-भर घर के धन्धे करती रहती है, और जब अवसर पाती है, रो लेती है। हरदम थरथर काँपती रहती है कि कहीं धनिया कुछ कह न बैठे। अकेला भोजन तो नहीं पका सकती; क्योंकि कोई उसके हाथ का खायेगा नहीं, बाकी सारा काम उसने अपने ऊपर ले लिया। गाँव में जहाँ चार स्त्री-पुरुष जमा हो जाते हैं, यही कुत्सा होने लगती है।

एक दिन धनिया हाट से चली आ रही थी कि रास्ते में पण्डित दातादीन मिल गये। धनिया ने सिर नीचा कर लिया और चाहती थी कि कतराकर निकल जाय ; पर पण्डितजी छेड़ने का अवसर पाकर कब चूकनेवाले थे। छेड़ ही तो दिया—गोबर का कुछ सर-सन्देस मिला कि नहीं धनिया ? ऐसा कपूत निकला कि घर की सारी मरजाद बिगाड़ दी।

धनिया के मन में स्वयं यही भाव आते रहते। उदास मन से बोली—बुरे दिन आते हैं बाबा, तो आदमी की मति फिर जाती है, और क्या कहूँ।

दातादीन बोले—तुम्हें उस दुष्टा को घर में न रखना चाहिए था। दूध में मक्खी पड़ जाती है, तो आदमी उसे निकालकर फेंक देता है, और दूध पी जाता है। सोचो, कितनी बदनामी और जग-हँसाई हो रही है। वह कुल्टा घर में न रहती, तो कुछ न होता। लड़कों से इस तरह की भूल-चूक होती ही रहती है। जब तक बिरादरी को भात न दोगे, बाम्हनों को भोज न दोगे, कैसे उद्धार होगा ? उसे घर में न रखते तो कुछ न होता। होरी तो पागल है ही, तू कैसे धोखा खा गई।

दातादीन का लड़का मातादीन एक चमारिन से फँसा हुआ था। इसे सारा गाँव जानता था ; पर वह तिलक लगाता था, पोथी-पत्रे बाँचता था, कथा भागवत कहता था, धर्म-संस्कार कराता था। उसकी प्रतिष्ठा में ज़रा भी कमी न थी। वह नित्य स्नान-पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित्त कर लेता था। धनिया जानती थी, झुनिया को आश्रय देने ही से यह सारी विपत्ति आई है। उसे न जाने कैसे दया आ गई, नहीं उसी रात को झुनिया को निकाल देती, तो क्यों इतना उपहास होता ; लेकिन यह भय भी होता था कि तब उसके लिए नदी या कुआँ के सिवा और ठिकाना कहाँ था। एक प्राण का मूल्य देकर—एक नहीं दो प्राण का—वह अपने मरजाद की रक्षा कैसे करती। फिर झुनिया के गर्भ में जो बालक है, वह धनिया ही के हृदय का टुकड़ा तो है। हँसी के डर से उसके प्राण कैसे ले लेती ! और फिर—झुनिया की नम्रता और दीनता भी उसे निरस्त्र करती रहती थी। यह जली-भुनी बाहर से आती; पर ज्यों ही झुनिया लोटे का पानी लाकर रख देती और उसके पाँव दबाने लगती, उसका क्रोध पानी हो जाता। बेचारी अपनी लज्जा और दुःख से आप ही दबी हुई है, उसे और क्या दबाये, मरे को क्या मारे।

उसने तीव्र स्वर में कहा—हमको कुल-परतिसठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज,

कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते। ब्याहता न सही ; पर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती। वही काम बड़े-बड़े करते है, मुदा उनसे कोई नहीं बोलता, उन्हें कलंक ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं, तो उनकी मरजाद बिगड़ जाती है। नाक कट जाती है। बड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।

दातादीन हार माननेवाले जीव न थे। वह इस गाँव के नारद थे, यहाँ की वहाँ, वहाँ की यहाँ, यही उनका व्यवसाय था। वह चोरी तो न करते थे, उसमें जान-जोखिम था ; पर चोरी के माल में हिस्सा बँटाने के समय अवश्य पहुँच जाते थे। कहीं पीठ में धूल न लगने देते थे। ज़मींदार को आज तक लगान की एक पाई न दी थी, कुर्की आती, तो कुएँ में गिरने चलते, नोखेराम के किये कुछ न बनता ; मगर असामियों को सूद पर रुपये उधार देते थे। किसी स्त्री को कोई आभूषण बनवाना है, दातादीन उसकी सेवा के लिए हाज़िर हैं। शादी-ब्याह तय करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता है, यश भी मिलता है, दक्षिणा भी मिलती है। बीमारी में दवा-दारू भी करते हैं, झाड़-फूँक भी, जैसी मरीज़ की इच्छा हो। और सभा-चतुर इतने हैं कि जवानों में जवान बन जाते हैं, बालकों में बालक और बूढ़ों में बूढ़े। चोर के भी मित्र हैं और साह के भी। गाँव में किसी को उन पर विश्वास नहीं है ; पर उनकी वाणी में कुछ ऐसा आकर्षण है कि लोग बार-बार धोखा खाकर भी उन्हीं की शरण जाते हैं।

सिर और दाढ़ी हिलाकर बोले—यह तू ठीक कहती है धनिया ! धर्मात्मा लोगों का यही धरम है ; लेकिन लोक-रीति का निबाह तो करना ही पड़ता है।

इसी तरह एक दिन लाला पटेश्वरी ने होरी को छेड़ा। यह गाँव में पुण्यात्मा मशहूर थे। पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते; पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक दूसरे से लड़ाकर रक़में मारते थे। सारा गाँव उनसे काँपता था। ग़रीबों को दस-दस, पाँच-पाँच क़र्ज़ देकर उन्होंने कई हज़ार की सम्पत्ति बना ली थी। फ़सल की चीज़ें असामियों से लेकर कचहरी और पुलिस के अमलों को भेंट करते रहते थे। इससे इलाक़े-भर में उनकी अच्छी धाक थी। अगर कोई उनके हत्थे नहीं चढ़ा, तो वह

दारोगा गंडासिंह थे, जो हाल में इस इलाक़े में आये थे। परमार्थी भी थे। बुखार के दिनों में सरकारी कुनैन बाँटकर यश कमाते थे, कोई बीमार आराम हो, तो उसकी कुशल पूछने अवश्य जाते थे। छोटे-मोटे झगड़े आपस ही में तय करा देते थे। शादी-ब्याह में अपनी पालकी, क़ालीन और महफ़िल के सामान मँगनी देकर लोगों का उद्धार कर देते थे। मौक़ा पाकर न चूकते थे, पर जिसका खाते थे, उसका काम भी करते थे।

बोले—यह तुमने क्या रोग पाल लिया होरी?

होरी ने पीछे फिरकर पूछा—तुमने क्या कहा लाला, मैंने सुना नहीं?

पटेश्वरी पीछे से क़दम बढ़ाते हुए बराबर आकर बोले—यही कह रहा था कि धनिया के साथ क्या तुम्हारी बुद्धि भी घास खा गई। झुनिया को क्यों नहीं उसके बाप के घर भेज देते, सेंत-मेंत में अपनी हँसी करा रहे हो। न जाने किसका लेकर आ गई और तुमने घर में रख लिया। अभी तुम्हारी दो-दो लड़कियाँ ब्याहने को बैठी हुई हैं; सोचो, कैसे बेड़ा पार होगा।

होरी इस तरह की आलोचनाएँ, शुभ कामनाएँ सुनते-सुनते तंग आ गया था। खिन्न होकर बोला—यह मैं सब समझता हूँ लाला! लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ? मैं झुनिया को निकाल दूँ, तो भोला उसे रख लेंगे? अगर वह राजी हों, तो आज मैं उसे उनके घर पहुँचा दूँ; अगर तुम उन्हें राजी कर दो, तो जनम-भर तुम्हारा औसान मानूँ; मगर वहाँ तो उनके दोनों लड़के खून करने को उतारू हो रहे हैं। फिर मैं उसे कैसे निकाल दूँ। एक तो नालायक आदमी मिला कि उसकी बाँह पकड़कर दगा दे गया। मैं भी निकाल दूँगा, तो इस दसा में वह कहीं मेहनत-मजूरी भी तो न कर सकेगी। कहीं डूब-धँस मरी, तो किसे अपराध लगेगा। रहा लड़कियों का ब्याह, सो भगवान् मालिक हैं। जब उसका समय आयेगा, कोई न कोई रास्ता निकल ही आयेगा। लड़की तो हमारी विरादरी में आज तक कभी कुँआरी नहीं रही। विरादरी के डर से हत्यारे का काम नहीं कर सकता।

होरी नम्र स्वभाव का आदमी था। सदा सिर झुकाकर चलता और चार बातें गम खा लेता था। हीरा को छोड़कर गाँव में कोई उसका अहित न चाहता था; पर समाज इतना बड़ा अनर्थ कैसे सह ले। और उसकी मुटमर्दी तो देखो कि समझाने पर भी नहीं समझता। स्त्री-पुरुष दोनों जैसे समाज को चुनौती दे रहे हैं कि

देखें कोई उनका क्या कर लेता है। तो समाज भी दिखा देगा कि उसकी मर्यादा तोड़नेवाले सुख की नींद नहीं सो सकते।

उसी रात को इस समस्या पर विचार करने के लिए गाँव के विधाताओं की बैठक हुई।

दातादीन बोले—मेरी आदत किसी की निन्दा करने की नहीं है। संसार में क्या-क्या कुकर्म नहीं होता; अपने से क्या मतलब। मगर वह राँड़ धनिया तो मुझसे लड़ने पर उतारू हो गई। भाइयों का हिस्सा दबाकर हाथ में चार पैसे हो गये, अब कुपंथ के सिवा और क्या सूझेगी। नीच जात जहाँ पेट-भर रोटी खाई और टेढ़े चले, इसी से सासतरों में कहा है—नीच जात लतियाये अच्छा।

पटेश्वरी ने नारियल का कश लगाते हुए कहा—यही तो इनमें बुराई है कि जहाँ चार पैसे देखे और आँखें बदलीं। आज होरी ने ऐसी हेकड़ी जताई कि मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया। न जाने अपने को क्या समझता है। अब सोचो, इस अनीति का गाँव में क्या फल होगा। झुनिया को देखकर दूसरी विधवाओं का मन बढ़ेगा कि नहीं? आज भोला के घर में यह बात हुई। कल हमारे-तुम्हारे घर में भी होगी। समाज तो भय के बल से चलता है। आज समाज का आँकुस जाता रहे, फिर देखो, संसार में क्या-क्या अनर्थ होने लगते हैं।

झिंगुरीसिंह दो स्त्रियों के पति थे। पहली स्त्री पाँच लड़के-लड़कियाँ छोड़कर मरी थी। उस समय इनकी अवस्था पैंतालीस के लगभग थी; पर आपने दूसरा ब्याह किया और जब उससे कोई सन्तान न हुई, तो तीसरा ब्याह कर डाला। अब इनकी पचास की अवस्था थी और दो जवान पत्नियाँ घर में बैठी हुई थीं। उन दोनों ही के विषय में तरह-तरह की बातें फैल रही थीं; पर ठाकुर साहब के डर से कोई कुछ कह न सकता था और कहने का अवसर भी तो हो। पति की आड़ में सब कुछ जायज़ है। मुसीबत तो उसकी है, जिसे कोई आड़ नहीं। ठाकुर साहब स्त्रियों पर बड़ा कठोर शासन रखते थे और उन्हें घमण्ड था कि उनकी पत्नियों का घूँघट तक किसी ने न देखा होगा; मगर घूँघट की आड़ में क्या होता है, इसकी उन्हें क्या खबर?

बोले—ऐसी औरत का तो सिर काट ले। होरी ने इस कुलटा को घर रखकर समाज में विष बोया है। ऐसे आदमी को गाँव में रहने देना सारे गाँव को भ्रष्ट

करना है। राय साहब को इसकी सूचना देनी चाहिए। साफ़-साफ़ कह देना चाहिए, अगर गाँव में यह अनीति चली, तो किसी की आबरू सलामत न रहेगी।

पण्डित नोखेराम कारकुन बड़े कुलीन ब्राह्मण थे। इनके दादा किसी राजा के दीवान थे; पर अपना सब कुछ भगवत् के चरणों में भेंट करके साधु हो गये थे। इनके बाप ने भी राम-नाम की खेती में उम्र काट दी। नोखेराम ने भी वही भक्ति तरके में पाई थी। प्रातःकाल पूजा पर बैठ जाते थे और दस बजे तक बैठे राम-नाम लिखा करते थे; मगर भगवान् के सामने से उठते ही उनकी मानवता इस अवरोध से विकृत होकर उनके मन, वचन और कर्म सभी को विषाक्त कर देती थी। इस प्रस्ताव में उनके अधिकार का अपमान होता था। फूले हुए गालों में धँसी हुई आँखें निकालकर बोले—इसमें राय साहब से क्या पूछना है। मैं जो चाहूँ, कर सकता हूँ। लगा दो सौ रुपये डाँड़। आप गाँव छोड़कर भागेगा। इधर मैं बेदखली भी दायर किये देता हूँ।

पटेश्वरी ने कहा—मगर लगान तो बेबाक़ कर चुका है?

झिंगुरीसिंह ने समर्थन किया—हाँ, लगान के लिए ही तो हमसे तीस रुपये लिये हैं।

नोखेराम ने घमण्ड के साथ कहा—लेकिन अभी रसीद तो नहीं दी। सबूत क्या है कि लगान बेबाक़ कर दिया।

सर्वसम्मति से यही तय हुआ कि होरी पर सौ रुपये तावान लगा दिया जाय। केवल एक दिन गाँव के आदमियों को बटोरकर उनकी मजूरी ले लेने का अभिनय आवश्यक था। सम्भव था, इसमें दस-पाँच दिन की देर हो जाती; पर आज ही रात को झुनिया के लड़का पैदा हो गया और दूसरे ही दिन गाँववालों की पंचायत बैठ गई। होरी और धनिया, दोनों अपनी क़िस्मत का फैसला सुनने के लिए बुलाये गये। चौपाल में इतनी भीड़ थी कि कहीं तिल रखने की जगह न थी। पंचायत ने फैसला किया कि होरी पर सौ रुपये नक़द और तीस मन अनाज डाँड़ लगाया जाय।

धनिया भरी सभा में रुँधे हुए कण्ठ से बोली—पंचो, गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हम तो मिट जायँगे, कौन जाने, इस गाँव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर से जरूर लगेगा। मुझसे इतना

कहा जरीबाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है, ऐं ?

होरी ने धनिया को डाँटा—तू क्यों बोलती है धनिया ! पंच में परमेसर रहते हैं। उनका जो न्याय है, वह सिर-आँखों पर ; अगर भगवान् की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़कर भाग जायँ, तो हमारा क्या बस। पंचो, हमारे पास जो कुछ है, वह अभी खलिहान में है। एक दाना भी घर में नहीं आया, जितना चाहो, ले लो। सब लेना चाहो, सब ले लो। हमारा भगवान् मालिक है, जितनी कमी पड़े उसमें हमारे दोनों बैल ले लेना।

धनिया दाँत कटकटाकर बोली—मैं न एक दाना अनाज दूँगी, न एक कौड़ी डाँड़। जिसमें बूता हो, चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है। सोचा होगा, डाँड़ के बहाने इसकी सब जैजात ले लो और नजराना लेकर दूसरों को दे दो। बाग-बगीचा बेचकर मजे से तर माल उड़ाओ। धनिया के जीते-जी यह नहीं होने का, और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायँगे।

होरी ने उसके सामने हाथ जोड़कर कहा—धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूँ, चुप रह। हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डाँड़ लगाती है, उसे सिर झुकाकर मजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में फाँसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जाऊँ, तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी ? बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे। पञ्चो, मुझे अपने जवान बेटे का मुँह देखना नसीब न हो, अगर मेरे पास खलिहान के अनाज के सिवा और कोई चीज़ हो। मैं बिरादरी से दगा न करूँगा। पञ्चों को मेरे बाल-बच्चों पर दया आये, तो उनकी कुछ परवरिस करें, नहीं मुझे तो उनकी आज्ञा पालनी है।

धनिया झल्लाकर वहाँ से चली गई और होरी पहर रात तक खलिहान से अनाज ढो-ढोकर झिंगुरीसिंह के चौपाल में ढेर करता रहा। बीस मन जौ था, पाँच मन गेहूँ और इतना ही मटर, थोड़ा-सा चना और तेलहन भी था। अकेला आदमी और दो गृहस्थियों का बोझ। यह जो कुछ हुआ, धनिया के पुरुषार्थ से हुआ, झुनिया भीतर का

सारा काम कर लेती थी और धनिया अपनी लड़कियों के साथ खेती में जुट गई थी। दोनों ने सोचा था, गेहूँ और तेलहन से लगान कि एक क़िस्त अदा हो जायगी और हो सके, तो थोड़ा-थोड़ा सूद भी दे देंगे। जौ खाने के काम में आयेगा। लँगे-तंगे पाँच-छः महीने कट जायँगे, तब तक जुआर, मक्का, सावाँ, धान के दिन आ जायँगे। वह सारी आशा मिट्टी में मिल गई। अनाज तो हाथ से गये ही, सौ रुपये की गठरी और सिर पर लद गई। अब भोजन का कहीं ठिकाना नहीं। और गोबर का क्या हाल हुआ, भगवान् जानें। न हाल, न हवाल। अगर दिल इतना कच्चा था, तो ऐसा काम ही क्यों किया; मगर होनहार को कौन टाल सकता है। बिरादरी का वह आतंक था कि अपने सिर पर लादकर अनाज ढो रहा था, मानों अपने हाथों अपनी क़ब्र खोद रहा हो। ज़मींदार, साहूकार, सरकार किसका इतना रोब था? कल बाल-बच्चे क्या खायँगे, इसकी चिन्ता प्राणों को सोखे लेती थी; पर बिरादरी का भय पिशाच की भाँति सिर पर सवार आँकुस दिये जा रहा था। बिरादरी से पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकता था। शादी-ब्याह, मूँड़न-छेदन, जन्म मरण सब कुछ बिरादरी के हाथ में है। बिरादरी उसके जीवन में वृक्ष की भाँति जड़ जमाये हुए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थीं। बिरादरी से निकलकर उसका जीवन विश्रृंखल हो जायगा—तार-तार हो जायगा।

जब खलिहान में केवल डेढ़-दो मन जौ और रह गया, तो धनिया ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—अच्छा, अब रहने दो। ढो तो चुके बिरादरी की लाज। बच्चों के लिए भी कुछ छोड़ोगे कि सब बिरादरी के भाड़ में झोंक दोगे। मैं तुमसे हार जाती हूँ। मेरे भाग्य में तुम्हीं-जैसे बुद्धू का संग लिखा था।

होरी ने अपना हाथ छुड़ाकर टोकरी में शेष अनाज भरते हुए कहा—यह न होगा धनिया, पंचों की आँख बचाकर एक दाना भी रख लेना मेरे लिए हराम है। मैं ले जाकर सब-का-सब वहाँ ढेर कर देता हूँ। फिर पंचों के मन में दया उपजेगी, तो कुछ मेरे बाल-बच्चों के लिए देंगे, नहीं भगवान् मालिक है।

धनिया तिलमिलाकर बोली—यह पंच नहीं हैं, राछस हैं, पक्के राछस! यह सब हमारी जगह-जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डाँड़ तो बहाना है। समझाती जाती हूँ; पर तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं। तुम इन पिसाचों से दया की आसा रखते हो। सोचते हो, दस-पाँच मन निकालकर तुम्हें दे देंगे। मुँह धो रखो।

जब होरी ने न माना और टोकरी सिर पर रखने लगा, तो धनिया ने दोनों हाथों से पूरी शक्ति के साथ टोकरी पकड़ ली और बोली—इसे तो मैं न ले जाने दूँगी, चाहे तुम मेरी जान ही ले लो। मर-मरकर हमने कमाया, पहर रात-रात को सींचा, अगोरा, इसी लिए कि पंच लोग मूँछों पर ताव देकर भोग लगायें और हमारे बच्चे दाने-दाने को तरसें। तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी अपनी बच्चियों के साथ सती हुई हूँ। सीधे टोकरी यहीं रख दो, नहीं आज सदा के लिए नाता टूट जायगा। कहे देती हूँ।

होरी सोच में पड़ गया। धनिया के कथन में सत्य था। उसे अपने बाल-बच्चों की कमाई छीनकर तावान देने का क्या अधिकार है। वह घर का स्वामी इसलिए है कि सबका पालन करे, इसलिए नहीं कि उनकी कमाई छीनकर बिरादरी की नज़र में सुखरू बने। टोकरी उसके हाथ से छूट गई। धीरे से बोला—तू ठीक कहती है धनिया! दूसरों के हिस्से पर मेरा कोई जोर नहीं है। जो कुछ बचा है, वह ले जा, मैं जाकर पञ्चों से कहे देता हूँ।

धनिया अनाज की टोकरी घर में रखकर अपनी दोनों लड़कियों के साथ पोते के जन्मोत्सव में गला फाड़-फाड़कर सोहर गा रही थी, जिसमें सारा गाँव सुन ले। आज यह पहला मौक़ा था कि ऐसे शुभ-अवसर पर बिरादरी की कोई औरत न थी। सौर से झुनिया ने कहला भेजा था, सोहर गाने का काम नहीं है; लेकिन धनिया कब मानने लगी। अगर बिरादरी को उसकी परवा नहीं है, तो वह भी बिरादरी की परवा नहीं करती।

उसी वक्त होरी अपने घर को अस्सी रुपये पर झिंगुरीसिंह के हाथ गिरों रख रहा था। डाँड़ के रुपये का इसके सिवा वह और कोई प्रबन्ध न कर सकता था। बीस रुपये तो तेलहन और गेहूँ और मटर से मिल गये। शेष के लिए घर लिखना पड़ गया। नोखेराम तो चाहते थे कि बैल बिकवा लिये जायँ; लेकिन पटेश्वरी और दातादीन ने इसका विरोध किया। बैल बिक गये, तो होरी खेती कैसे करेगा? बिरादरी उसकी जायदाद से रुपये वसूल करे; पर ऐसा तो न करे कि वह गाँव छोड़कर भाग जाय। इस तरह बैल बच गये।

होरी रेहननामा लिखकर कोई ग्यारह बजे रात घर आया तो धनिया ने पूछा—इतनी रात तक वहाँ क्या करते रहे?

होरी ने जुलाहे का गुस्सा दाढ़ी पर उतारते हुए कहा—करता क्या रहा, इस लौंडे की करनी भरता रहा। अभागा आप तो चिनगारी छोड़कर भागा, आग मुझे बुझानी पड़ रही है। अस्सी रुपये में घर रेहन लिखना पड़ा। करता क्या। अब हुक्का खुल गया। बिरादरी ने अपराध क्षमा कर दिया।

धनिया ने ओठ चबाकर कहा—न हुक्का खुलता, तो हमारा क्या बिगाड़ा जाता था। चार-पाँच महीने नहीं किसी का हुक्का पिया, तो क्या छोटे हो गये? मैं कहती हूँ, तुम इतने भोंदू क्यों हो? मेरे सामने तो बड़े बुद्धिमान बनते हो; बाहर तुम्हारा मुँह क्यों बन्द हो जाता है? ले-दे के बाप-दादों की निसानी एक घर बच रहा था, आज तुमने उसका भी वारा-न्यारा कर दिया। इसी तरह कल यह तीन-चार बीघे जमीन है, इसे भी लिख देना और तब गली-गली भीख माँगना। मैं पूछती हूँ, तुम्हारे मुँह में जीभ न थी कि उन पंचों से पूछते, तुम कहाँ के बड़े धर्मात्मा हो, जो दूसरों पर डाँड़ लगाते फिरते हो, तुम्हारा तो मुँह देखना भी पाप है।

होरी ने डाँटा—चुप रह, बहुत बढ़-बढ़ न बोल। बिरादरी के चक्कर में अभी पड़ी नहीं है, नहीं मुँह से बात न निकलती।

धनिया उत्तेजित हो गई—कौन-सा पाप किया है, जिसके लिए बिरादरी से डरें, किसी के घर चोरी की है, किसी का माल काटा है? मेहरिया रख लेना पाप नहीं है, हाँ, रखके छोड़ देना पाप है। आदमी का बहुत सीधा होना भी बुरा है। उसके सीधेपन का फल यही होता है कि कुत्ते भी मुँह चाटने लगते हैं। आज उधर तुम्हारी वाह-वाह हो रही होगी कि बिरादरी की कैसी मरजाद रख ली। मेरे भाग फूट गये थे कि तुम-जैसे मर्द से पाला पड़ा। कभी सुख की रोटी न मिली।

'मैं तेरे बाप के पाँव पड़ने गया था? वही तुझे मेरे गले बाँध गया।'

'पत्थर पड़ गया था उनकी अक्कल पर और उन्हें क्या कहूँ। न जाने क्या देखकर लट्टू हो गये। ऐसे कोई बड़े सुन्दर भी तो न थे तुम।'

विवाद विनोद के क्षेत्र में आ गया। अस्सी रुपये गये तो गये, लाख रुपये का बालक तो मिल गया! उसे तो कोई न छीन लेगा। गोबर घर लौट आये, धनिया अलग झोंपड़ी में भी सुखी रहेगी।

होरी ने पूछा—बच्चा किसको पड़ा है?

धनिया ने प्रसन्न-मुख होकर जवाब दिया—बिलकुल गोबर को पड़ा है। सच!

'रिस्ट-पुस्ट तो है ?'

'हाँ, अच्छा है।'

१०

रात को गोबर झुनिया के साथ चला, तो ऐसा काँप रहा था, जैसे उसकी नाक कटी हुई हो। झुनिया को देखते ही सारे गाँव में कुहराम मच जायगा, लोग चारों ओर से आकर कैसी हाय-हाय मचायेंगे, धनिया कितनी गालियाँ देगी, यह सोच-सोच-कर उसके पाँव पीछे रहे जाते थे। होरी का तो उसे भय न था। वह केवल एक बार धाड़ेंगे, फिर शान्त हो जायेंगे। डर था धनिया का, ज़हर खाने लगेगी, घर में आग लगाने लगेगी। नहीं, इस वक्त वह झुनिया के साथ घर नहीं जा सकता।

लेकिन कहीं धनिया ने झुनिया को घर में घुसने ही न दिया और झाड़ू लेकर मारने दौड़ी, तो वह बेचारी कहाँ जायगी। अपने घर तो लौट ही नहीं सकती। कहीं कुएँ में कूद पड़े या गले में फाँसी लगा ले, तो क्या हो। उसने लम्बी साँस ली। किसकी शरण ले।

मगर अम्माँ इतनी निर्दयी नहीं हैं कि मारने दौड़ें। क्रोध में दो-चार गालियाँ देंगी; लेकिन जब झुनिया उनके पाँव पकड़कर रोने लगेगी, तो उन्हें जरूर दया आ जायगी। तब तक वह खुद कहीं छिपा रहेगा। जब उपद्रव शान्त हो जायगा, तब वह एक दिन धीरे से आयेगा और अम्माँ को मना लेगा; अगर इस बीच में उसे कहीं मजूरी मिल जाय और दो-चार रुपये लेकर घर लौटे तो फिर धनिया का मुँह बन्द हो जायगा।

झुनिया बोली—मेरी तो छाती धक्-धक् कर रही है। मैं क्या जानती थी, तुम मेरे गले यह रोग मढ़ दोगे। न जाने किस बुरी साइत में तुमको देखा। न तुम गाय लेने आते, न यह सब कुछ होता। तुम आगे-आगे जाकर जो कुछ कहना-सुनना हो, कह सुन लेना। मैं पीछे से आ जाऊँगी।

गोबर ने कहा—नहीं-नहीं, पहले तुम जाना और कहना, मैं बजार से सौदा बेचकर घर जा रही थी। रात हो गई है, अब कैसे जाऊँ। तब तक मैं आ जाऊँगा।

झुनिया ने चिंतित मन से कहा—तुम्हारी अम्माँ बड़ी गुस्सैल हैं। मेरा तो जी काँपता है। कहीं मुझे मारने लगें तो क्या करूँगी।

गोबर ने धीरज दिलाया—अम्माँ की आदत ऐसी नहीं। हम लोगों तक को तो कभी एक तमाचा मारा नहीं, तुम्हें क्या मारेंगी। उनको जो कुछ कहना होगा, मुझे कहेंगी, तुमसे तो बोलेंगी भी नहीं।

गाँव समीप आ गया। गोबर ने ठिठककर कहा—अब तुम जाओ।

झुनिया ने अनुरोध किया—तुम भी देर न करना।

'नहीं-नहीं, छन-भर में आता हूँ, तू चल तो।'

'मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है। तुम्हारे ऊपर क्रोध आता है।'

'तुम इतना डरती क्यों हो? मैं तो आ ही रहा हूँ।'

'इससे तो कहीं अच्छा था कि किसी दूसरी जगह भाग चलते।'

'जब अपना घर है, तो क्यों कहीं भागें? तुम नाहक डर रही हो।'

'जल्दी से आओगे न?'

'हाँ-हाँ, अभी आता हूँ।'

'मुझसे दगा तो नहीं कर रहे हो? मुझे घर भेजकर आप कहीं चलते बनो।'

'इतना नीच नहीं हूँ झूना! जब तेरी बाँह पकड़ी है, तो मरतेदम तक निभाऊँगा।'

झुनिया घर की ओर चली। गोबर एक क्षण दुबिधे में पड़ा खड़ा रहा। फिर एकाएक सिर पर मँडरानेवाली धिक्कार की कल्पना भयंकर रूप धारण करके उसके सामने खड़ी हो गई। कहीं सचमुच अम्माँ मारने दौड़ें, तो क्या हो? उसके पाँव जैसे धरती से चिमट गये। उसके और उसके घर के बीच केवल आमों का छोटा-सा बाग था। झुनिया की काली परछाईं धीरे-धीरे जाती हुई दीख रही थी। उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ बहुत तेज़ हो गई थीं। उसके कानों में ऐसी भनक पड़ी, जैसे अम्माँ झुनिया को गाली दे रही हैं। उसके मन की कुछ ऐसी दशा हो रही थी, मानों सिर पर गँड़ासे का हाथ पड़नेवाला हो। देह का सारा रक्त जैसे सूख गया हो। एक क्षण के बाद उसने देखा, जैसे धनिया घर से निकलकर कहीं जा रही हो। दादा के पास जाती होगी! साइत दादा खा-पीकर मटर अगोरने चले गये हैं। वह मटर के खेत की ओर चला। जौ गेहूँ के खेतों को रौंदता हुआ वह इस तरह भागा जा रहा था, मानों पीछे दौड़ आ रही है। वह है दादा की मँड़ैया। वह रुक गया और दबे पाँव जाकर मँड़ैया के पीछे बैठ गया। उसका अनुमान ठीक निकला। वह पहुँचा ही था कि धनिया की बोली सुनाई दी। ओह! गजब हो गया। अम्माँ इतनी कठोर हैं!

एक अनाथ लड़की पर इन्हें तनिक भी दया नहीं आती। और जो मैं भी सामने जाकर फटकार दूँ कि तुमको झुनिया से बोलने का कोई मजाल नहीं है, तो सारी सेखी निकल जाय। अच्छा! दादा भी बिगड़ रहे हैं। केले के लिए आज ठीकरा भी तेज हो गया। मैं जरा अदब करता हूँ, यह उसी का फल है। यह तो दादा भी वहीं जा रहे हैं। अगर झुनिया को इन्होंने मारा-पीटा, तो मुझसे न सहा जायगा। भगवान्! अब तुम्हारा ही भरोसा है। मैं न जानता था, इस बिपत में जान फँसेगी। झुनिया मुझे अपने मन में कितना धूर्त और कायर और नीच समझ रही होगी; मगर उसे मार कैसे सकते हैं? घर से निकाल भी कैसे सकते हैं? क्या घर में मेरा हिस्सा नहीं है? अगर झुनिया पर किसी ने हाथ उठाया, तो आज महाभारत हो जायगा। माँ-बाप जब तक लड़कों की रक्षा करें, तब तक माँ-बाप हैं। जब उनमें ममता ही नहीं है, तो कैसे माँ-बाप!

होरी ज्यों ही मँड़ैया से निकला, गोबर भी दबे पाँव धीरे-धीरे पीछे-पीछे चला; लेकिन द्वार पर प्रकाश देखकर उसके पाँव बँध गये। उस प्रकाश-रेखा के अन्दर वह पाँव नहीं रख सकता। वह अँधेरे में ही दीवार से चिमटकर खड़ा हो गया। उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया। हाय! बेचारी झुनिया पर निरपराध यह लोग झल्ला रहे हैं, और वह कुछ नहीं कर सकता। उसने खेल-खेल में जो एक चिनगारी फेंक दी थी, वह सारे खलिहान को भस्म कर देगी, यह उसने न समझा था। और अब उसमें इतना साहस न था कि सामने आकर कहे—हाँ, मैंने चिनगारी फेंकी थी। जिन टिकौनों से उसने अपने मन को सँभाला था, वे सब इस भूकम्प में नीचे आ रहे और वह झोपड़ा नीचे गिर पड़ा। वह पीछे लौटा। अब वह झुनिया को क्या मुँह दिखाये!

वह सौ क़दम चला; पर इस तरह, जैसे कोई सिपाही मैदान से भागे। उसने झुनिया से प्रीति और निबाह की जो बातें की थीं, वह सब याद आने लगीं। वह अभिसार की मीठी स्मृतियाँ याद आईं जब वह अपनी उन्मत्त उसासों में, अपनी नशीली चितवनों में मानों अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भाँति अपने छोटे-से घोंसले में एकान्त-जीवन काट रही थी। वहाँ नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें; मगर बहेलिये का जाल और छल भी तो वहाँ न था। गोबर ने उसके

एकान्त घोंसले में जाकर उसे कुछ आनन्द पहुँचाया या नहीं, कौन जाने ; पर उसे विपत्ति में तो डाल ही दिया। वह सँभल गया। भागता हुआ सिपाही मानों अपने एक साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।

उसने द्वार पर आकर देखा, तो किवाड़ बन्द हो गये थे। किवाड़ों की दराजों से प्रकाश की रेखाएँ बाहर निकल रही थीं। उसने एक दराज़ से अन्दर झाँका। धनिया और झुनिया बैठी हुई थीं। होरी खड़ा था। झुनिया की सिसकियाँ सुनाई दे रही थीं और धनिया उसे समझा रही थी—बेटी, तू चलकर घर में बैठ। मैं तेरे काका और भाइयों को देख लूँगी। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिन्ता नहीं है। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आँखों देख भी न सकेगा। गोबर गद्गद हो गया। आज वह किसी लायक होता, तो दादा और अम्माँ को सोने से मढ़ देता और कहता—अब तुम कुछ काम न करो, आराम से बैठे खाओ और जितना दान-पुन करना चाहो, करो। झुनिया के प्रति अब उसे कोई शंका नहीं है। वह उसे जो आश्रय देना चाहता था, वह मिल गया। झुनिया उसे दग़ाबाज समझती है, तो समझे। वह तो अब तभी घर आयेगा, जब वह पैसे के बल से सारे गाँव का मुँह बन्द कर सके और दादा और अम्माँ उसे कुल का कलंक न समझकर कुल का तिलक समझें। मन पर जितना ही गहरा आघात होता है, उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही गहरी होती है। इस अपकीर्ति और कलंक ने गोबर के अन्तस्तल को मथकर वह रत्न निकाल लिया, जो अभी तक छिपा पड़ा था। आज पहली बार उसे अपने दायित्व का ज्ञान हुआ और उसके साथ ही संकल्प भी। अब तक वह कम-से-कम करना और ज्यादा से ज्यादा खाना अपना हक़ समझता था। उसके मन में कभी यह विचार ही नहीं उठा था कि घरवालों के साथ उसका भी कुछ कर्तव्य है। आज माता-पिता की उदात्त क्षमा ने जैसे उसके हृदय में प्रकाश डाल दिया। जब धनिया और झुनिया भीतर चली गईं, तो वह होरी की उसी मँड़ैया में जा बैठा और भविष्य के मंसूबे बाँधने लगा।

शहर में बेलदारों को पाँच-छः आने रोज़ मिलते हैं, यह उसने सुन रखा था। अगर उसे छः आने रोज़ मिलें और वह एक आने में गुज़र कर ले, तो पाँच आने रोज़ बच जायँ। महीने में दस रुपये होते हैं, और साल-भर में सवा सौ। वह सवा सौ की थैली लेकर घर आये, तो किसकी मजाल है, जो उसके सामने मुँह खोल

सके। यही दातादीन और यही पटेसुरी आकर उसकी हाँ में हाँ मिलायेंगे। और झुनिया तो मारे गर्व के फूल जाय। दो-चार साल वह इसी तरह कमाता रहे, तो घर का सारा दलिद्दर मिट जाय। अभी तो सारे घर की कमाई भी सवा सौ नहीं होती। अब वह अकेला सवा सौ कमायेगा। यही तो लोग कहेंगे कि मजूरी करता है। कहने दो। मजूरी करना कोई पाप तो नहीं है। और सदा छः आने ही थोड़े मिलेंगे, जैसे-जैसे वह काम में होशियार होगा, मजूरी भी तो बढ़ेगी। तब वह दादा से कहेगा, अब तुम घर बैठकर भगवान् का भजन करो। इस खेती में जान खपाने के सिवा और क्या रखा है। सबसे पहले वह एक पछाईं गाय लायेगा, जो चार-पाँच सेर दूध देगी और दादा से कहेगा, तुम गऊ माता की सेवा करो। इससे तुम्हारा लोक भी बनेगा, परलोक भी।

और क्या, एक आने में उसका गुज़र आराम से न होगा? घर-द्वार लेकर क्या करना है। किसी के ओसारे में पड़ रहेगा। सैकड़ों मन्दिर हैं, धरमसाले हैं। और फिर जिसकी वह मजूरी करेगा, क्या वह उसे रहने के लिए जगह न देगा? आटा रुपये का दस सेर आता है। एक आने का ढाई पाव हुआ। एक आने का तो वह आटा ही खा जायगा। लकड़ी, दाल, नमक, साग, यह सब कहाँ से आयेगा? दोनों जून के लिए सेर-भर तो आटा ही चाहिए। ओह! खाने की कुछ न पूछो। मुट्ठी-भर चने में भी काम चल सकता है। हलुआ और पूरी खाकर भी काम चल सकता है। जैसी समाई हो। वह आध सेर आटा खाकर दिन-भर मज़े से काम कर सकता है। इधर-उधर से उपले चुन लिये, लकड़ी का काम चल गया। कभी एक पैसे की दाल ले ली, कभी आलू। आलू भूनकर भुरता बना लिया। यहाँ दिन काटना है कि चैन करना है। पत्तल पर आटा गूँधा, उपलों पर बाटियाँ सेंकीं, आलू भूनकर भुरता बनाया और मज़े से खाकर सो रहे। घर ही पर कौन दोनों जून रोटी मिलती है। एक जून चबेना ही मिलता है। वहाँ भी एक जून चबेने पर काटेंगे।

उसे शंका हुई; अगर कभी मजूरी न मिली, तो वह क्या करेगा? मगर मजूरी क्यों न मिलेगी? जब वह जी तोड़कर काम करेगा, तो सौ आदमी उसे बुलायेंगे। काम सबको प्यारा होता है, चाम नहीं प्यारा होता। यहाँ भी तो सूखा पड़ता है, पाला गिरता है, ऊख में दीमक लगते हैं, जौ में गेरुई लगती है, सरसों में लाही लग जाती है। उसे रात को कोई काम मिल जायगा, तो उसे भी न छोड़ेगा। दिन-

कर मजूरी की, रात को कहीं चौकीदारी कर लेगा। दो आने भी रात के काम में मिल जायँ, तो चाँदी है। जब वह लौटेगा, तो सबके लिए साड़ियाँ लायेगा। झुनिया के लिए हाथ का कंगन ज़रूर बनवायेगा और दादा के लिए एक मुँडासा लायेगा।

इन्हीं मनमोदकों का स्वाद लेता हुआ वह सो गया; लेकिन ठंड में नींद कहाँ। किसी तरह रात काटी और तड़के उठकर लखनऊ की सड़क पकड़ ली। बीस कोस ही तो है। साँझ तक पहुँच जायगा। गाँव का कौन आदमी वहाँ आता-जाता है और वह अपना ठिकाना नहीं लिखेगा, नहीं दादा दूसरे ही दिन सिर पर सवार हो जायँगे। उसे कुछ पछतावा था, तो यही कि झुनिया से क्यों न साफ-साफ कह दिया, अभी तू घर जा, मैं थोड़े दिनों में कुछ कमा-धमाकर लौटूँगा; लेकिन तब वह घर जाती ही क्यों। कहती—मैं भी तुम्हारे साथ लौटूँगी। उसे वह कहाँ-कहाँ बाँधे फिरता।

दिन चढ़ने लगा। रात को कुछ न खाया था। भूख मालूम होने लगी। पाँव लड़खड़ाने लगे। कहीं बैठकर दम लेने की इच्छा होती थी। बिना कुछ पेट में डाले अब वह नहीं चल सकता; लेकिन पास एक पैसा भी नहीं है। सड़क के किनारे झड़बेरियों के झाड़ थे। उसने थोड़े-से बेर तोड़ लिये और उदर को बहलाता हुआ चला। एक गाँव में गुड़ पकने की सुगन्ध आई। अब मन न माना। कोल्हाड़ में जाकर लोटा-डोर माँगा और पानी भरकर चुल्लू से पीने बैठा कि एक किसान ने कहा—अरे भाई, क्या निराला ही पानी पियोगे? थोड़ा-सा मीठा खा लो। अबकी और चला लें कोल्हू और बना लें खाँड़। अगले साल तक मिल तैयार हो जायगी। गुड़ और खाँड़ के भाव चीनी मिलेगी, तो हमारा गुड़ कौन लेगा। उसने एक कटोरे में गुड़ की कई पिंडियाँ लाकर दीं। गोबर ने गुड़ खाया, पानी पिया। तमाखू तो पीते होगे? गोबर ने बहाना किया। अभी चिलम नहीं पीता। बुड्ढे ने प्रसन्न होकर कहा—बड़ा अच्छा करते हो भैया! बुरा रोग है। एक बेर पकड़ ले, तो जिन्दगी-भर नहीं छोड़ता।

इञ्जन को कोयला-पानी भी मिल गया, चाल तेज़ हुई। जाड़े के दिन, न जाने कब दोपहर हो गया। एक जगह देखा, एक युवती एक वृक्ष के नीचे पति से सत्याग्रह किये बैठी थी। पति सामने खड़ा उसे मना रहा था। दो-चार राहगीर तमाशा देखने खड़े हो गये थे। गोबर भी खड़ा हो गया। मान-लीला से रोचक और कौन जीवन-नाट्य होगा।

युवती ने पति की ओर घूरकर कहा—मैं न जाऊँगी, न जाऊँगी, न जाऊँगी।

पुरुष ने जैसे अलटिमेटम दिया—न जायगी?

'न जाऊँगी।'

'न जायगी?'

'न जाऊँगी।'

पुरुष ने उसके केश पकड़कर घसीटना शुरू किया। युवती भूमि पर लोट गई।

पुरुष ने हारकर कहा—मैं फिर कहता हूँ, उठकर चल।

स्त्री ने उसी दृढ़ता से कहा—मैं तेरे घर सात जनम न जाऊँगी, बोटी-बोटी काट डाल।

'मैं तेरा गला काट लूँगा।'

'तो फाँसी पाओगे।'

पुरुष ने उसके केश छोड़ दिये और सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। पुरुषत्व अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। इसके आगे अब उसका कोई बस नहीं है।

एक क्षण में वह फिर खड़ा हुआ और परास्त स्वर में बोला—आखिर तू क्या चाहती है?

युवती भी उठ बैठी और निश्चल भाव से बोली—मैं यही चाहती हूँ, तू मुझे छोड़ दे।

'कुछ मुँह से कहेगी, क्या बात हुई?'

'मेरे भाई-बाप को कोई क्यों गाली दे!'

'किसने गाली दी तेरे भाई-बाप को?'

'जाकर अपने घर में पूछ।'

'चलेगी, तभी तो पूछूँगा?'

'तू क्या पूछेगा? कुछ दम भी है। जाकर अम्माँ के आँचल में मुँह ढाँककर सो। वह तेरी माँ होगी। मेरी कोई नहीं है। तू उसकी गालियाँ सुन। मैं क्यों सुनूँ? एक रोटी खाती हूँ, तो चार रोटी का काम करती हूँ। क्यों किसी धौंस सहूँ? मैं तेरा एक पीतल का छल्ला भी तो नहीं जानती!'

राहगीरों को इस कलह में अभिनय का आनन्द आ रहा था; मगर उसके जल्द समाप्त होने की कोई आशा न थी। मंज़िल खोटी होती थी। एक-एक करके

लोग खिसकने लगे। गोबर को पुरुष की निर्दयता बुरी लग रही थी। भीड़ के सामने तो कुछ न कह सकता था। मैदान खाली हुआ, तो बोला—भाई, मर्द और औरत के बीच में बोलना तो न चाहिए; मगर इतनी बेदरदी भी अच्छी नहीं होती।

पुरुष ने कौड़ी की-सी आँखें निकालकर कहा—तुम कौन हो ?

गोबर ने निःशंक भाव से कहा—मैं कोई हूँ; लेकिन अनुचित बात देखकर सभी को बुरा लगता है।

पुरुष ने सिर हिलाकर कहा—मालूम होता है, अभी मेहरिया नहीं आई, तभी इतना दरद है।

'मेहरिया आयेगी, तो भी उसके झोंटे पकड़कर न खींचूँगा।'

'अच्छा, तो अपनी राह लो। मेरी औरत है, मैं उसे मारूँगा, काटूँगा। तुम कौन होते हो बोलनेवाले। चले जाओ सीधे से, यहाँ मत खड़े हो।'

गोबर का गर्म खून और गर्म हो गया। वह क्यों चला जाय, सड़क सरकार की है। किसी के बाप की नहीं है। वह जब तक चाहे, वहाँ खड़ा रह सकता है। वहाँ से उसे हटाने का किसी को अधिकार नहीं है।

पुरुष ने ओठ चबाकर कहा—तो तुम न जाओगे ? आऊँ ?

गोबर ने अँगोछा कमर में बाँध लिया और समर के लिए तैयार होकर बोला—तुम आओ या न आओ। मैं तो तभी जाऊँगा; जब मेरी इच्छा होगी।

'तो मालूम होता है, हाथ-पैर तुड़वाके जाओगे।'

'यह कौन जानता है, किसके हाथ-पाँव टूटेंगे।'

'तो तुम न जाओगे ?'

'ना।'

पुरुष मुट्ठी बाँधकर गोबर की ओर झपटा। उसी क्षण युवती ने उसकी धोती पकड़ ली और उसे अपनी ओर खींचती हुई गोबर से बोली—तुम क्यों लड़ाई करने पर उतारू हो रहे हो जी, अपनी राह क्यों नहीं जाते। यहाँ कोई तमाशा है। हमारा आपस का झगड़ा है। कभी वह मुझे मारता है, कभी मैं उसे डाँटती हूँ। तुमसे मतलब ?

गोबर यह धिक्कार पाकर वहाँ से चलता बना। दिल में कहा—यह औरत मार खाने ही लायक है।

गोबर आगे निकल गया, तो युवती ने पति को डाँटा—तुम सबसे लड़ने क्यों लगते हो। उसने कौन-सी बुरी बात कही थी कि तुम्हें चोट लग गई। बुरा काम करोगे, तो दुनिया बुरा कहेगी ही; मगर है किसी भले घर का और अपनी बिरादरी का ही जान पड़ता है। क्यों उसे अपनी बहन के लिए नहीं ठीक कर लेते?

पति ने सन्देह के स्वर में कहा—क्या अब तक क्वाँरा बैठा होगा?

'तो पूछ ही क्यों न लो?'

पुरुष ने दस क़दम दौड़कर गोबर को आवाज़ दी और हाथ से ठहर जाने का इशारा किया। गोबर ने समझा, शायद फिर इसके सिर भूत सवार हुआ, जभी ललकार रहा है। बगैर मार खाये न मानेगा। अपने गाँव में कुत्ता भी शेर हो जाता है; लेकिन आने दो।

लेकिन उसके मुख पर समर की ललकार न थी। मैत्री का निमन्त्रण था। उसने गाँव और नाम और जात पूछी। गोबर ने ठीक ठीक बता दिया। उस पुरुष का नाम कोदई था।

कोदई ने मुस्कराकर कहा—हम दोनों में लड़ाई होते-होते बची। तुम चले आये, तो मैंने सोचा, तुमने ठीक ही कहा। मैं हकनाहक तुमसे तन बैठा। कुछ खेती-बारी तो घर में होती है न?

गोबर ने बताया, उसके मौरूसी पाँच बीघे खेत हैं और एक हल की खेती होती है।

'मैंने तुम्हें जो बुरा-भला कहा है, उसकी माफी दे दो भाई। क्रोध में आदमी अन्धा हो जाता है। औरत गुन-सहूर में लच्छमी है, मुदा, कभी-कभी न जाने कौन-सा भूत इस पर सवार हो जाता है। अब तुम्हीं बताओ, माता पर मेरा क्या बस है? जनम तो उन्हीं ने दिया है, पाला-पोसा तो उन्हीं ने है। जब कोई बात होगी, तो मैं तो जो कुछ कहूँगा, लुगाई ही से कहूँगा। उस पर अपना बस है। तुम्हीं सोचो, मैं कुपद तो नहीं कह रहा हूँ। हाँ, मुझे उसके बाल पकड़कर घसीटना न था; लेकिन औरत जात बिना कुछ ताड़ना दिये काबू में भी तो नहीं रहती। चाहती है, माँ से अलग हो जाऊँ। तुम्हीं सोचो, कैसे अलग हो जाऊँ। और किससे अलग हो जाऊँ। अपनी माँ से? जिसने जनम दिया? यह मुझसे न होगा, औरत रहे या जाय!'

गोबर को भी अपनी राय बदलनी पड़ी। बोला—माता का आदर करना तो सबका धरम ही है भाई। माता से कौन उरिन हो सकता है।

कोदई ने उसे अपने घर चलने का नेवता दिया। आज वह किसी तरह लखनऊ नहीं पहुँच सकता। कोस-दो-कोस जाते-जाते साँझ हो जायगी। रात को कहीं न कहीं टिकना ही पड़ेगा।

गोबर ने विनोद किया—लुगाई मान गई?

'न मानेगी तो क्या करेगी।'

'मुझे तो उसने ऐसी फटकार बताई कि मैं लजा गया।'

'वह खुद पछता रही है। चलो, जरा माताजी को समझा देना। मुझसे तो कुछ कहते नहीं बनता। उन्हें भी सोचना चाहिए कि बहू को बाप-भाई की गाली क्यों देती हैं। हमारी ही बहन है। चार दिन में उसकी सगाई हो जायगी। उसकी सास हमें गालियाँ देगी, तो उससे सुना जायगा? सब दोस लुगाई ही का नहीं है। माता का भी दोस है। जब हर बात में वह अपनी बेटी का पच्छ करेंगी, तो हमें बुरा लगेगा ही। इसमें इतनी बात अच्छी है कि घर से रूठकर चली जाय; पर गाली का जवाब गाली से नहीं देती।'

गोबर को रात के लिए कोई ठिकाना चाहिए था ही। कोदई के साथ हो लिया। दोनों फिर उस जगह आये, जहाँ युवती बैठी हुई थी। वह अब गृहिणी बन गई थी। ज़रा-सा घूँघट निकाल लिया था और लजाने लगी थी।

कोदई ने मुस्कराकर कहा—यह तो आते ही न थे। कहते थे, ऐसी डाँट सुनने के बाद उनके घर कैसे जायँ?

युवती ने घूँघट की आड़ से गोबर को देखकर कहा—इतनी ही डाँट में डर गये? लुगाई आ जायगी, तब कहाँ भागोगे?

गाँव समीप ही था। गाँव क्या था, पुरवा था, दस-बारह घरों का, जिसमें आधे खपरैल के थे, आधे फूस के। कोदई ने अपने घर पहुँचकर खाट निकाली, उस पर एक दरी डाल दी, शर्बत बनाने को कह चिलम भर लाया। और एक क्षण में वही युवती लोटे में शर्बत लेकर आई और गोबर को पानी का एक छींटा मारकर मानों क्षमा माँग ली। वह अब उसका ननदोई हो रहा था। फिर क्यों न अभी से छेड़-छाड़ शुरू कर दे।

११

गोबर अँधेरे ही मुँह उठा और कोदई से बिदा माँगी। सबको मालूम हो गया था कि उसका ब्याह हो चुका है ; इसलिए उससे कोई विवाह-सम्बन्धी चरचा नहीं की। उसके शील-स्वभाव ने सारे घर को मुग्ध कर लिया था। कोदई की माता को तो उसने ऐसे मीठे शब्दों में और उसके मातृपद की रक्षा करते हुए, ऐसा अच्छा उपदेश दिया कि उसने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया था—तुम बड़ी हो माताजी, पूज्य हो। पुत्र माता के रिन से सौ जनम लेकर भी उरिन नहीं हो सकता, लाख जनम लेकर भी उरिन नहीं हो सकता। करोड़ जनम लेकर भी नहीं ..

बुढ़िया इस संख्यातीत श्रद्धा पर गद्‌गद हो गई। इसके बाद गोबर ने जो कुछ कहा, उसमें बुढ़िया को अपना मंगल ही दिखाई दिया। वैद्य एक बार रोगी को चंगा कर दे, फिर रोगी उसके हाथों विष भी खुशी से पी लेगा—अब जैसे आज ही बहू घर से रूठकर चली गई, तो किसकी हेठी हुई ? बहू को कौन जानता है ? किसकी लड़की है, किसकी नातिन है, कौन जानता है ! संभव है, उसका बाप घसियारा ही रहा हो...

बुढ़िया ने निश्चयात्मक भाव से कहा—घसियारा तो है ही बेटा, पक्का घसियारा। सबेरे उसका मुँह देख लो, तो दिन-भर पानी न मिले।

गोबर बोला—तो ऐसे आदमी की क्या हँसी हो सकती है ! हँसी हुई तुम्हारी और तुम्हारे आदमी की। जिसने पूछा, यही पूछा कि किसकी बहू है। फिर वह अभी लड़की है, अबोध, अल्हड़। नीच माता-पिता की लड़की है, अच्छी कहाँ से बन जाय ! तुमको तो बूढ़े तोते को राम-नाम पढ़ाना पड़ेगा। मारने से तो वह पढेगा नहीं, उसे तो सहज स्नेह ही से पढ़ाया जा सकता है। ताड़ना भी दो ; लेकिन उसके मुँह मत लगो। उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता, तुम्हारा अपमान होता है।

जब गोबर चलने लगा, तो बुढ़िया ने खाँड और सत्तू मिलाकर उसे खाने को दिया। गाँव के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे। बातचीत में रास्ता कट गया और नौ बजते-बजते सब लोग अमीनाबाद के बाज़ार में जा पहुँचे। गोबर हैरान था, इतने आदमी नगर में कहाँ से आ गये ? आदमी पर आदमी गिरा पड़ता था।

उस दिन बाज़ार में चार-पाँच सौ मजूरों से कम न थे। राज और बढ़ई और लोहार और बेलदार और खाट बुननेवाले और टोकरी ढोनेवाले और संगतराश सभी जमा थे। गोबर यह जमघट देखकर निराश हो गया। इतने सारे मजूरों को कहाँ काम मिला जाता है। और उसके हाथ में तो कोई औजार भी नहीं है। कोई क्या जानेगा कि वह क्या काम कर सकता है। कोई उसे क्यों रखने लगा। बिना औज़ार के उसे कौन पूछेगा!

धीरे-धीरे एक-एक करके मजूरों को काम मिलता जाता था। कुछ लोग निराश होकर घर लौटे जा रहे थे। अधिकतर वह बूढ़े और निकम्मे बच रहे थे, जिनका कोई पुछत्तर न था। और उन्हीं में गोबर भी था। लेकिन अभी आज उसके पास खाने को है। कोई ग़म नहीं।

सहसा मिर्ज़ा खुर्शेद ने मज़दूरों के बीच में आकर ऊँची आवाज़ से कहा—जिसको छः आने पर आज काम करना हो, वह मेरे साथ आये। सबको छः आने मिलेंगे। पाँच बजे छुट्टी मिलेगी।

दस-पाँच राजों और बढ़इयों को छोड़कर सब-के-सब उनके साथ चलने को तैयार हो गये। चार सौ फटे-हालों की एक विशाल सेना सज गई। आगे मिर्ज़ा थे, कन्धे पर मोटा सोटा रखे हुए। पीछे भुखमरों की लम्बी क़तार थी, जैसे भेड़ें हों।

एक बूढ़े ने मिर्ज़ा से पूछा—कौन काम करना है मालिक?

मिर्ज़ा साहब ने जो काम बतलाया, उस पर सब और भी चकित हो गये। केवल एक कबड्डी खेलना। यह कैसा आदमी है, जो कबड्डी खेलने के लिए छः आना रोज़ दे रहा है। सनकी तो नहीं है कोई! बहुत धन पाकर आदमी सनक भी जाता है। बहुत पढ़ लेने से भी आदमी पागल हो जाते हैं। कुछ लोगों को सन्देह होने लगा, कहीं यह कोई मखौल तो नहीं है! यहाँ से घर पर ले जाकर कह दे, कोई काम नहीं है, तो कौन इसका क्या कर लेगा। वह चाहे कबड्डी खेलाये, चाहे आँखमिचौनी, चाहे गुल्ली-डंडा, मजूरी पेशगी दे दे। ऐसे झक्कड़ आदमी का क्या भरोसा!

गोबर ने डरते-डरते कहा—मालिक, हमारे पास कुछ खाने को नहीं है। पैसे मिल जायँ, तो कुछ लेकर खा लूँ।

मिर्ज़ा ने झट छः आने पैसे उसके हाथ में रख दिये और ललकारकर बोले—मजूरी सबको चलते-चलते पेशगी दे दी जायगी। इसकी चिन्ता मत करो।

मिर्ज़ा साहब ने शहर के बाहर थोड़ी-सी ज़मीन ले रखी थी। मजूरों ने जाकर देखा, तो एक बड़ा अहाता घिरा हुआ था और उसके अन्दर केवल एक छोटी-सी फूस की झोंपड़ी थी, जिसमें तीन-चार कुर्सियाँ थीं, एक मेज़। थोड़ी-सी किताबें मेज़ पर रखी हुई थीं। झोपड़ी बेलों और लताओं से ढँकी हुई बहुत ही सुन्दर लगती थी। अहाते में एक तरफ आम और नीबू और अमरूद के पौधे लगे थे, दूसरी तरफ कुछ फूल। बड़ा हिस्सा परती था। मिर्ज़ा ने सबको एक क़तार में खड़ा करके पहले ही मजूरी बाँट दी। अब किसी को उनके पागलपन में सन्देह न रहा।

गोबर पैसे पहले ही पा चुका था, मिर्ज़ा ने उसे बुलाकर पौधे सींचने का काम सौंपा। उसे कबड्डी खेलने को न मिलेगी। मन में ऐंठकर रह गया। इन बुड्ढों को उठा-उठाकर पटकता; लेकिन कोई परवाह नहीं। बहुत कबड्डी खेल चुका है। पैसे तो पूरे मिल गये।

आज युगों के बाद इन जरा-ग्रस्तों को कबड्डी खेलने का सौभाग्य मिला। अधिक-तर तो ऐसे थे, जिन्हें याद भी न आता था कि कभी कबड्डी खेली है या नहीं। दिन-भर शहर में पिसते थे। पहर रात गये घर पहुँचते थे और जो कुछ रूखा-सूखा मिल जाता था, खाकर पड़ रहते थे। प्रातःकाल फिर वही चरखा शुरू हो जाता था। जीवन नीरस, निरानन्द, केवल एक ढर्रा मात्र हो गया था। आज जो यह अवसर मिला, तो बूढ़े भी जवान हो गये। अधमरे बूढ़े, ठठरियाँ लिये, मुँह में दाँत न पेट में आँत, जाँघ के ऊपर धोतियाँ या तहमद चढ़ाये ताल ठोक-ठोककर उछल रहे थे, मानों उन बूढ़ी हड्डियों में जवानी धँस पड़ी हो। चटपट पाली बन गई, दो नायक बन गये। गोइयों का चुनाव होने लगा और बारह बजते-बजते खेल शुरू हो गया। जाड़ों की ठण्डी धूप ऐसी क्रीड़ाओं के लिए आदर्श ऋतु है।

उधर अहाते के फाटक पर मिर्ज़ा साहब तमाशाइयों को टिकट बाँट रहे थे। उन पर इस तरह की कोई-न-कोई सनक हमेशा सवार रहती थी। अमीरों से पैसा लेकर ग़रीबों को बाँट देना। इस बूढ़ी कबड्डी का विज्ञापन कई दिन से हो रहा था। बड़े-बड़े पोस्टर चिपकाये गये थे, नोटिस बाँटे गये थे। यह खेल अपने ढंग का निराला होगा, बिलकुल अभूतपूर्व। भारत के बूढ़े आज भी कैसे पोढ़े हैं, जिन्हें यह देखना हो आयें और अपनी आँखें तृप्त कर लें। जिसने यह तमाशा न देखा, वह पछतायेगा। ऐसा सुअवसर फिर न मिलेगा। टिकट दस रुपये से लेकर दो आने तक

के थे। तीन बजते-बजते सारा अहाता भर गया। मोटरों और फिटनों का तांता लगा हुआ था। दो हज़ार से कम की भीड़ न थी। रईसों के लिए कुर्सियों और बेंचों का इन्तजाम था। साधारण जनता के लिए साफ-सुथरी ज़मीन।

मिस मालती, मेहता, खन्ना, तखा और राय साहब सभी विराजमान थे।

खेल शुरू हुआ, तो मिर्ज़ा ने मेहता से कहा—आइए डाक्टर साहब, एक गोईं हमारी और आपकी भी हो जाय।

मिस मालती बोलीं—फ़िलासफ़र का जोड़ फ़िलासफ़र ही से हो सकता है।

मिर्ज़ा ने मूँछों पर ताव देकर कहा—तो क्या आप समझती हैं, मैं फ़िलासफ़र नहीं हूँ। मेरे पास पुछल्ला नहीं है; लेकिन हूँ मैं फ़िलासफ़र। आप मेरा इम्तहान ले सकते हैं मेहताजी!

मालती ने पूछा—अच्छा बतलाइए, आप आइडियलिस्ट हैं या मेटीरियलिस्ट?

'मैं दोनों हूँ।'

'यह क्योंकर?'

'बहुत अच्छी तरह। जब जैसा मौक़ा देखा, वैसा बन गया।'

'तो आपका अपना कोई निश्चय नहीं है?'

'जिस बात का आज तक कभी निश्चय न हुआ, और कभी न होगा, उसका निश्चय मैं भला क्या कर सकता हूँ। और लोग आँखें फोड़कर और किताबें चाटकर जिस नतीजे पर पहुँचे हैं, वहाँ मैं योंही पहुँच गया। आप बता सकती हैं, किसी फ़िलासफ़र ने अक्ली गद्दे लड़ाने के सिवा और कुछ किया है?'

डाक्टर मेहता ने अचकन के बटन खोलते हुए कहा—तो चलिए, हमारी और आपकी हो ही जाय। और कोई माने या न माने, मैं आपको फ़िलासफर मानता हूँ।

मिर्जा ने खन्ना से पूछा—आपके लिए भी कोई जोड़ ठीक करूँ?

मालती ने पुचारा दिया—हाँ-हाँ, इन्हें ज़रूर ले जाइए। मिस्टर तंखा के साथ।

खन्ना झेंपते हुए बोले—जी नहीं, मुझे क्षमा कीजिए।

मिर्ज़ा ने राय साहब से पूछा—आपके लिए कोई जोड़ लाऊँ?

राय साहब बोले—मेरा जोड़ तो ओंकारनाथ का है, मगर वह आज नज़र ही

नहीं आते। मिर्ज़ा और मेहता भी नंगी देह, केवल जाँघिये पहने हुए मैदान में पहुँच गये। एक इधर, दूसरा उधर। खेल शुरू हो गया।

जनता बूढ़े कुलेलों पर हँसती थी, तालियाँ बजाती थी, गालियाँ देती थी, ललकारती थी, बाज़ियाँ लगाती थी। वाह! ज़रा इन बूढ़े बाबा को देखो। किस शान से जा रहे हैं, जैसे सबको मारकर ही लौटेंगे। अच्छा, दूसरी तरफ से भी उन्हीं के बड़े भाई निकले। दोनों कैसे पैंतरे बदल रहे हैं! इन हड्डियों में अभी बहुत जान है भाई! इन लोगों ने जितना घी खाया है, उतना अब हमें पानी भी मयस्सर नहीं। लोग कहते हैं, भारत धनी हो रहा है। होता होगा। हम तो यही देखते हैं कि इन बुड्ढों-जैसे जीवट के जवान भी आज मुश्किल से निकलेंगे। वह उधरवाले बुड्ढे ने इसे दबोच लिया। बेचारा छूट निकलने के लिए कितना ज़ोर मार रहा है; मगर अब नहीं जा सकते बच्चा। एक को तीन लिपट गये। इस तरह लोग अपनी दिलचस्पी ज़ाहिर कर रहे थे। उनका सारा ध्यान मैदान की ओर था। खिलाड़ियों के आघात-प्रतिघात, उछल-कूद, धर-पकड़, और उनके मरने-जीने में सभी तन्मय हो रहे थे। कभी चारों तरफ से क़हक़हे पड़ते, कभी कोई अन्याय या धाँधली देखकर लोग 'छोड़ दो, छोड़ दो' का गुल मचाते, कुछ लोग तैश में आकर पाली की तरफ़ दौड़ते; लेकिन जो थोड़े-से सज्जन शामियाने में ऊँचे दरजे के टिकट लेकर बैठे थे, उन्हें इस खेल में विशेष आनन्द न मिल रहा था। वे इससे अधिक महत्त्व की बातें कर रहे थे।

खन्ना ने जिंजर का ग्लास खाली करके सिगार सुलगाया और राय साहब से बोले—मैंने आपसे कह दिया, बैंक इससे कम सूद पर किसी तरह राज़ी न होगा और यह रिआयत भी मैंने आपके साथ की है; क्योंकि आपके साथ घर का मुआमला है।

राय साहब ने मूछों में मुस्कराहट को लपेटकर कहा—आपकी नीति में घरवालों को ही उलटे छुरे से हलाल करना चाहिए?

'यह आप क्या फरमा रहे हैं।'

'ठीक कह रहा हूँ। सूर्यप्रतापसिंह से आपने केवल सात फ़ी सदी लिया है, मुझसे नौ फ़ी सदी माँग रहे हैं और उस पर एहसान भी रखते हैं। क्यों न हो।'

खन्ना ने क़हक़हा मारा, मानों यह कथन हँसने के ही योग्य था।

'उन शर्तों पर मैं आपसे भी वही सूद ले लूँगा। हमने उनकी जायदाद रेहन रख ली है और शायद वह जायदाद फिर उनके हाथ न जायगी।'

'मैं भी अपनी कोई जायदाद निकाल दूँगा। नौ परसेंट देने से यह कहीं अच्छा है कि फ़ालतू जायदाद अलग कर दूँ। मेरी जैकसन रोडवाली कोठी आप निकलवा दें। कमीशन ले लीजिएगा।'

'उस कोठी का सुभीते से निकलना ज़रा मुश्किल है। आप जानते हैं, वह जगह बस्ती से कितनी दूर है; मगर ख़ैर, देखूँगा। आप उसकी क़ीमत का क्या अन्दाज़ा करते हैं?'

राय साहब ने एक लाख पचीस हज़ार बताये। पन्द्रह बीघे ज़मीन भी तो है उसके साथ। खन्ना स्तंभित हो गये। बोले—आप आज के पन्द्रह साल पहले का स्वप्न देख रहे हैं राय साहब! आपको मालूम होना चाहिए कि इधर जायदादों के मूल्य में पचास परसेंट की कमी हो गई है।

राय साहब ने बुरा मानकर कहा—जी नहीं, पन्द्रह साल पहले उसकी क़ीमत डेढ़ लाख थी;

'मैं खरीदार की तलाश में रहूँगा; मगर मेरा कमीशन ५% होगा आपसे।'

'औरों से शायद १०% हो, क्यों; क्या करोगे इतने रुपये लेकर?'

'आप जो चाहें दे दीजिएगा। अब तो राज़ी हुए। शुगर के हिस्से अभी तक आपने न खरीदे। अब बहुत थोड़े-से हिस्से बच रहे हैं। हाथ मलते रह जाइएगा। इंश्योरेंस की पालिसी भी आपने न ली। आपमें टाल-मटोल की आदत है। जब अपने लाभ की बातों में इतना टाल-मटोल है, तब दूसरों को आप लोगों से क्या लाभ हो सकता है। इसी से कहते हैं, रियासत आदमी की अक़्ल चर जाती है। मेरा बस चले; तो मैं ताल्लुकेदारों की रियासतें ज़ब्त कर लूँ।'

मिस्टर तंखा मालती पर जाल फेंक रहे थे। मालती ने साफ़ कह दिया था कि वह एलेक्शन के झमेले में नहीं पड़ना चाहती; पर तंखा इतनी आसानी से हार माननेवाले व्यक्ति न थे। आकर कुहनियों के बल मेज़ पर टिककर बोले—आप ज़रा उस मुआमले पर फिर विचार करें। मैं कहता हूँ, ऐसा मौक़ा शायद आपको फिर न मिले। रानी साहब चन्दा को आपके मुक़ाबले में रुपये में एक आना चांस भी नहीं है। मेरी इच्छा केवल यह है कि कौंसिल में ऐसे लोग जायँ, जिन्होंने

जीवन में कुछ अनुभव प्राप्त किया है, और जनता की कुछ सेवा की है। जिस महिला ने भोग-विलास के सिवा कुछ जाना ही नहीं, जिसने जनता को हमेशा अपनी कार का पेट्रोल समझा, जिसकी सबसे मूल्यवान् सेवा वे पार्टियाँ हैं, जो वह गवर्नरों और सेक्रेटरियों को दिया करती हैं, उनके लिए इस कौंसिल में स्थान नहीं है। नई कौंसिलों में बहुत कुछ अधिकार प्रतिनिधियों के हाथ में होगा और मैं नहीं चाहता कि वह अधिकार अनधिकारियों के हाथ में जाय।

मालती ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा—लेकिन साहब, मेरे पास दस-बीस हज़ार एलेक्शन पर खर्च करने के लिए कहाँ हैं। रानी साहब तो दो-चार लाख खर्च कर सकती हैं। मुझे भी साल में हज़ार-पाँच सौ रुपये उनसे मिल जाते हैं, यह रक़म भी हाथ से निकल जायगी।

'पहले आप, यह बता दें कि आप जाना चाहती हैं, या नहीं?'

'जाना तो चाहती हूँ; मगर फ्री पास मिल जाय!'

'तो यह मेरा ज़िम्मा रहा। आपको फ्री पास मिल जायगा।'

'जी नहीं, क्षमा कीजिए। मैं हार की ज़िल्लत नहीं उठाना चाहती। जब रानी साहब रुपये की थैलियाँ खोल देंगी और एक-एक वोट पर एक-एक अशर्फी चढ़ने लगेगी, तो शायद आप भी उधर वोट देंगे।'

'आपके ख़याल से एलेक्शन महज़ रुपये से जीता जा सकता है?'

'जी नहीं, व्यक्ति भी एक चीज़ है; लेकिन मैंने केवल एक बार जेल जाने के सिवा और क्या जन-सेवा की है? और सच पूछिए तो उस बार भी मैं अपने मतलब ही से गई थी, उसी तरह जैसे राय साहब और खन्ना गये थे। इस नई सभ्यता का आधार धन है, विद्या और सेवा और कुल और जाति सब धन के सामने हेच हैं। कभी-कभी इतिहास में ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब धन को आन्दोलन के सामने नीचा देखना पड़ता है; मगर इसे अपवाद समझिए। मैं अपनी ही बात कहती हूँ। कोई ग़रीब औरत दवाखाने में आ जाती है, तो घंटों उससे बोलती तक नहीं; पर कोई महिला कार पर आ गई तो द्वार तक जाकर उनका स्वागत करती हूँ, और उनकी ऐसी उपासना करती हूँ, मानों साक्षात् देवी हैं। मेरा और रानी साहब का कोई मुक़ाबला नहीं। जिस तरह के कौंसिल बन रहे हैं, उनके लिए रानी साहब ही ज़्यादा उपयुक्त हैं।'

८

उधर मैदान में मेहता की टीम कमज़ोर पड़ती जाती थी। आधे से ज़्यादा खिलाड़ी मर चुके थे। मेहता ने अपने जीवन में कभी कबड्डी न खेली थी। मिर्ज़ा इस फ़न के उस्ताद थे। मेहता की तातीलें अभिनय के अभ्यास में कटती थीं। रूप भरने में वह अच्छे-अच्छों को चकित कर देते थे। और मिर्ज़ा के लिए सारी दिलचस्पी अखाड़े में थी, पहलवानों के भी और परियों के भी।

मालती का ध्यान उधर ही लगा हुआ था। उठकर राय साहब से बोली—मेहता की पार्टी तो बुरी तरह पिट रही है।

राय साहब और खन्ना में इंश्योरेंस की बातें हो रही थीं। राय साहब उस प्रसंग से ऊबे हुए मालूम होते थे। मालती ने मानों उन्हें एक बन्धन से मुक्त कर दिया। उठकर बोले—जी हाँ, पिट तो रही है। मिर्ज़ा पक्का खिलाड़ी है।

'मेहता को यह क्या सनक सूझी? व्यर्थ अपनी भद्द करा रहे हैं।'

'इसमें काहे की भद्द। दिल्लगी ही तो है।'

'मेहता की तरफ़ से जो बाहर निकलता है, वही मर जाता है।'

एक क्षण के बाद उसने पूछा—क्या इस खेल में हाफ़ टाइम नहीं होता?

खन्ना को शरारत सूझी। बोले—आप चले थे मिर्ज़ा से मुक़ाबला करने। समझते थे, यह भी फिलासफी है।

'मैं पूछती हूँ, इस खेल में हाफ़ टाइम नहीं होता?'

खन्ना ने फिर चिढ़ाया—अब खेल ही ख़तम हुआ जाता है। मज़ा आयेगा तब, जब मिर्ज़ा मेहता को दबोचकर रगड़ेंगे और मेहता साहब 'चीं' बोलेंगे।

'मैं तुमसे नहीं पूछती। राय साहब से पूछती हूँ।'

राय साहब बोले—इस खेल में कैसा हाफ़ टाइम! एक-ही-एक आदमी तो सामने आता है!

'अच्छा, मेहता का एक आदमी और मर गया।'

खन्ना बोले—आप देखती रहिए। इसी तरह सब मर जायँगे और आखिर में मेहता साहब भी मरेंगे।

मालती जल गई—आपकी हिम्मत न पड़ी बाहर निकलने की।

'मैं गँवारों के खेल नहीं खेलता। मेरे लिए टेनिस है।'

'टेनिस में भी मैं तुम्हें सैकड़ों गेम दे चुकी हूँ।'

'आपसे जीतने का दावा ही कब है ?'

'अगर दावा हो, तो मैं तैयार हूँ ।'

मालती उन्हें फटकार बताकर फिर अपनी जगह पर आ बैठी । किसी को मेहता से हमदर्दी नहीं है । कोई यह नहीं कहता कि अब खेल ख़तम कर दिया जाय । मेहता भी अजीब बुद्धू आदमी हैं, कुछ धाँधली क्यों नहीं कर बैठते । यहाँ अपनी न्याय-प्रियता दिखा रहे हैं । अभी हारकर लौटेंगे, तो चारों तरफ से तालियाँ पड़ेंगी । अब शायद बीस आदमी उनकी तरफ़ और होंगे, और लोग कितने खुश हो रहे हैं ।

ज्यों-ज्यों अन्त समीप आता जाता था, लोग अधीर होते जाते थे । और पाली की तरफ़ बढ़ते जाते थे । रस्सी का जो एक कठघरा-सा बनाया गया था, वह तोड़ दिया गया । स्वयंसेवक रोकने की चेष्टा कर रहे थे ; पर उस उत्सुकता के उन्माद में उनकी एक न चलती थी । यहाँ तक कि ज्वार अन्तिम बिन्दु तक आ पहुँचा और मेहता अकेले बच गये और अब उन्हें गूँगे का पार्ट खेलना पड़ेगा । अब सारा दार-मदार उन्हीं पर है ; अगर वह बचकर अपनी पाली में लौट आते हैं, तो उनका पक्ष बचता है । नहीं, हार का सारा अपमान और लज्जा लिये हुए उन्हें लौटना पड़ता है । वह दूसरे पक्ष के जितने आदमियों को छूकर अपनी पाली में आयेंगे, वह सब मर जायँगे, और उतने ही आदमी उनकी तरफ़ जी उठेंगे । सबकी आँखें मेहता की ओर लगी हुई थीं । वह मेहता चले । जनता ने चारों ओर से आकर पाली को घेर लिया । तन्मयता अपनी पराकाष्ठा पर थी । मेहता कितने शान्तभाव से शत्रुओं की ओर जा रहे हैं । उनकी प्रत्येक गति जनता पर प्रतिबिम्बित हो जाती है, किसी की गरदन टेढ़ी हुई जाती है, कोई आगे को झुका पड़ता है । वातावरण गर्म हो गया है । पारा ज्वाला-बिन्दु पर आ पहुँचा है । मेहता शत्रु-दल में घुसे । दल पीछे हटता जाता है । उनका संगठन इतना दृढ़ है कि मेहता की पकड़ या स्पर्श में कोई नहीं आ रहा है । बहुतों को जो आशा थी कि मेहता कम-से-कम अपने पक्ष के दस-पाँच आदमियों को तो जिला ही लेंगे, वे निराश होते जा रहे हैं ।

सहसा मिर्ज़ा एक छलाँग मारते हैं और मेहता की कमर पकड़ लेते हैं । मेहता अपने को छुड़ाने के लिए ज़ोर मार रहे हैं । मिर्ज़ा को पाली की तरफ़ खींचे लिये आ रहे हैं । लोग उन्मत्त हो जाते हैं । अब इसका पता चलना मुश्किल है, कि कौन खिलाड़ी है, कौन तमाशाई । सब एक में गडमड हो गये हैं । मिर्ज़ा और मेहता में

मल्लयुद्ध हो रहा है। मिर्ज़ा के कई बुड्ढे मेहता की तरफ़ लपके और उनसे लिपट गये। मेहता ज़मीन पर चुपचाप पड़े हुए हैं; अगर वह किसी तरह खींच-खाँचकर दो हाथ और ले जायँ तो उनके पचासों आदमी जी उठते हैं; मगर वह एक इंच भी नहीं खिसक सकते। मिर्ज़ा उनकी गरदन पर बैठे हुए हैं। मेहता का मुख लाल हो रहा है। आँखें बीरबहूटी बनी हुई हैं। पसीना टपक रहा है और मिर्ज़ा अपने-स्थूल शरीर का भार लिये उनकी पीठ पर हुमच रहे हैं।

माल्ती ने समीप जाकर उत्तेजित स्वर में कहा—मिर्ज़ा ख़ुर्शेद, यह फ़ेयर नहीं है! बाज़ी ड्रान रही।

ख़ुर्शेद ने मेहता की गरदन पर एक घस्सा लगाकर कहा—जब तक यह 'चीं' न बोलेंगे, मैं हरगिज न छोड़ूँगा। क्यों नहीं 'चीं' बोलते?

मालती और आगे बढ़ी—'चीं' बुलाने के लिए आप इतनी ज़बरदस्ती नहीं कर सकते।

मिर्ज़ा ने मेहता की पीठ पर हुमचकर कहा—बेशक कर सकता हूँ। आप इनसे कह दें, 'चीं' बोलें, मैं अभी उठा जाता हूँ।

मेहता ने एक बार फिर उठने की चेष्टा की; पर मिर्ज़ा ने उनकी गरदन दबा दी।

मालती ने उनका हाथ पकड़कर घसीटने की कोशिश करके कहा—यह खेल नहीं, अदावत है।

'अदावत ही सही।'

'आप न छोड़ेंगे?'

उसी वक्त जैसे कोई भूकम्प आ गया। मिर्ज़ा साहब ज़मीन पर पड़े हुए थे और मेहता दौड़े हुए पाली की ओर भागे जा रहे थे और हज़ारों आदमी पागलों की तरह टोपियाँ और पगड़ियाँ और छड़ियाँ उछाल रहे थे। कैसे यह कायापलट हुई, कोई समझ न सका।

मिर्ज़ा ने मेहता को गोद में उठा लिया और लिये हुए शामियाने तक आये। प्रत्येक मुख पर यह शब्द थे—डाक्टर साहब ने बाज़ी मार ली। और प्रत्येक आदमी इस हारी हुई बाज़ी के एकबारगी पलट जाने पर विस्मित था। सभी मेहता के जीवट और दम और धैर्य का बखान कर रहे थे।

मज़दूरों के लिए पहले से नारंगियाँ मँगा ली गई थीं। उन्हें एक-एक नारङ्गी

देकर बिदा किया गया। शामियाने में मेहमानों के चाय-पानी का आयोजन था। मेहता और मिर्ज़ा एक ही मेज़ पर आमने-सामने बैठे। मालती मेहता की बगल में बैठी।

मेहता ने कहा—मुझे आज एक नया अनुभव हुआ। महिला की सहानुभूति हार को जीत बना सकती है।

मिर्ज़ा ने मालती की ओर देखा—अच्छा! यह बात थी! जभी तो मुझे हैरत हो रही थी कि आप एकाएक कैसे ऊपर आ गये।

मालती शर्म से लाल हुई जाती थी। बोली—आप बड़े बेमुरौवत आदमी हैं मिर्ज़ाजी! मुझे आज मालूम हुआ।

'क़ुसुर इनका था। यह क्यों 'चीं' नहीं बोलते थे?'

'मैं तो 'चीं' न बोलता, चाहे आप मेरी जान ही ले लेते।'

कुछ देर मित्रों में गप-शप होती रही। फिर धन्यवाद के और मुबारकबाद के भाषण हुए और मेहमान लोग बिदा हुए। मालती को भी एक विज़िट करनी थी। वह भी चली गई। केवल मेहता और मिर्ज़ा रह गये। उन्हें अभी स्नान करना था। मिट्टी में सने हुए थे। कपड़े कैसे पहनते। गोबर पानी खींच लाया और दोनों दोस्त नहाने लगे।

मिर्ज़ा ने पूछा—शादी कब तक होगी?

मेहता ने अचम्भे में आकर पूछा—किसकी?

'आपकी।'

'मेरी शादी! किसके साथ हो रही है?'

'वाह! आप तो ऐसा उड़ रहे हैं, गोया यह भी छिपाने की बात है।'

'नहीं-नहीं, मैं सच कहता हूँ, मुझे बिलकुल खबर नहीं है। क्या मेरी शादी होने जा रही है?'

'और आप क्या समझते हैं, मिस मालती आपकी कम्पेनियन बनकर रहेंगी?'

मेहता गम्भीर-भाव से बोले—आपका क़याास बिलकुल ग़लत है मिर्ज़ाजी! मिस मालती हसीन हैं, खुशमिज़ाज हैं, समझदार हैं, रोशन-खयाल हैं; और भी उनमें कितनी ही खूबियाँ हैं। लेकिन मैं अपनी जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूँ, वह उनमें नहीं है और न शायद हो सकती है। मेरे ज़ेहन में औरत वफ़ा और त्याग

की मूर्ति है। जो अपनी बेज़बानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है; पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत ही से क्यों इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटायेगा, तो शून्य हो जायगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेजप्रधान जीव है, और अपने अहंकार में यह समझकर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान् है, शान्तिसम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं, तो वह कुल्टा हो जाती है। पुरुष आकर्षित होता है स्त्री की ओर, जो सर्वांश में स्त्री हो। मालती ने अभी तक मुझे आकर्षित नहीं किया। मैं आपसे किन शब्दों में कहूँ कि स्त्री मेरी नज़रों में क्या है। संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ, मैं उससे यह आशा रखता हूँ कि मैं उसे मार भी डालूँ, तो प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आये; अगर मैं उसकी आँखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूँ, तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी पाकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूँगा और उस पर अपने को अर्पण कर दूँगा।

मिर्ज़ा ने सिर हिलाकर कहा—ऐसी औरत आपको इस दुनिया में तो शायद ही मिले।

मेहता ने हाथ मारकर कहा—एक नहीं, हज़ारों; वरना दुनिया वीरान हो जाती।

'ऐसी एक ही मिसाल दीजिए।'

'मिसेज़ खन्ना ही को ले लीजिए।'

'लेकिन खन्ना!'

'खन्ना अभागे हैं, जो हीरा पाकर काँच का टुकड़ा समझ रहे हैं। सोचिए, कितना त्याग है और उसके साथ ही कितना प्रेम है। खन्ना के रूपासक्त मन में शायद उसके लिए रत्ती-भर स्थान भी नहीं है; लेकिन आज खन्ना पर कोई आफ़त आ जाय तो वह अपने को उन पर न्योछावर कर देगी। खन्ना आज अन्धे या कोढ़ी हो जायँ, तो भी उसकी वफ़ादारी में फ़र्क न आयेगा। अभी खन्ना उसकी क़द्र नहीं कर रहे हैं; मगर आप देखेंगे, एक दिन यही खन्ना उसके चरण धो-धोकर पियेंगे। मैं

ऐसी बीवी नहीं चाहता, जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धान्त पर बहस कर सकूँ, या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूँ, जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।'

ख़ुर्शेद ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए जैसे कोई भूली हुई बात याद करके कहा—आपका खयाल बहुत ठीक है मिस्टर मेहता। ऐसी औरत अगर कहीं मिल जाय, तो मैं भी शादी कर लूँ; लेकिन मुझे उम्मीद नहीं है कि मिले।

मेहता ने हँसकर कहा—आप भी तलाश में रहिए, मैं भी तलाश में हूँ। शायद कभी तक़दीर जागे।

'मगर मिस मालती आपको छोड़नेवाली नहीं। कहिए, लिख दूँ।'

'ऐसी औरतों से मैं केवल मनोरंजन कर सकता हूँ, ब्याह नहीं। ब्याह तो आत्म-समर्पण है।'

'अगर ब्याह आत्म-समर्पण है, तो प्रेम क्या है?'

'प्रेम जब आत्म-समर्पण का रूप लेता है, तभी ब्याह है, उसके पहले ऐयाशी है।'

मेहता ने कपड़े पहने और विदा हो गये। शाम हो गई थी। मिर्ज़ा ने जाकर देखा, तो गोबर अभी तक पेड़ों को सींच रहा था। मिर्ज़ा ने प्रसन्न होकर कहा—जाओ, अब तुम्हारी छुट्टी है। कल फिर आओगे?

गोबर ने कातर भाव से कहा—मैं कहीं नौकरी करना चाहता हूँ मालिक!

'नौकरी करना है, तो हम तुम्हें रख लेंगे।'

'कितना मिलेगा हजूर!'

'जितना तू माँगे।'

'मैं क्या माँगूँ। आप जो चाहे दे दें।'

'हम तुम्हें पन्द्रह रुपये देंगे और खूब कसकर काम लेंगे।'

गोबर मेहनत से नहीं डरता। उसे रुपये मिलें, तो वह आठों पहर काम करने को तैयार है। पन्द्रह रुपये मिलें, तो क्या पूछना। वह तो प्राण भी दे देगा।

बोला—मेरे लिए कोठरी मिल जाय, वहीं पड़ा रहूँगा।

'हाँ-हाँ, जगह का इन्तज़ाम मैं कर दूँगा। इसी झोंपड़े में एक किनारे तुम भी पड़ रहना।'

गोबर को जैसे स्वर्ग मिल गया।

१२

होरी की फ़सल सारी की सारी डाँड़ की भेंट हो चुकी थी। वैशाख तो किसी तरह कटा; मगर जेठ लगते-लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पाँच-पाँच पेट खानेवाले और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भर पेट न मिले, आधा पेट तो मिले। निराहार कोई कै दिन रह सकता है। उधार ले तो किससे। गाँव के सभी छोटे-बड़े महाजनों से तो मुँह चुराना पड़ता था। मजूरी भी करे, तो किसकी। जेठ में अपना ही काम ढेरों था। ऊख की सिंचाई लगी हुई थी; लेकिन खाली पेट मेहनत भी कैसे हो।

साँझ हो गई थी। छोटा बच्चा रो रहा था। माँ को भोजन न मिले, तो दूध कहाँ से निकले। सोना परिस्थिति समझती थी; मगर रूपा क्या समझे। बार बार रोटी-रोटी चिल्ला रही थी। दिन-भर तो कच्ची अमिया से जी बहला; मगर अब तो कोई ठोस चीज़ चाहिए। होरी दुलारी सहुआइन से अनाज उधार माँगने गया था; पर वह दूकान बन्द करके पैठ चली गई थी। मँगरू साह ने केवल इनकार ही न किया, लताड़ भी दी—उधार माँगने चले हैं, तीन साल से धेला सूद नहीं दिया, उस पर उधार दिये जाओ। अब आकबत में देंगे। खोटी नीयत हो जाती है, तो यही हाल होता है। भगवान् से भी यह अनीति नहीं देखी जाती। कारकुन की डाँट पड़ी, तो कैसे चुपके से रुपये उगल दिये। मेरे रुपये रुपये ही नहीं हैं। और मेहरिया है, उसका मिजाज ही नहीं मिलता।

वहाँ से रुआँसा होकर उदास बैठा था कि पुन्नी आग लेने आई। रसोई के द्वार पर जाकर देखा तो अँधेरा पड़ा हुआ था। बोली—आज रोटी नहीं बना रही हो क्या भाभीजी! अब तो बेला हो गई।

जब से गोबर भागा था, पुन्नी और धनिया में बोल-चाल हो गई थी। होरी का एहसान भी मानने लगी थी। हीरा को अब वह गालियाँ देती थी—हत्यारा गऊ-हत्या करके भागा! मुँह में कालिख लगी है, घर कैसे आये। और आये भी तो घर के अन्दर पाँव न रखने दूँ। गऊ-हत्या करते इसे लाज भी न आई। बहुत अच्छा होता, पुलिस बाँधकर ले जाती और चक्की पिसवाती।

धनिया कोई बहाना न कर सकी। बोली—रोटी कहाँ से बने, घर में दाना तो

है ही नहीं। तेरे महतो ने बिरादरी का पेट भर दिया, बाल-बच्चे मरें या जियें। अब बिरादरी झाँकती तक नहीं।

पुन्नी की फसल अच्छी हुई थी, और वह स्वीकार करती थी कि यह होरी का पुरुषार्थ है। हीरा के हाथ कभी इतनी बरकत न हुई थी।

बोली—अनाज मेरे घर से क्यों नहीं मँगवा लिया। वह भी तो महतो ही की कमाई है कि किसी और की। सुख के दिन आयें, तो लड़ लेना, दुख तो साथ रोने ही से कटता है। मैं क्या ऐसी अन्धी हूँ कि आदमी का दिल नहीं पहचानती। महतो ने न सँभला होता, तो आज मुझे कहाँ सरन मिलती।

वह उलटे पाँव लौटी और सोना को भी साथ लेती गई। एक क्षण में दो डल्ले अनाज से भरे लाकर आँगन में रख दिये। दो मन से कम जौ न था। धनिया अभी कुछ कहने न पाई थी कि वह फिर चल दी और एक क्षण में एक बड़ी-सी टोकरी अरहर की दाल से भरी हुई लाकर रख दी, और बोली—चलो, मैं आग जलाये देती हूँ।

धनिया ने देखा तो जौ के ऊपर एक छोटी-सी डलिया में चार-पाँच सेर आटा भी था। आज जीवन में पहली बार वह परास्त हुई। आँखों में प्रेम और कृतज्ञता के मोती भरकर बोली—सब-का-सब उठा लाई कि घर में भी कुछ छोड़ा? कहीं भागा जाता था!

आँगन में बच्चा खटोले पर पड़ा रो रहा था। पुनिया उसे गोद में लेकर दुलराती हुई बोली—तुम्हारी दया से अभी बहुत है भाभीजी! पन्द्रह मन तो जौ हुआ और दस मन गेहूँ। पाँच मन मटर हुआ, तुमसे क्या छिपाना है। दोनों का काम चल जायगा। दो तीन महीने में फिर मकई हो जायगी। आगे भगवान् मालिक हैं।

झुनिया ने आकर अंचल से छोटी सास के चरण छुए। पुनिया ने असीस दिया। सोना आग जलाने चली। रूपा ने पानी के लिए कलसा उठाया। रुकी हुई गाड़ी चल निकली। जल में अवरोध के कारण जो चक्कर था, फेन था, शोर था, गति की तीव्रता थी, वह अवरोध के हट जाने से शान्त, मधुर-ध्वनि के साथ सम, धीमी, एक-रस धार में बहने लगी।

पुनिया बोली—महतो को डाँड़ देने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी?

धनिया ने कहा—बिरादरी में सुरखरू कैसे होते?

'भाभी, बुरा न मानो, तो एक बात कहूँ ?'

'कह, बुरा क्यों मानूँगी ।'

'न कहूँगी; कहीं तुम बिगड़ने न लगो ?'

'कहती हूँ, कुछ न बोलूँगी, कह तो ।'

'तुम्हें झुनिया को घर में रखना न चाहिए था ।'

'तब क्या करती ? वह डूबी मरती थी ।'

'मेरे घर में रख देतीं । तब तो कोई कुछ न कहता ।'

'यह तो तू आज कहती है । उस दिन भेज देती, तो झाड़ू लेकर दौड़ती ।'

'इतने खरच में तो गोबर का ब्याह हो जाता ?'

'होनहार को कौन टाल सकता है पगली ! अभी इतने ही से गला नहीं छूटा । भोला अब अपनी गाय के दाम माँग रहा है । तब तो गाय दी थी कि मेरी सगाई कहीं ठीक कर दो । अब कहता है, मुझे सगाई नहीं करनी, मेरे रुपये दे दो । उसके दोनों बेटे लाठी लिये फिरते हैं । हमारे कौन बैठा है, जो उनसे लड़े ! इस सत्यानाशी गाय ने आकर घर चौपट कर दिया ।'

कुछ और बातें करके पुनिया आग लेकर चली गई । होरी सब कुछ देख रहा था । भीतर आकर बोला—पुनिया दिल की साफ है ।

'हीरा भी तो दिल का साफ था ?'

धनिया ने अनाज तो रख लिया था ; पर मन में लज्जित और अपमानित हो रही थी । यह दिनों का फेर है कि आज उसे यह नीचा देखना पड़ा ।

'तू किसी का औसान नहीं मानती, यही तुझमें बुराई है ।'

'औसान क्यों मानूँ । मेरा आदमी उसकी गिरस्ती के पीछे जान नहीं दे रहा है ? फिर मैंने दान थोड़े ही लिया है । उसका एक-एक दाना भर दूँगी ।'

मगर पुनिया अपनी जिठानी के मनोभाव समझकर भी होरी का एहसान चुकाती जाती थी । जब यहाँ अनाज चुक जाता, मन-दो-मन दे जाती ; मगर जब चौमासा आ गया और वर्षा न हुई, तो समस्या अत्यन्त जटिल हो गई । सावन का महीना आ गया था और बगूले उठ रहे थे । कुओं का पानी भी सूख गया था और ऊख ताप से जली जाती थी । नदी से थोड़ा-थोड़ा पानी मिलता था ; मगर उसके पीछे आये दिन लाठियाँ निकलती थीं । यहाँ तक कि नदी ने भी जवाब दे दिया । जगह-

जगह चोरियाँ होने लगीं, डाके पड़ने लगे। सारे प्रान्त में हाहाकार मच गया। बारे कुशल हुई कि भादों में वर्षा हो गई और किसानों के प्राण हरे हुए। कितना उछाह था, उस दिन। प्यासी पृथ्वी जैसे अघाती ही न थी और प्यासे किसान ऐसे उछल रहे थे, मानों पानी नहीं, अशर्फियाँ बरस रही हैं। बटोर लो, जितना बटोरते बने। खेतों में जहाँ बगूले उठते थे; वहाँ हल चलने लगे। बालवृन्द निकल-निकलकर तालावों और पोखरों और गड़हियों का मुआयना कर रहे थे। ओहो! तालाब तो आधा भर गया, और वहाँ से गढ़हिया की तरफ़ दौड़े।

मगर अब कितना ही पानी बरसे, ऊख तो बिदा हो गई। एक-एक हाथ की होके रह जायगी, मक्का और जुआर और कोदों से लगान थोड़े ही चुकेगा, महाजन का पेट थोड़े ही भरा जायगा। हाँ, चौओं के लिए चारा हो गया और आदमी जी गया!

जब माघ बीत गया और भोला के रुपये न मिले, तो एक दिन वह झल्लाया हुआ होरी के घर आ धमका और बोला—यही है तुम्हारा क़ौल। इसी मुँह से तुमने ऊख पेरकर मेरे रुपये देने का वादा किया था? अब तो ऊख पेर चुके। लाओ रुपये मेरे हाथ में!

होरी जब अपनी विपत्ति सुनाकर और सब तरह चिरौरी करके हार गया और भोला द्वार से न हटा, तो उसने झुँझलाकर कहा—तो महतो, इस बखत तो मेरे पास रुपये नहीं हैं और न मुझे कहीं उधार ही मिल सकते हैं। मैं कहाँ से लाऊँ। दाने-दाने की तंगी हो रही है। विश्वास न हो, घर में आकर देख लो। जो कुछ मिले, उठा ले जाओ।

भोला ने निर्मम भाव से कहा—मैं तुम्हारे घर में क्यों तलासी लेने जाऊँ और न मुझे इससे मतलब है कि तुम्हारे पास रुपये हैं या नहीं। तुमने ऊख पेरकर रुपये देने कहा था। ऊख पेर चुके। अब मेरे रुपये मेरे हवाले करो।

'तो फिर जो कहो, वह करूँ?'

'मैं क्या कहूँ।'

'मैं तुम्हीं पर छोड़ता हूँ।'

'मैं तुम्हारे दोनों बैल खोल ले जाऊँगा!'

होरी ने उसकी ओर विस्मय-भरी मानों अपने कानों पर

विश्वास न आया हो। फिर हतबुद्धि-सा सिर झुकाकर रह गया। भोला क्या उसे भिखारी बनाकर छोड़ देना चाहता है? दोनों बैल चले गये, तब तो उसके दोनों हाथ ही कट जायँगे।

दीन स्वर में बोला—दोनों बैल ले लोगे, तो मेरा सर्वनाश हो जायगा। अगर तुम्हारा धरम यही कहता है, तो खोल ले जाओ!

'तुम्हारे बनने-बिगड़ने की मुझे परवा नहीं है। मुझे अपने रुपये चाहिए।'

'और जो मैं कह दूँ, मैंने रुपये दे दिये?'

भोला सन्नाटे में आ गया। उसे भी अपने कानों पर विश्वास न आया। होरी इतनी बड़ी बेईमानी कर सकता है, यह सम्भव नहीं!

उग्र होकर बोला—अगर तुम हाथ में गङ्गाजली लेकर कह दो कि मैंने रुपये दे दिये, तो सबर कर लूँगा।

'कहने का मन तो चाहता है, मरता क्या न करता; लेकिन कहूँगा नहीं।'

'तुम कह ही नहीं सकते।'

'हाँ भैया, मैं नहीं कह सकता। हँसी कर रहा था।'

एक क्षण तक वह दुबिधे में पड़ा रहा। फिर बोला—तुम मुझसे इतना बैर क्यों पाल रहे हो भोला! झुनिया मेरे घर में आ गई, तो मुझे कौन सा सरग मिल गया। लड़का अलग हाथ से गया। दो सौ रुपया डाँड़ अलग भरना पड़ा। मैं तो कहीं का न रहा। और अब तुम भी मेरी जड़ खोद रहे हो। भगवान् जानते हैं, मुझे बिलकुल न मालूम था कि लौंडा क्या कर रहा है। मैं तो समझता था, गाना सुनने जाता होगा। मुझे तो उस दिन पता चला, जब आधी रात को झुनिया घर में आ गई। उस बखत मैं घर में न रखता, तो सोचो, कहाँ जाती। किसकी होकर रहती!

झुनिया बरौठे के द्वार पर छिपी खड़ी यह बातें सुन रही थी। बाप को अब वह बाप नहीं, शत्रु समझती थी। डरी, कहीं होरी बैलों को दे न दें। जाकर रूपा से बोली—अम्माँ को जल्दी से बुला ला। कहना, बड़ा काम है, बिलम न करो।

धनिया खेत में गोबर फेंकने गई थी। बहू का सन्देश सुना, तो आकर बोली—काहे को बुलाया बहू, मैं तो घबड़ा गई।

'काका को तुमने देखा है न?'

'हाँ देखा, कसाई की तरह द्वार पर बैठा हुआ है। मैं तो बोली भी नहीं।'

'हमारे दोनों बैल माँग रहे हैं दादा से।'

धनिया के पेट की आँतें भीतर सिमट गईं।

'दोनों बैल माँग रहे हैं!'

'हाँ, कहते हैं, या तो हमारे रुपये दो, या हम दोनों बैल खोल ले जायँगे।'

'तेरे दादा ने क्या कहा?'

'उन्होंने कहा, तुम्हारा धरम कहता हो, तो खोल ले जाओ।'

'तो खोल ले जाय; लेकिन इसी द्वार पर आकर भीख न माँगे तो मेरे नाम पर थूक देना। हमारे लहू से उसकी छाती जुड़ाती हो, तो जुड़ा ले।'

वह इसी तैश में बाहर आकर होरी से बोली—महतो दोनों बैल माँग रहे हैं, तो दे क्यों नहीं देते? उनका पेट भरे, हमारे भगवान् मालिक हैं। हमारे हाथ तो नहीं काट लेंगे? अब तक अपनी मजूरी करते थे, अब दूसरों की मजूरी करेंगे। भगवान् की मरजी होगी, तो फिर बैल बधिये हो जायँगे, और मजूरी ही करते रहे, तो कौन बुराई है। बूड़े-सूखे और पोत लगान का बोझ तो न रहेगा। मैं न जानती थी, यह हमारे बैरी हैं, नहीं गाय लेकर अपने सिर पर बिपत क्यों लेती। उस निगोड़ी का पौरा जिस दिन से आया, घर तहस-नहस हो गया।

भोला ने अब तक जिस शस्त्र को छिपा रखा था, अब उसे निकालने का अवसर आ गया। उसे विश्वास हो गया, बैलों के सिवा इन सबों के पास कोई अवलम्ब नहीं है। बैलों को बचाने के लिए ये लोग सब कुछ करने को तैयार हो जायँगे। अच्छे निशानेबाज़ की तरह मन को साधकर बोला—अगर तुम चाहते हो कि हमारी बेइज्जती हो और तुम चैन से बैठो, तो यह न होगा। तुम अपने दो सौ को रोते हो। यहाँ लाख रुपये की आबरू बिगड़ गई। तुम्हारी कुसल इसी में है कि जैसे झुनिया को घर में रखा था, वैसे ही उसे घर से निकाल दो, फिर न हम बैल माँगेंगे, न गाय का दाम माँगेंगे। उसने हमारी नाक कटवाई है, तो मैं भी उसे ठोकरें खाते देखना चाहता हूँ। वह यहाँ रानी बनी बैठी रहे, और हम मुँह में कालिख लगाये उसके नाम को रोते रहें, यह मैं नहीं देख सकता। वह मेरी बेटी है, मैंने उसे गोद में खिलाया है, और भगवान् साखी हैं, मैंने उसे कभी बेटों से कम नहीं समझा; लेकिन आज उसे भीख माँगते और घूर पर दाने चुनते देखकर मेरी छाती सीतल हो जायगी। जब बाप होकर मैंने अपना हिरदा इतना कठोर बना लिया है, तब सोचो, मेरे दिल पर

कितनी बड़ी चोट लगी होगी। इस मुँहजली ने सात पुस्त का नाम डुबा दिया। और तुम उसे घर में रखे हुए हो, यह मेरी छाती पर मूँग दलना नहीं तो और क्या है।

धनिया ने जैसे पत्थर की लकीर खींचते हुए कहा—तो महतो, मेरी भी सुन लो। जो बात तुम चाहते हो, वह न होगी, सौ जनम न होगी। झुनिया हमारी जान के साथ है। तुम बैल ही तो ले जाने कहते हो, ले जाओ; अगर इससे तुम्हारी कटी हुई नाक जुड़ती हो, तो जोड़ लो, पुरखों की आबरू बचती हो, तो बचा लो। झुनिया से बुराई ज़रूर हुई। जिस दिन उसने मेरे घर में पाँव रखा, मैं झाड़ू लेकर मारने उठी थी; लेकिन जब उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे, तो मुझे उस पर दया आ गई। तुम अब बूढ़े हो गये महतो! पर आज भी तुम्हें सगाई की धुन सवार है। फिर वह तो अभी बच्चा है।

भोला ने अपील भरी आँखों से होरी को देखा—सुनते हो होरी इसकी बातें! अब मेरा दोस नहीं। मैं बिना बैल लिये न जाऊँगा!

होरी ने दृढ़ता से कहा—ले जाओ।

'फिर रोना मत कि मेरे बैल खोल ले गये!'

'नहीं रोऊँगा।'

भोला बैलों की पगहिया खोल ही रहा था कि झुनिया चकतियोंदार साड़ी पहने, बच्चे को गोद में लिये, निकलकर बाहर आई और कम्पित-स्वर में बोली—काका, लो, इस घर से मैं निकल जाती हूँ और जैसी तुम्हारी मनोकामना है, उसी तरह भीख माँगकर अपना और बच्चे का पेट पालूँगी, और जब भीख भी न मिलेगी, तो कहीं डूब मरूँगी।

भोला खिसियाकर बोला—दूर हो मेरे सामने से। भगवान् न करे मुझे फिर तेरा मुँह देखना पड़े। कुलच्छनी, कुलकलंकिनी कहीं की। अब तेरे लिए डूब मरना ही उचित है।

झुनिया ने उसकी ओर ताका भी नहीं। उसमें वह क्रोध था, जो अपने को खा जाना चाहता है, जिसमें हिंसा नहीं, आत्म-समर्पण है। धर्ती इस वक्त मुँह खोलकर उसे निगल लेती, तो वह कितना धन्य मानती। उसने आगे क़दम उठाया।

लेकिन वह दो क़दम भी न गई थी कि धनिया ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और हिंसा-भरे स्नेह से बोली—तू कहाँ जाती है बहू, चल घर में। यह तेरा घर

है, हमारे जीते भी और हमारे मरने के पीछे भी। डूब मरे वह, जिसे अपनी सन्तान से बैर हो। इस भले आदमी को मुँह से ऐसी बात कहते लाज भी नहीं आती। मुझ पर धौंस जमाता है नीच! ले जा, बैलों का रकत पी...

झुनिया रोती हुई बोली—अम्माँ, जब अपना बाप होके मुझे धिक्कार रहा है, तो मुझे डूब ही मरने दो। मुझ अभागिनी के कारन तो तुम्हें दुख ही मिला। जब से आई, तुम्हारा घर मिट्टी में मिल गया। तुमने इतने दिन मुझे जिस परेम से रखा, माँ भी न रखती। भगवान् मुझे फिर जनम दें, तो तुम्हारी कोख से दें, यही मेरी अभिलाखा है।

धनिया उसको अपनी ओर खींचती हुई बोली—वह तेरा बाप है! तेरा बैरी है, हत्यारा। माँ होती, तो अलबत्ते उसे कलंक होता। ला सगाई! मेहरिया जूतों से न पीटे, तो कहना!

झुनिया सास के पीछे-पीछे घर में चली गई। उधर भोला ने जाकर दोनों बैलों को खूँटों से खोला और हाँफता हुआ घर चला, जैसे किसी नेवते में आकर पूरियों के बदले जूते पड़े हों। अब करो खेती और बजाओ बंसी! मेरा अपमान करना चाहते हैं सब, न जाने कब का बैर निकाल रहे हैं, नहीं ऐसी लड़की को कौन भला आदमी अपने घर में रखेगा। सब-के-सब बेसरम हो गये हैं। लौंडे का कहीं ब्याह न होता था इसी से। और इस राँड़ झुनिया की ढिठाई देखो कि आकर मेरे सामने खड़ी हो गई। दूसरी लड़की होती, तो मुँह न दिखाती। आँख का पानी मर गया है। सब-के-सब दुष्ट और मूरख भी हैं। समझते हैं, झुनिया अब हमारी हो गई। यह नहीं समझते, जो अपने बाप के घर न रही, वह किसी के घर नहीं रहेगी। समय खराब है, नहीं बीच बजार में इस चुड़ैल धनिया के झोंटे पकड़कर घसीटता। मुझे कितनी गालियाँ देती थी।

फिर उसने दोनों बैलों को देखा, कितने तैयार हैं। अच्छी जोड़ी है। जहाँ चाहूँ, सौ रुपये में बेच सकता हूँ। मेरे अस्सी रुपये खरे हो जायँगे।

अभी वह गाँव के बाहर भी न निकला था कि पीछे से दातादीन, पटेश्वरी, शोभा और दस-बीस आदमी और दौड़े आते दिखाई दिये। भोला का लहू सर्द हो गया। अब फ़ौजदारी हुई, बैल भी छिन जायँगे, मार भी पड़ेगी। वह रुक गया कमर कस-कर। मरना ही है तो लड़कर मरेगा।

दातादीन ने समीप आकर कहा—यह तुमने क्या अनर्थ किया भोला, ऐं! उसके बैल खोल लाये, वह कुछ बोला नहीं, इसी से सेर हो गये। सब लोग अपने-अपने काम में लगे थे, किसी को खबर भी न हुई। होरी ने जरा-सा इसारा कर दिया होता, तो तुम्हारा एक-एक बाल नुच जाता। भला चाहते हो, तो ले चलो बैल, जरा भलमसी नहीं है तुममें?

पटेश्वरी बोले—यह उसके सीधेपन का फल है। तुम्हारे रुपये उस पर आते हैं, तो जाकर दिवानी में दावा करो, डिग्री कराओ। बैल खोल लाने का तुम्हें क्या अख्तियार है। अभी फ़ौजदारी में दावा कर दे, तो बँधे-बँधे फिरो।

भोला ने दबकर कहा—तो लाला साहब, हम कुछ जबरस्ती थोड़े ही खोल लाये। होरी ने खुद दिये।

पटेश्वरी ने शोभा से कहा—तुम बैलों को लौटा दो शोभा! किसान अपने बैल खुशी से देगा, तो इन्हें हल में जोतेगा!

भोला बैलों के सामने खड़ा हो गया—हमारे रुपये दिलवा दो, हमें बैलों को लेकर क्या करना है।

'हम बैल लिये जाते हैं, अपने रुपये के लिए दावा करो और नहीं तो मारकर गिरा दिये जाओगे। रुपये दिये थे नगद तुमने? एक कुलच्छनी गाय बेचारे के सिर मढ़ दी और अब उसके बैल खोल लिये जाते हैं।'

भोला बैलों के सामने से न हटा। खड़ा रहा गुमसुम, दृढ़, मानों मरकर ही हटेगा। पटवारी से दलील करके वह कैसे पेश पाता।

दातादीन ने एक क़दम आगे बढ़कर अपनी झुकी कमर को सीधा करके ललकारा—तुम सब खड़े ताकते क्या हो, मारके भगा दो इसको। हमारे गाँव से बैल खोल ले जायगा?

वंशी बलिष्ट युवक था। उसने भोला को ज़ोर से धक्का दिया। भोला सँभल न सका, गिर पड़ा। उठना चाहता था कि वंशी ने फिर एक घूँसा दिया।

होरी दौड़ता हुआ आ रहा था। भोला ने उसकी ओर दस कदम बढ़कर पूछा—ईमान से कहना होरी महतो, मैंने बैल जबरदस्ती खोल लिये?

दातादीन ने इसका भावार्थ किया—यह कहते हैं कि होरी ने अपनी ख़ुशी से बैल मुझे दे दिये। हमीं को उल्लू बनाते हैं।

होरी ने सकुचाते हुए कहा—यह मुझसे कहने लगे, या तो झुनिया को घर से निकाल दो, या मेरे रुपये दो, नहीं तो मैं बैल खोल ले जाऊँगा। मैंने कहा, मैं बहू को तो न निकालूँगा, न मेरे पास रुपये हैं; अगर तुम्हारा धरम कहे, तो बैल खोल लो। बस मैंने इनके धरम पर छोड़ दिया और इन्होंने बैल खोल लिये।

पटेश्वरी ने मुँह लटकाकर कहा—जब तुमने धरम पर छोड़ दिया, तब काहे की ज़बरदस्ती। उसके धरम ने कहा, लिये जाता है। ले जाओ भैया, बैल तुम्हारे हैं।

दातादीन ने समर्थन किया—हाँ, जब धरम की बात आ गई, तो कोई क्या कहे। सब-के-सब होरी को तिरस्कार की आँखों से देखते, परास्त होकर लौट पड़े, और विजयी भोला शान से गर्दन उठाये बैलों को ले चला।

१३

राय साहब को जब खबर मिली कि इलाक़े में एक वारदात हो गई है और होरी से गाँव के पंचों ने जुरमाना वसूल कर लिया है, तो फ़ौरन नोखेराम को बुलाकर जवाब तलब किया—क्यों उन्हें इसकी इत्तला नहीं दी गई। ऐसे नमकहराम और दग़ाबाज़ आदमी के लिए उनके दरबार में जगह नहीं है।

नोखेराम ने इतनी गालियाँ खाईं, तो ज़रा गर्म होकर बोले—मैं अकेला थोड़ा ही था। गाँव के और पंच भी तो थे। मैं अकेला क्या कर लेता।

राय साहब ने उनकी तोंद की तरफ भाले जैसी नुकीली दृष्टि से देखा—मत बको जी! तुम्हें उसी वक्त कहना चाहिए था। जब तक सरकार को इत्तला न हो जाय, मैं पंचों को जुरमाना न वसूल करने दूँगा। पंचों को मेरे और मेरी रिआया के बीच में दखल देने का हक़ क्या है। इस डाँड़-बाँध के सिवा इलाक़े में और कौन-सी आमदनी है। वसूली सरकार के घर गई। बक़ाया असामियों ने दबा लिया। तब मैं कहाँ जाऊँ? क्या खाऊँ, तुम्हारा सिर! यह लाखों रुपये साल का खर्च कहाँ से आये। खेद है कि दो पुश्तों से कारिन्दगीरी करने पर भी मुझे यह बात बतलानी पड़ती है। कितने रुपये वसूल हुए थे होरी से?

नोखेराम ने सिटपिटाकर कहा—अस्सी रुपये।

'नक़द?'

'नक़द उसके पास कहाँ थे हुज़ूर! कुछ अनाज दिया, बाक़ी में अपना घर लिख दिया।'

राय साहब ने स्वार्थ का पक्ष छोड़कर होरी का पक्ष लिया—अच्छा तो आपने और बगुलाभगत पंचों ने मिलकर मेरे एक मातबर असामी को तबाह कर दिया। मैं पूछता हूँ, तुम लोगों को क्या हक़ था कि मेरे इलाके में मुझे इत्तला दिये बग़ैर मेरे असामी से जुरमाना वसूल करते। इसी बात पर अगर मैं चाहूँ, तो आपको और उस जालिये पटवारी और उस धूर्त पण्डित को सात-सात साल के लिए जेल भिजवा सकता हूँ। आपने समझ लिया कि आप ही इलाके के बादशाह हैं। मैं कहे देता हूँ, आज शाम तक जुरमाने की पूरी रक़म मेरे पास पहुँच जाय; वरना बुरा होगा। मैं एक-एक से चक्की पिसवाकर छोड़ूँगा। जाइए। हाँ, होरी को और उसके लड़के को मेरे पास भेज दीजिएगा।

नोखेराम ने दबी ज़बान से कहा—उसका लड़का तो गाँव छोड़कर भाग गया। जिस रात को यह वारदात हुई, उसी रात को भागा।

राय साहब ने रोष से कहा—झूठ मत बोलो। तुम्हें मालूम है, झूठ से मेरे बदन में आग लग जाती है। मैंने आज तक कभी नहीं सुना कि कोई युवक अपनी प्रेमिका को उसके घर से लाकर फिर खुद भाग जाय। अगर उसे भागना ही होता, तो वह उस लड़की को लाता क्यों? तुम लोगों की इसमें भी जरूर कोई शरारत है। तुम गंगा में डूबकर भी अपनी सफाई दो, तो मानने का नहीं। तुम लोगों ने अपने समाज की प्यारी मर्यादा की रक्षा के लिए उसे धमकाया होगा। बेचारा भाग न जाता, तो क्या करता!

नोखेराम इसका प्रतिवाद न कर सके। मालिक जो कुछ कहें वह ठीक है। वह यह भी न कह सके कि आप ख़ुद चलकर झूठ-सच की जाँच कर लें। बड़े आदमियों का क्रोध पूरा समर्पण चाहता है। अपने खिलाफ़ एक शब्द भी नहीं सुन सकता।

पंचों ने राय साहब का यह फ़ैसला सुना, तो नशा हिरन हो गया। अनाज तो अभी तक ज्यों-का-त्यों पड़ा था; पर रुपये तो कब के गायब हो गये। होरी का मकान रेहन लिखा गया था; पर उस मकान को देहात में कौन पूछता था। जैसे हिन्दू-स्त्री पति के साथ घर की स्वामिनी है, और पति त्याग दे, तो कहीं की नहीं रहती, उसी तरह यह घर होरी के लिए तो लाख रुपये का है; पर उसकी असली क़ीमत

कुछ भी नहीं। और इधर राय साहब बिना रुपये लिये मानने के नहीं। यही होरी जाकर रो आया होगा। पटेश्वरीलाल सबसे ज्यादा भयभीत थे। उनकी तो नौकरी ही चली जायगी। चारों सज्जन इस गहन समस्या पर विचार कर रहे थे; पर किसी की अक्ल काम न करती थी। एक दूसरे पर दोष रखता था। फिर ख़ूब झगड़ा हुआ।

पटेश्वरी ने अपनी लम्बी शकाशील गर्दन हिलाकर कर कहा—मैं मना करता था कि होरी के विषय में हमें चुप्पी साधकर रह जाना चाहिए। गाय के मामले में सबको तावान देना पड़ा। इस मामले में तावान ही से गला न छूटेगा, नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा; मगर तुम लोगों को रुपये की पड़ी थी। निकालो बीस-बीस रुपये। अब भी कुशल है। कहीं राय साहब ने रपट कर दी, तो सब जने बँध जाओगे।

दातादीन ने ब्रह्मतेज दिखाकर कहा—मेरे पास बीस रुपये की जगह बीस पैसे भी नहीं हैं। बाम्हनों को भोज दिया गया, होम हुआ। क्या इसमें कुछ खरच ही नहीं हुआ? राय साहब की हिम्मत है कि मुझे जेहल ले जायँ? ब्रह्म बनकर घर का घर मिटा दूँगा। अभी उन्हें किसी ब्राह्मण से पाला नहीं पड़ा।

झिंगुरीसिंह ने भी कुछ इसी आशय के शब्द कहे। वह राय साहब के नौकर नहीं हैं। उन्होंने होरी को मारा नहीं, पीटा नहीं; कोई दवाब नहीं डाला। होरी अगर प्रायश्चित्त करना चाहता था, तो उन्होंने इसका अवसर दिया। इसके लिए कोई उन पर अपराध नहीं लगा सकता; मगर नोखेराम की गर्दन इतनी आसानी से न छूट सकती थी। यहाँ मजे से बैठे राज करते थे। वेतन तो दस रुपये से ज्यादा न था; पर एक हज़ार साल की ऊपर की आमदनी थी, सैकड़ों आदमियों पर हुकूमत, चार-चार प्यादे हाज़िर, बेगार में सारा काम हो जाता था, थानेदार तक कुरसी देते थे। यह चैन उन्हें और कहाँ था। और पटेश्वरी तो नौकरी की बदौलत महाजन बने हुए थे। कहाँ जा सकते थे। दो-तीन दिन इसी चिन्ता में पड़े रहे कि कैसे इस विपत्ति से निकलें। आखिर उन्हें एक मार्ग सूझ हो गया। कभी-कभी कचहरी में उन्हें दैनिक 'बिजली' देखने को मिल जाती थी। यदि एक गुमनाम पत्र उसके सम्पादक की सेवा में भेज दिया जाय कि राय साहब किस तरह असामियों से जुरमाना वसूल करते हैं, तो बचा को लेने के देने पड़ जायँ। नोखेराम भी सहमत हो गये। दोनों ने मिलकर किसी तरह एक पत्र लिखा और रजिस्ट्री कराके भेज दिया।

सम्पादक ओंकारनाथ तो ऐसे पत्रों की ताक में रहते थे। पत्र पाते ही तुरन्त

राय साहब को सूचना दी। उन्हें एक ऐसा समाचार मिला है, जिस पर विश्वास करने की उनकी इच्छा नहीं होती; पर सम्वाददाता ने ऐसे प्रमाण दिये हैं कि सहसा अविश्वास भी नहीं किया जा सकता। क्या यह सच है कि राय साहब ने अपने इलाक़े के एक असामी से अस्सी रुपये तावान इसलिए वसूल किये कि उसके पुत्र ने एक विधवा को घर में डाल लिया था? सम्पादक का कर्तव्य उन्हें मजबूर करता है कि वह इस मुआमले की जाँच करें और जनता के हितार्थ उसे प्रकाशित कर दें। राय साहब इस विषय में जो कुछ कहना चाहें, सम्पादकजी उसे भी प्रकाशित कर देंगे। सम्पादकजी दिल से चाहते हैं कि यह खबर ग़लत हो; लेकिन उसमें कुछ भी सत्य हुआ, तो वह उसे प्रकाश में लाने के लिए विवश हो जायँगे। मैत्री उन्हें कर्तव्य-पथ से नहीं हटा सकती।

राय साहब ने यह सूचना पाई, तो सिर पीट लिया। पहले तो उनको ऐसी उत्तेजना हुई कि जाकर ओंकारनाथ को गिनकर पचास हंटर जमायें और कह दें,' जहाँ वह पत्र छापना वहाँ यह समाचार भी छाप देना; लेकिन इसका परिणाम सोच-कर मन को शान्त किया। और तुरन्त उनसे मिलने चले। अगर देर की, और ओंकारनाथ ने वह सम्वाद छाप दिया, तो उनके सारे यश में कालिमा पुत जायगी।

ओंकारनाथ सैर करके लौटे थे और आज के पत्र के लिए सम्पादकीय लेख लिखने की चिन्ता में बैठे हुए थे; पर मन पक्षी की भाँति उड़ा-उड़ा फिरता था। उनकी धर्मपत्नी ने रात में उन्हें कुछ ऐसी बातें कह डाली थीं, जो अभी तक काँटों की तरह चुभ रही थीं। उन्हें कोई दरिद्र कह ले, अभागा कह ले, बुद्धू कह ले, वह ज़रा भी बुरा न मानते थे; लेकिन यह कहना कि उनमें पुरुषत्व नहीं है, यह उनके लिए असह्य था। और फिर अपनी पत्नी को यह कहने का क्या हक़ है? उससे तो यह आशा की जाती है कि कोई इस तरह का आक्षेप करे, तो उसका मुँह बन्द कर दे। बेशक वह ऐसी खबरें नहीं छापते, ऐसी टिप्पणियाँ नहीं करते कि सिर पर कोई आफ़त आ जाय। फूँक-फूँककर क़दम रखते हैं। इन काले क़ानूनों के युग में वह और कर ही क्या सकते हैं; मगर वह क्यों साँप के बिल में हाथ नहीं डालते! इसीलिए तो कि उनके घरवालों को कष्ट न उठाने पड़ें। और उनकी इस सहिष्णुता का उन्हें यह पुरस्कार मिल रहा है। क्या अन्धेर है? उनके पास रुपये नहीं हैं, तो बना-रसी साड़ी कैसे मँगा दें? डाक्टर सेठ और प्रोफेसर भाटिया और न जाने किस-किस

की स्त्रियाँ बनारसी साड़ी पहनती हैं, तो वह क्या करें ? क्यों उनकी पत्नी इन साड़ी-वालियों को अपनी खद्दर की साड़ी से लज्जित नहीं करती ? उनकी ख़ुद तो यह आदत है कि किसी बड़े आदमी से मिलने जाते हैं, तो मोटे-से-मोटे कपड़े पहन लेते हैं और कोई कुछ आलोचना करे तो उसका मुँहतोड़ जवाब देने को तैयार रहते हैं। उनकी पत्नी में क्यों वही आत्माभिमान नहीं है ? वह क्यों दूसरों का ठाट-बाट देखकर विचलित हो जाती है ? उसे समझना चाहिए कि वह एक देश-भक्त पुरुष की पत्नी है। देश-भक्त के पास अपनी भक्ति के सिवा और क्या सम्पत्ति है। इसी विषय को आज के अग्रलेख का विषय बनाने की कल्पना करते-करते उनका ध्यान राय साहब के मुआमले की ओर जा पहुँचा। राय साहब सूचना का क्या उत्तर देते हैं, यह देखना है। अगर वह अपनी सफ़ाई देने में सफल हो जाते हैं, तब तो कोई बात नहीं; लेकिन अगर वह यह समझें कि ओंकारनाथ दबाव, भय, या मुलाहज़े में आकर अपने कर्तव्य से मुँह फेर लेंगे तो यह उनका भ्रम है। इस सारे तप और साधना का पुरस्कार उन्हें इसके सिवा और क्या मिलता है कि अवसर पड़ने पर वह इन क़ानूनी डकैतों का भण्डा-फोड़ करें। उन्हें ख़ूब मालूम है कि राय साहब बड़े प्रभावशाली जीव हैं। कौंसिल के मेम्बर तो हैं ही, अधिकारियों में भी उनका काफ़ी रसूख है। वह चाहें, तो उन पर झूठे मुक़दमे चलवा सकते हैं। अपने गुण्डों से राह चलते पिटवा सकते हैं; लेकिन ओंकार इन बातों से नहीं डरता। जब तक उसकी देह में प्राण है, वह आततायियों की ख़बर लेता रहेगा।

सहसा मोटरकार की आवाज़ सुनकर वह चौंके। तुरन्त कागज़ लेकर अपना लेख आरम्भ कर दिया। और एक ही क्षण में राय साहब ने उनके कमरे में क़दम रखा।

ओंकारनाथ ने न उनका स्वागत किया, न कुशल क्षेम पूछा, न कुरसी दी। उन्हें इस तरह देखा, मानों कोई मुलज़िम उनकी अदालत में आया हो और रोब मिले हुए स्वर में पूछा—आपको मेरा पुरज़ा मिल गया था ? मैं वह पत्र लिखने के लिए बाध्य नहीं था, मेरा कर्तव्य यह था कि स्वयं उसकी तहक़ीक़ात करता; लेकिन मुरौवत में सिद्धान्तों की कुछ न कुछ हत्या करनी ही पड़ती है। क्या उस संवाद में कुछ सत्य है ?

राय साहब उसका सत्य होना अस्वीकार न कर सके। हालाँकि अभी तक उन्हें

जुरमाने के रुपये नहीं मिले थे और वह उसके पाने से साफ इनकार कर सकते थे; लेकिन वह देखना चाहते थे कि यह महाशय किस पहलू पर चलते हैं।

ओंकारनाथ ने खेद प्रकट करते हुए कहा—तब तो मेरे लिए उस सम्वाद को प्रकाशित करने के सिवा और कोई मार्ग नहीं है। मुझे इसका दुःख है कि मुझे अपने एक परम हितैषी मित्र की आलोचना करनी पड़ रही है; लेकिन कर्तव्य के आगे व्यक्ति कोई चीज़ नहीं। सम्पादक अगर अपना कर्तव्य न पूरा कर सके, तो उसे इस आसन पर बैठने का कोई हक़ नहीं है।

राय साहब कुरसी पर डट गये और पान की गिलौरियाँ मुँह में भरकर बोले—लेकिन यह आपके हक़ में अच्छा न होगा। मुझे जो कुछ होना है, पीछे होगा, आपको तत्काल दण्ड मिल जायगा; अगर आप मित्रों की परवा नहीं करते, तो मैं भी उसी कैंड़े का आदमी हूँ।

ओंकारनाथ ने शहीद का गौरव धारण करके कहा—इसका तो मुझे कभी भय नहीं हुआ। जिस दिन मैंने पत्र-सम्पादन का भार लिया, उसी दिन प्राणों का मोह छोड़ दिया, और मेरे समीप एक सम्पादक की सबसे शानदार मौत यही है कि वह न्याय और सत्य की रक्षा करता हुआ अपना बलिदान कर दे।

'अच्छी बात है। मैं आपकी चुनौती स्वीकार करता हूँ। मैं अब तक आपको अपना मित्र समझता आया था; मगर अब आप लड़ने ही पर तैयार हैं, तो लड़ाई ही सही। आखिर मैं आपके पत्र का पँचगुना चन्दा क्यों देता हूँ? केवल इसीलिए कि वह मेरा गुलाम बना रहे। मुझे परमात्मा ने रईस बनाया है। आपके बनाने से नहीं बना हूँ। साधारण चन्दा पन्द्रह रुपया है। पचहत्तर रुपया देता हूँ; इसीलिए कि आपका मुँह बन्द रहे। जब आप घाटे का रोना रोते हैं और सहायता की अपील करते हैं, और ऐसी शायद ही कोई तिमाही जाती हो, जब आपकी अपील न निकलती हो, तो मैं ऐसे हर मौक़े पर आपकी कुछ न कुछ मदद कर देता हूँ। किसलिए? दीपावली, दशहरा, होली में आपके यहाँ बैना भेजता हूँ, और साल में पचीस बार आपकी दावत करता हूँ। किसलिए? आप रिश्वत और कर्तव्य दोनों साथ-साथ नहीं निभा सकते।'

ओंकारनाथ उत्तेजित होकर बोले—मैंने कभी रिश्वत नहीं ली।

राय साहब ने फटकारा—अगर यह व्यवहार रिश्वत नहीं है, तो रिश्वत क्या है? ज़रा मुझे समझा दीजिए। क्या आप समझते हैं, आपको छोड़कर और सभी गधे

हैं, जो निःस्वार्थ भाव से आपका घाटा पूरा करते हैं? निकालिए अपनी बही और बतलाइए, अब तक आपको मेरी रियासत से कितना मिल चुका है। मुझे विश्वास है, हज़ारों की रक़म निकलेगी; अगर आपको स्वदेशी-स्वदेशी चिल्लाकर विदेशी दवाओं और वस्तुओं का विज्ञापन छापते शर्म नहीं आती, तो मैं क्यों अपने असामियों से डाँड़ और तावान और जुर्माना लेते शरमाऊँ? यह न समझिए कि आप ही किसानों के हित का बीड़ा उठाये हुए हैं। मुझे किसानों के साथ जलना-मरना है, मुझसे बढ़कर दूसरा उनका हितेच्छु नहीं हो सकता; लेकिन मेरी गुज़र कैसे हो! अफ़सरों को दावतें कहाँ से दूँ, सरकारी चन्दे कहाँ से दूँ, खानदान के सैकड़ों आदमियों की ज़रूरतें कैसे पूरी करूँ! मेरे घर का क्या खर्च है, यह शायद आप जानते हैं। तो क्या मेरे घर में रुपये फलते हैं? आयेगा तो असामियों ही के घर से। आप समझते होंगे, ज़मीन्दार और ताल्लुकेदार सारे संसार का सुख भोग रहे हैं। उनकी असली हालत का आपको ज्ञान नहीं; अगर वह धर्मात्मा बनकर रहें, तो उनका ज़िन्दा रहना मुश्किल हो जाय। अफ़सरों को डालियाँ न दें, तो जेलखाना घर हो जाय। हम बिच्छू नहीं हैं कि अनायास ही सबको डंक मारते फिरें। न ग़रीबों का गला दबाना कोई बड़े आनन्द का काम है; लेकिन मर्यादाओं का पालन तो करना ही पड़ता है। जिस तरह आप मेरी रईसी का फायदा उठाना चाहते हैं, उसी तरह और सभी हमें सोने की मुर्गी समझते हैं। आइए मेरे बँगले पर तो दिखाऊँ कि सुबह से शाम तक कितने निशाने मुझ पर पड़ते हैं। कोई काश्मीर से शाल-दुशाले लिये चला आ रहा है, कोई इत्र और तम्बाकू का एजेंट है, कोई पुस्तकों और पत्रिकाओं का, कोई जीवन बीमे का, कोई ग्रामोफोन लिये सिर पर सवार है, कोई कुछ। चन्देवाले तो अनगिनती। क्या सबके सामने अपना दुखड़ा लेकर बैठ जाऊँ? ये लोग मेरे द्वार पर दुखड़ा सुनने आते हैं? आते हैं मुझे उल्लू बनाकर मुझसे कुछ ऐंठने के लिए। आज मर्यादा का विचार छोड़ दूँ, तो तालियाँ पिटने लगें। हुक्काम को डालियाँ न दूँ, तो बाग़ी समझा जाऊँ। तब आप अपने लेखों से मेरी रक्षा न करेंगे। कांग्रेस में शरीक हुआ, उसका तावान अभी तक देता जाता हूँ। काली किताब में नाम दर्ज हो गया। मेरे सिर पर कितना क़र्ज़ है, यह भी कभी आपने पूछा है; अगर सभी महाजन डिग्रियाँ करा लें, तो मेरे हाथ की यह अँगूठी तक बिक जायगी। आप कहेंगे, क्यों

यह आडम्बर पालते हो। कहिए। सात पुश्तों से जिस वातावरण में पला हूँ, उससे अब निकल नहीं सकता। घास छीलना मेरे लिए असम्भव है। आपके पास ज़मीन नहीं, जायदाद नहीं, मर्यादा का झमेला नहीं, आप निर्भीक हो सकते हैं; लेकिन आप भी दुम दबाये बैठे रहते हैं। आपको कुछ खबर है, अदालतों में कितनी रिश्वतें चल रही हैं, कितने ग़रीबों का ख़ून हो रहा है, कितनी देवियाँ भ्रष्ट हो रही हैं। है बूता लिखने का? सामग्री मैं देता हूँ, प्रमाण-सहित।

ओंकारनाथ कुछ नर्म होकर बोले—जब कभी अवसर आया है, मैंने क़दम पीछे नहीं हटाया।

राय साहब भी कुछ नर्म हुए—हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि दो-एक मौक़ों पर आपने जवाँमरदी दिखाई है; लेकिन आपकी निगाह हमेशा अपने लाभ की ओर रही है, प्रजा-हित की ओर नहीं। आँखें न निकालिए और न मुँह लाल कीजिए। जब कभी आप मैदान में आये हैं; उसका शुभ परिणाम यही हुआ है कि आपके सम्मान और प्रभाव और आमदनी में इज़ाफ़ा हुआ। अगर मेरे साथ भी आप वही चाल चल रहे हों, तो मैं आपकी खातिर करने को तैयार हूँ। रुपये न दूँगा; क्योंकि वह रिश्वत है। आपकी पत्नीजी के लिए कोई आभूषण बनवा दूँगा। है मंजूर? अब मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि आपको जो सम्वाद मिला वह ग़लत है; मगर यह भी कह देना चाहता हूँ कि और अपने सभी भाइयों की तरह मैं भी असामियों से जुर्माना लेता हूँ और साल में दस-पाँच हज़ार रुपये मेरे हाथ लग जाते हैं, और अगर आप मेरे मुँह से यह कौर छीनना चाहेंगे, तो आप घाटे में रहेंगे, आप भी संसार में सुख से रहना चाहते हैं, मैं भी चाहता हूँ। इससे क्या फ़ायदा कि आप न्याय और कर्तव्य का ढोंग रचकर मुझे भी ज़ेरबार करें, खुद भी ज़ेरबार हों। दिल की बात कहिए। मैं आपका वैरी नहीं हूँ। आपके साथ कितनी ही बार एक चौके में, एक मेज़ पर खा चुका हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि आप तक़लीफ़ में हैं। आपकी हालत शायद मेरी हालत से भी खराब है। हाँ, अगर आपने हरिश्चन्द्र बनने की क़सम खा ली है, तो आपकी ख़ुशी। मैं चलता हूँ।

राय साहब कुरसी से उठ खड़े हुए। ओंकारनाथ ने उनका हाथ पकड़कर संधि-भाव से कहा—नहीं-नहीं, अभी आपको बैठना पड़ेगा। मैं अपनी पोज़ीशन साफ़ कर देना चाहता हूँ। आपने मेरे साथ जो सलूक किये हैं, उनके लिए मैं आपका

आभारी हूँ ; लेकिन यहाँ सिद्धान्त की बात आ गई है और आप जानते हैं, सिद्धान्त प्राणों से भी प्यारे होते हैं।

राय साहब कुर्सी पर बैठकर ज़रा मीठे स्वर में बोले—अच्छा भाई, जो चाहे लिखो। मैं तुम्हारे सिद्धान्त को तोड़ना नहीं चाहता। और तो क्या होगा, बदनामी होगी। हाँ, कहाँ तक नाम के पीछे मरूँ। कौन ऐसा ताल्लुकेदार है, जो असामियों को थोड़ा-बहुत नहीं सताता। कुत्ता हड्डी की रखवाली करे, तो खाय क्या? मैं इतना ही कर सकता हूँ कि आगे आपको इस तरह की कोई शिकायत न मिलेगी ; अगर आपको मुझ पर कुछ विश्वास है, तो इस बार क्षमा कीजिए। किसी दूसरे सम्पादक से मैं इस तरह की ख़ुशामद न करता। उसे सरे बाज़ार पिटवाता ; लेकिन मुझसे आपकी दोस्ती है ; इसलिए मुझे दबना ही पड़ेगा। यह समाचार-पत्रों का युग है। सरकार तक उनसे डरती है, मेरी हस्ती क्या। आप जिसे चाहें बना दें। ख़ैर, यह झगड़ा खतम कीजिए। कहिए, आजकल पत्र की क्या दशा है। कुछ ग्राहक बढ़े?

ओंकारनाथ ने अनिच्छा के भाव से कहा—किसी न किसी तरह काम चल जाता है और वर्त्तमान परिस्थिति में मैं इससे अधिक आशा नहीं रखता। मैं इस तरफ़ धन और भोग की लालसा लेकर नहीं आया था ; इसलिए मुझे कोई शिकायत नहीं है। मैं जनता की सेवा करने आया था और वह यथाशक्ति किये जाता हूँ। राष्ट्र का कल्याण हो, यही मेरी कामना है। एक व्यक्ति के सुख-दुःख का कोई मूल्य नहीं।

राय साहब ने ज़रा और सहृदय होकर कहा—यह सब ठीक है भाई साहब ; लेकिन सेवा करने के लिए भी जीना ज़रूरी है। आर्थिक चिन्ताओं में आप एकाग्र-चित्त होकर सेवा भी तो नहीं कर सकते। क्या ग्राहक-संख्या बिलकुल नहीं बढ़ रही है?

'बात यह है कि मैं अपने पत्र का आदर्श गिराना नहीं चाहता ; अगर मैं भी आज सिनेमा-स्टारों के चित्र और चरित्र छापने लगूँ, तो मेरे ग्राहक बढ़ सकते हैं, लेकिन अपनी तो वह नीति नहीं। और भी कितने ही ऐसे हथकण्डे हैं, जिनसे पत्रों द्वारा धन कमाया जा सकता है ; लेकिन मैं उन्हें गर्हित समझता हूँ।'

'इसी का यह फल है कि आज आपका इतना सम्मान है। मैं एक प्रस्ताव करना चाहता हूँ। मालूम नहीं, आप उसे स्वीकार करेंगे या नहीं। आप मेरी ओर से सौ आदमियों के नाम फ्री पत्र जारी कर दीजिए। चन्दा मैं दे दूँगा।'

ओंकारनाथ ने कृतज्ञता से सिर झुकाकर कहा—मैं धन्यवाद के साथ आपका दान स्वीकार करता हूँ। खेद यही है कि पत्रों की ओर से जनता कितनी उदासीन है। स्कूलों और कालेजों और मन्दिरों के लिए धन की कमी नहीं है; पर आज तक एक भी ऐसा दानी न निकला जो पत्रों के प्रचार के लिए दान देता, हालांकि जन-शिक्षा का उद्देश्य जितने कम खर्च में पत्रों से पूरा हो सकता है, और किसी तरह नहीं हो सकता। जैसे शिक्षालयों को संस्थाओं द्वारा सहायता मिला करती है, ऐसे ही अगर पत्रकारों को मिलने लगे, तो इन बेचारों को अपना जितना समय और स्थान विज्ञापनों की भेंट करना पड़ता है वह क्यों करना पड़े। मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हूँ।

राय साहब बिदा हो गये; ओंकारनाथ के मुख पर प्रसन्नता की झलक न थी। राय साहब ने किसी तरह की शर्त न की थी, कोई बन्धन न लगाया था; पर ओंकारनाथ आज इतनी करारी फटकार पाकर भी इस दान को अस्वीकार न कर सके। परिस्थिति ऐसी आ पड़ी थी कि उन्हें उबारने का कोई उपाय ही न सूझ रहा था। प्रेस के कर्मचारियों का तीन महीने का वेतन बाकी पड़ा हुआ था। कागज़वाले के एक हज़ार से ऊपर आ रहे थे; यही क्या कम था कि उन्हें हाथ नहीं फैलाना पड़ा।

उनकी स्त्री गोमती ने आकर विद्रोह के स्वर में कहा—क्या अभी भोजन का समय नहीं आया, या यह भी कोई नियम है कि जब तक एक न बज जाय, जगह से न उठो। कब तक कोई चूल्हा अगोरता रहे।

ओंकारनाथ ने दुखी आँखों से पत्नी की ओर देखा। गोमती का विद्रोह उड़ गया। वह उनकी कठिनाइयों को समझती थी। दूसरी महिलाओं का वस्त्राभूषण देखकर कभी-कभी उसके मन में विद्रोह के भाव जाग उठते थे और वह पति को दो-चार जली-कटी सुना जाती थी; पर वास्तव में यह क्रोध उनके प्रति नहीं, अपने दुर्भाग्य के प्रति था, और इसकी थोड़ी-सी आँच अनायास ही ओंकारनाथ तक पहुँच जाती थी। वह उनका तपस्वी-जीवन देखकर मन में कुढ़ती भी थी और उनसे सहानुभूति भी रखती थी, बस, उन्हें थोड़ा-सा सनकी समझती थी। उनका उदास मुँह देखकर पूछा—क्यों उदास हो, पेट में कुछ गड़बड़ है क्या?

ओंकारनाथ को मुस्कराना पड़ा—कौन उदास है, मैं? मुझे तो आज जितनी ख़ुशी है, उतनी अपने विवाह के दिन भी न हुई थी। आज सवेरे पन्द्रह सौ की बोहनी हुई। किसी भाग्यवान् का मुँह देखा था।

गोमती को विश्वास न आया, बोली—झूठे हो। तुम्हें पन्द्रह सौ कहाँ मिले जाते हैं। हाँ, पन्द्रह रुपये कहो, मान लेती हूँ।

'नहीं-नहीं, तुम्हारे सिर की क़सम, पन्द्रह सौ मारे। अभी राय साहब आये थे। सौ गाहकों का चन्दा अपनी तरफ़ से देने का वचन दे गये हैं।'

गोमती का चेहरा उतर गया—तो मिल चुके ?

'नहीं, राय साहब वादे के पक्के हैं।'

'मैंने किसी ताल्लुक़ेदार को वादे का पक्का देखा ही नहीं। दादा एक ताल्लुक़ेदार के नौकर थे। साल-साल-भर तलब नहीं मिलती थी। उसे छोड़कर दूसरे की नौकरी की। उसने दो साल तक एक पाई न दी। एक बार दादा गरम पड़े, तो मारकर भगा दिया। इनके वादों का कोई क़रार नहीं।'

'मैं आज ही बिल भेजता हूँ।'

'भेजा करो। कह देंगे, कल आना। कल अपने इलाके पर चले जायँगे। तीन महीने में लौटेंगे।'

ओंकारनाथ संशय में पड़ गये। ठीक तो है, कहीं राय साहब पीछे से मुकर गये, तो वह क्या कर लेंगे। फिर भी दिल मज़बूत करके कहा—ऐसा नहीं हो सकता। कम-से-कम राय साहब को मैं इतना धोखेबाज़ नहीं समझता। मेरा उनके यहाँ कुछ बाक़ी नहीं है।

गोमती ने उसी सन्देह के भाव से कहा—इसी से तो मैं तुम्हें बुद्धू कहती हूँ, ज़रा किसी ने सहानुभूति दिखाई और तुम फूल उठे। ये मोटे रईस हैं। इनके पेट में ऐसे कितने वादे हज़म हो सकते हैं। जितने वादे करते हैं, अगर सब पूरा करने लगें, तो भीख माँगने की नौबत आ जाय। मेरे गाँव के ठाकुर साहब तो दो-दो, तीन-तीन साल तक बनियों का हिसाब न करते थे। नौकरों का वेतन तो नाम के लिए देते थे। साल-भर काम लिया, जब नौकर ने वेतन माँगा, मारकर निकाल दिया। कई बार इसी नादिहेन्दी में स्कूल से उनके लड़कों के नाम कट गये। आखिर उन्होंने लड़कों को घर बुला लिया। एक बार रेल का टिकट उधार माँगा था। यह राय साहब भी तो उन्हीं के भाई-बन्द हैं। चलो भोजन करो और चक्की पीसो, जो तुम्हारे भाग्य में लिखा है। यह समझ लो कि ये बड़े आदमी तुम्हें फटकारते रहें, वही अच्छा है। यह अगर तुम्हें एक पैसा देंगे, तो उसका चौगुना अपने असामियों

से वसूल कर लेंगे। अभी उनके विषय में जो कुछ चाहते हो, लिखते हो। तब तो ठकुरसोहाती ही कहनी पड़ेगी।

पण्डितजी भोजन कर रहे थे; पर कौर मुँह में फँसा हुआ जान पड़ता था। आखिर बिना दिल का बोझ हलका किये भोजन करना कठिन हो गया। बोले— अगर रुपये न दिये, तो ऐसी खबर लूँगा कि याद करेंगे। उनकी चोटी मेरे हाथ में है। गाँव के लोग झूठी खबर नहीं दे सकते। सच्ची खबर देते, तो उनकी जान निकलती है, झूठी खबर क्या देंगे। राय साहब के खिलाफ एक रिपोर्ट मेरे पास आई है। छाप दूँ, तो बचा को घर से निकलना मुश्किल हो जाय। मुझे वह ख़ैरात नहीं दे रहे हैं, बड़े दबसट में पड़कर इस राह पर आये हैं। पहले धमकियाँ दिखा रहे थे, जब देखा इससे काम न चलेगा, तो यह चारा फेंका। मैंने भी सोचा, एक इनके ठीक हो जाने से तो देश से अन्याय मिटा जाता नहीं, फिर क्यों न इस दान को स्वीकार कर लूँ। मैं अपने आदर्श से गिर गया हूँ ज़रूर; लेकिन इतने पर भी राय साहब ने दगा की, तो मैं भी शठता पर उतर आऊँगा। जो गरीबों को लूटता है, उसको लूटने के लिए अपनी आत्मा को बहुत समझाना न पड़ेगा।

१४

गाँव में खबर फैल गई कि राय साहब ने पंचों को बुलाकर ख़ूब डाँटा और इन लोगों ने जितने रुपये वसूल किये थे, वह सब इनके पेट से निकाल लिये। वह तो इन लोगों को जेहल भेजवा रहे थे; लेकिन इन लोगों ने हाथ पाँव जोड़े, थूककर चाटा, तब जाके उन्होंने छोड़ा। धनिया का कलेजा शीतल हो गया, गाँव में घूम-घूमकर पंचों को लज्जित करती फिरती थी—आदमी न सुने गरीबों की पुकार, भगवान् तो सुनते हैं। लोगों ने सोचा था, इनसे डाँड़ लेकर मजे से फुलौड़ियाँ खायँगे, भगवान् ने ऐसा तमाचा लगाया कि फुलौड़ियाँ मुँह से निकल पड़ीं। एक-एक के दो-दो भरने पड़े। अब चाटो मेरा मकान लेकर।

मगर बैलों के बिना खेती कैसे हो? गाँव में बोआई शुरू हो गई। कातिक के महीने में किसान के बैल मर जायँ, तो उसके दोनों हाथ कट जाते हैं। होरी के दोनों हाथ कट गये थे। और सब लोगों के खेतों में हल चल रहे थे। बीज डाले जा रहे थे। कहीं-कहीं गीत की तानें सुनाई देती थीं। होरी के खेत किसी

अनाथ अबला के घर की भाँति सूने पड़े थे। पुनिया के पास भी गोइँ थी, शोभा के पास भी गोइँ थी; मगर उन्हें अपने खेतों की बुआई से कहाँ फुरसत कि होरी की बुआई करें। होरी दिन-भर इधर-उधर मारा मारा फिरता था। कहीं इसके खेत में जा बैठता, कहीं उसकी बोआई करा देता। इस तरह कुछ अनाज मिल जाता। धनिया, रूपा, सोना सभी दूसरों की बोआई में लगी रहती थीं। जब तक बोआई रही, पेट की रोटियाँ मिलती गईं, विशेष कष्ट न हुआ। मानसिक वेदना तो अवश्य होती थी; पर खाने-भर को मिल जाता था। रात को नित्य स्त्री-पुरुष में थोड़ी-सी लड़ाई हो जाती थी।

यहाँ तक कि कातिक का महीना बीत गया और गाँव में मजूरी मिलनी भी कठिन हो गई। अब सारा दारमदार ऊख पर था, जो खेतों में खड़ी थी।

रात का समय था। सर्दी ख़ूब पड़ रही थी। होरी के घर में आज कुछ खाने को न था। दिन को तो थोड़ा-सा भुना हुआ मटर मिल गया था; पर इस वक्त चूल्हा जलने का कोई डौल न था और रूपा भूख के मारे व्याकुल थी और द्वार पर कौड़े के सामने बैठी रो रही थी। घर में जब अनाज का एक दाना भी नहीं है, तो क्या माँगे, क्या कहे।

जब भूख न सही गई, तो वह आग माँगने के बहाने पुनिया के घर गई। पुनिया बाजरे की रोटियाँ और बथुए का साग पका रही थी। सुगन्ध से रूपा के मुँह में पानी भर आया।

पुनिया ने पूछा—क्या अभी तेरे घर आग नहीं जली क्या री?

रूपा ने दीनता से कहा—आज तो घर में कुछ था ही नहीं, आग कहाँ से जलती।

'तो फिर आग काहे को माँगने आई है?'

'दादा तमाखू पियेंगे।'

पुनिया ने उपले की आग उसकी ओर फेंक दी; मगर रूपा ने आग उठाई नहीं और समीप जाकर बोली—तुम्हारी रोटियाँ महक रही हैं काकी। मुझे बाजरे की रोटियाँ बड़ी अच्छी लगती हैं।

पुनिया ने मुस्कराकर पूछा—खायगी?

'अम्माँ डाँटेंगी।'

'अम्मा से कौन कहने जायगा ?'

रूपा ने पेट-भर रोटियाँ खाईं और जूठे मुँह भागी हुई घर चली गई।

होरी मन मारे बैठा था, कि पण्डित दातादीन ने आकर पुकारा। होरी की छाती धड़कने लगी। क्या कोई नई विपत्ति आनेवाली है! आकर उनके चरण छुए और औटे के सामने उनके लिए माँची रख दी।

दातादीन ने बैठते हुए अनुग्रह के भाव से कहा—अबकी तो तुम्हारे खेत परती पड़ गये होरी! तुमने गाँव में किसी से कुछ कहा नहीं, नहीं भोला की मजाल थी, कि तुम्हारे द्वार से बैल खोल ले जाता! यहीं लहास गिर जाती। मैं तुमसे जनेऊ हाथ में लेकर कहता हूँ होरी, मैंने तुम्हारे ऊपर डाँड़ न लगाया था। धनिया मुझे हकनाहक बदनाम करती फिरती है। यह लाला पटेश्वरी और झिंगुरीसिंह की कारस्तानी है। मैं तो लोगों के कहने से पंचायत में बैठ-भर गया था। वह लोग तो और कड़ा दण्ड लगा रहे थे। मैंने कह-सुनके कम कराया; मगर अब सब जने सिर पर हाथ धरे रो रहे हैं। समझे थे, यहाँ उन्हीं का राज है। यह न जानते थे कि गाँव का राजा कोई और है। तो अब अपने खेतों की बोआई का क्या इन्तज़ाम कर रहे हो?

होरी ने करुण-कंठ से कहा—क्या बताऊँ महाराज, परती रहेंगे।

'परती रहेंगे! यह तो बड़ा अनर्थ होगा!'

'भगवान् की यही इच्छा है, तो अपना क्या बस।'

'मेरे देखते तुम्हारे खेत कैसे परती रहेंगे। कल मैं तुम्हारी बोआई करा दूँगा। अभी खेत में कुछ तरी है। उपज दस दिन पीछे होगी इसके सिवा और कोई बात नहीं। हमारा-तुम्हारा आधा-साझा रहेगा। इसमें न तुम्हें कोई टोटा है, न मुझे। मैंने आज बैठे-बैठे सोचा, तो चित्त बड़ा दुखी हुआ, कि जुते-जुताये खेत परती रहे जाते हैं।

होरी सोच में पड़ गया। चौमासे-भर इन खेतों में खाद डाली, जोतो और आज केवल बोआई के लिए आधी फसल देनी पड़ रही है। उस पर एहसान कैसा जता रहे हैं; लेकिन इससे तो अच्छा ही है कि खेत परती पड़ जायँ। और कुछ न मिलेगा, लगान तो निकल ही आयेगा। नहीं, अबकी बेबाकी न हुई, तो बेदखली आई धरी है।

उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दातादीन प्रसन्न होकर बोले—तो चलो, मैं अभी बीज तौल दूँ, जिसमें सवेरे का झंझट न रहे। रोटी तो खा ली है न?

होरी ने लजाते हुए आज घर में चूल्हा न जलने की कथा कही।

दातादीन ने मीठे उलाहने के भाव से कहा—अरे! तुम्हारे घर में चूल्हा नहीं जला और तुमने मुझसे कहा भी नहीं! हम तुम्हारे वैरी तो नहीं थे। इसी बात पर तुमसे मेरा जी कुढ़ता है। अरे भले आदमी, इसमें लाज-सरम की कौन बात है। हम सब एक ही तो हैं। तुम सूद्र हुए तो क्या, हम बाम्हन हुए तो क्या, हैं तो सब एक ही घर के। दिन सबके बराबर नहीं जाते। कौन जाने, कल मेरे ही ऊपर कोई संकट आ पड़े, तो मैं तुमसे अपना दुःख न कहूँगा, तो किससे कहूँगा। अच्छा, जो हुआ सो हुआ, चलो बेंग ही के साथ तुम्हें मन-दो-मन अनाज खाने को भी तौल दूँगा।

आध घण्टे में होरी मन-भर जौ का टोकरा सिर पर रखे आया और घर की चक्की चलने लगी। धनिया रोती थी और सोना के साथ जौ पीसती थी। भगवान् उसे किस कुकर्म का यह दण्ड दे रहे हैं।

दूसरे दिन से बोआई शुरू हुई। होरी का सारा परिवार इस तरह काम में जुटा हुआ था, मानों सब कुछ अपना ही है। कई दिन के बाद सिंचाई भी इसी तरह हुई। दातादीन को सेंत-मेंत के मजूर मिल गये। अब कभी-कभी उनका लड़का मातादीन भी घर में आने लगा। जवान आदमी था, बड़ा रसिक और बातचीत का मीठा। दातादीन जो कुछ छीन-झपटकर लाते थे, वह उसे भंग-बूटी में उड़ाता था। एक चमारिन से उसकी आशनाई हो गई थी; इसलिए अभी तक ब्याह न हुआ था। वह रहती थी; पर सारा गाँव यह रहस्य जानते हुए भी कुछ बोल न सकता था। हमारा धर्म है हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे, फिर हमारे धर्म पर कोई आँच नहीं आ सकती। रोटियाँ ढाल बनकर अधर्म से हमारी रक्षा करती हैं।

अब साझे की खेती होने से मातादीन को झुनिया से बातचीत करने का अवसर मिलने लगा। वह ऐसे दाँव से आता, जब घर में झुनिया के सिवा और कोई न होता, कभी किसी बहाने से, कभी किसी बहाने से। झुनिया रूपवती न थी; लेकिन जवान थी और उसकी चमारिन प्रेमिका से अच्छी थी। कुछ दिन शहर में रह चुकी थी, पहनना-ओढ़ना, बोलना-चालना जानती थी और लज्जाशील भी थी, जो स्त्री का

सबसे बड़ा आकर्षण है। मातादीन कभी-कभी उसके बच्चे को गोद में उठा लेता और प्यार करता। झुनिया निहाल हो जाती थी।

एक दिन उसने झुनिया से कहा—तुम क्या देखकर गोबर के साथ आईं झूना?

झुनिया ने लजाते हुए कहा—भाग खींच लाया महाराज, और क्या कहूँ।

मातादीन दुखी मन से बोला—बड़ा बेवफा आदमी है। तुम जैसी लच्छमी को छोड़कर न जाने कहाँ मारा-मारा फिर रहा है। चचल सुभाव का आदमी है, इसी से मुझे शंका होती है कि कहीं और न फँस गया हो। ऐसे आदमियों को तो गोली मार देनी चाहिए। आदमी का धरम है, जिसकी बाँह पकड़े, उसे निभाये। यह क्या कि एक आदमी की जिन्दगानी खराब कर दी और आप दूसरा घर ताकने लगे।

युवती रोने लगी। मातादीन ने इधर-उधर ताककर उसका हाथ पकड़ लिया और समझाने लगा—तुम उसकी क्यों परवा करती हो झूना, चला गया, चला जाने दो। तुम्हारे लिए किस बात की कमी है। रुपया-पैसा, गहना-कपड़ा, जो चाहो मुझसे लो।

झुनिया ने धीरे से हाथ छुड़ा लिया और पीछे हटकर बोली—सब तुम्हारी दया है महाराज! मैं तो कहीं की न रही। घर से भी गई, यहाँ से भी गई। न माया मिली, न राम ही हाथ आये। दुनिया का रग-ढग न जानती थी। इसकी मीठी-मीठी बातें सुनकर जाल में फँस गई।

मातादीन ने गोबर की बुराई करनी शुरू की—वह तो निरा लफ़ंगा है, घर का न घाट का। जब देखो, माँ-बाप से लड़ाई। कहीं पैसा पा जाय, चट जुआ खेल डालेगा, चरस और गाँजे में उसकी जान बसती थी, सोहदों के साथ घूमना, बहू-बेटियों को छेड़ना, यही उसका काम था। थानेदार साहब बदमासी में उसका चलान करनेवाले थे, हम लोगों ने बहुत खुशामद की तब जाके छोड़ा। दूसरो के खेत-खलिहान से अनाज उड़ा लिया करता था। कई बार तो खुद हमीं ने पकड़ा था; पर गाँव-घर का समझकर छोड़ दिया।

सोना ने बाहर आकर कहा—भाभी, अम्माँ ने कहा है, अनाज निकालकर धूप में डाल दो, नहीं चोकर बहुत निकलेगा। पण्डित ने जैसे बखार में पानी डाल दिया हो।

मातादीन ने अपनी सफ़ाई दी—मालूम होता है, तेरे घर बरसात नहीं हुई। चौमासे में लकड़ी तक गिली हो जाती है, अनाज तो अनाज ही है।

यह कहता हुआ वह बाहर चला गया। सोना ने आकर उसका खेल बिगाड़ दिया सोना ने झुनिया से पूछा—मातादीन क्या करने आये थे ?

झुनिया ने माथा सिकोड़कर कहा—पगहिया माँग रहे थे । मैंने कह दिया, यहाँ पगहिया नहीं है ।

'यह सब बहाना है । बड़ा खराब आदमी है ।'

'मुझे तो बड़ा भला आदमी लगता है । क्या खराबी है उसमें ?'

'तुम नहीं जानतीं ? सिलिया चमारिन को रखे हुए है ।'

'तो इसी से खराब आदमी हो गया ?'

'और काहे से आदमी खराब कहा जाता है ?'

'तुम्हारे भैया भी तो मुझे लाये हैं । वह भी खराब आदमी हैं ?'

सोना ने इसका जवाब न देकर कहा—मेरे घर में फिर कभी आयेगा, तो दुत-कार दूँगी ।

'और जो उससे तुम्हारा ब्याह हो जाय ?'

सोना लजा गई—तुम तो भाभी गाली देती हो ।

'क्यों, इसमें गाली की क्या बात हैं ?'

'मुझसे बोले, तो मुँह झुलस दूँ ।'

'तो क्या तुम्हारा ब्याह किसी देवता से होगा । गाँव में ऐसा सुन्दर सजीला जवान दूसरा कौन है ?'

'तो तुम चली जाओ उसके साथ, सिलिया से लाख दर्जे अच्छी हो ।'

'मैं क्यों चली जाऊँ । मैं तो एक के साथ चली आई । अच्छा है या बुरा ।'

'तो मैं भी जिसके साथ ब्याह होगा, उसके साथ चली जाऊँगी, अच्छा हो या बुरा।'

'और जो किसी बूढ़े के साथ ब्याह हो गया ?'

सोना हँसी—मैं उसके लिए नरम-नरम रोटियाँ पकाऊँगी, उसकी दवाइयाँ कूटूँ-छानूँगी, उसे हाथ पकड़कर उठाऊँगी, जब मर जायगा, तो मुँह ढाँपकर रोऊँगी ।

'और जो किसी जवान के साथ हुआ ।'

'तब तुम्हारा सिर, हाँ नहीं तो ?'

'अच्छा बताओ, तुम्हें बूढ़ा अच्छा लगता है कि जवान ?'

'जो अपने को चाहे वही जवान है, जो न चाहे वही बूढ़ा है ।'

'दैव करे, तुम्हारा ब्याह किसी बूढ़े से हो जाय, तो देखूँ तुम उसे कैसे चाहती हो। तब मनाओगी, किसी तरह यह निगोड़ा मर जाय, तो किसी जवान को लेकर बैठ जाऊँ।'

'मुझे तो उस बूढ़े पर दया आये।'

इस साल इधर शक्कर का एक मिल खुल गया था। उसके कारिन्दे और दलाल गाँव-गाँव घूमकर किसानों की खड़ी ऊख मोल लेते थे। वही मिल था, जो मिस्टर खन्ना ने खोला था। एक दिन उसका कारिन्दा इस गाँव में भी आया। किसानों ने जो उससे भाव-ताव किया, तो मालूम हुआ, गुड़ बनाने में कोई बचत नहीं है; जब घर में ऊख पेरकर भी यही दाम मिलता है, तो पेरने की मेहनत क्यों उठाई जाय? सारा गाँव खड़ी ऊख बेचने को तैयार हो गया; अगर कुछ कम भी मिले, तो परवाह नहीं। तत्काल तो मिलेगा! किसी को बैल लेना था, किसी को बाक़ी चुकाना था, कोई महाजन से गला छुड़ाना चाहता था। होरी को बैलों की गोईं लेनी थी। अबकी ऊख की पैदावार अच्छी न थी; इसलिए यह डर भी था कि माल न पड़ेगा। और जब गुड़ के भाव मिल की चीनी मिलेगी, तो गुड़ लेगा ही कौन? सभी ने बयाने ले लिये। होरी को कम-से-कम सौ रुपये की आशा थी। इतने में एक मामूली गोईं आ जायगी; लेकिन महाजनों को क्या करे। दातादीन, मँगरू, दुलारी, झिंगुरीसिंह सभी तो प्राण खा रहे थे। अगर महाजनों को देने लगेगा, तो सौ रुपये सूद-भर को भी न होंगे! कोई ऐसी जुगत न सूझती थी कि ऊख के रुपये हाथ आ जायँ और किसी को खबर न हो। जब बैल घर आ जायँगे, तब कोई क्या कर लेगा। गाड़ी लदेगी, तो सारा गाँव देखेगा ही, तौल पर जो रुपये मिलेंगे, वह सबको मालूम हो जायँगे। सम्भव है, मँगरू और दातादीन हमारे साथ साथ रहें। इधर रुपये मिले, उधर उन्होंने गर्दन पकड़ी।

शाम को गिरधर ने पूछा—तुम्हारी ऊख कब तक जायेगी होरी काका?

होरी ने झाँसा दिया—अभी तो कुछ ठीक नहीं है भाई; तुम कब तक ले जाओगे?

गिरधर ने भी झाँसा दिया—अभी तो मेरा भी कुछ ठीक नहीं है काका!

और लोग भी इसी तरह की उड़नझाइयाँ बताते थे, किसी को किसी पर विश्वास न था। झिंगुरीसिंह के सभी रिनियाँ थे, और सबकी यही इच्छा थी कि झिंगुरीसिंह

के हाथ रुपये न पड़ने पायें, नहीं वह सब-का-सब हज़म कर जायगा। और जब दूसरे दिन असामी फिर रुपये माँगने जायगा, तो नया कागज़, नया नज़राना, नई तहरीर। दूसरे दिन शोभा आकर बोला—दादा, कोई ऐसा उपाय करो कि झिंगुरी को हैज़ा हो जाय। ऐसा गिरे कि फिर न उठे।

होरी ने मुस्कराकर कहा—क्यों, उसके बाल-बच्चे नहीं हैं!

'उसके बाल बच्चों को देखें कि अपने बाल-बच्चों को देखें? वह तो दो-दो मेहरियों को आराम से रखता है, यहाँ तो एक को रूखी रोटी भी मयस्सर नहीं, सारी जमा ले लेगा। एक पैसा भी घर न लाने देगा।'

'मेरी तो हालत और भी खराब है भाई, अगर रुपये हाथ से निकल गये, तो तबाह हो जाऊँगा। गोईं के बिना तो काम न चलेगा।'

'अभी तो दो-तीन दिन ऊख ढोते लगेंगे। ज्यों ही सारी ऊख पहुँच जाय, जमादार से कहें कि भैया कुछ ले ले; मगर ऊख चट-पट तोल ले, दाम पीछे देना। इधर झिंगुरी से कह देंगे, अभी रुपये नहीं मिले।'

होरी ने विचार करके कहा—झिंगुरीसिंह हमसे-तुमसे कई गुना चतुर है! सीधा जाकर मुनीम से मिलेगा और उसी से रुपये ले लेगा। हम-तुम ताकते रह जायँगे। जिस खन्ना बाबू का मिल है, उन्हीं खन्ना बाबू की महाजनी कोठी भी है। दोनों एक हैं।

शोभा निराश होकर बोला—न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं।

होरी बोला—इस जनम में तो कोई आसा नहीं है भाई! हम राज नहीं चाहते, भोग-बिलास नहीं चाहते, खाली मोटा-झोटा पहनना और मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।

शोभा ने धूर्तता के साथ कहा—मैं तो दादा, इन सबों को अबकी चकमा दूँगा। जमादार को कुछ दे-दिलाकर इस बात पर राज़ी कर लूँगा कि रुपये के लिए हमें ख़ूब दौड़ाये। झिंगुरी कहाँ तक दौड़ेंगे।

होरी ने हँसकर कहा—यह सब कुछ न होगा भैया! कुसल इसी में है कि झिंगुरीसिंह के हाथ-पाँव जोड़ो। हम जाल में फँसे हुए हैं। जितना ही फड़फड़ाओगे, उतना ही और जकड़ते जाओगे।

'तुम तो दादा, बूढ़ों की-सी बातें कर रहे हो। कठघरे में फँसे बैठे रहना तो कायरता है। फन्दा और जकड़ जाय, बला से ; पर गला छुड़ाने के लिए जोर तो लगाना ही पड़ेगा। यही तो होगा, झिंगुरी घर-द्वार नीलाम करा लेंगे। करा लें नीलाम! मैं तो चाहता हूँ कि हमें कोई रुपये न दे, हमें भूखों मरने दे, लातें खाने दे, एक पैसा भी उधार न दे ; लेकिन पैसेवाले उधार न दें तो सूद कहाँ से पायें। एक हमारे ऊपर दावा करता है, तो दूसरा हमें कुछ कम सूद पर रुपये उधार देकर अपने जाल में फँसा लेता है। मैं तो उसी दिन रुपये लेने जाऊँगा, जिस दिन झिंगुरी कहीं चला गया होगा।

होरी का मन भी विचलित हुआ—हाँ, यह ठीक है।

'ऊख तुलवा देंगे। रुपये दाँव-घात देखकर ले आयँगे।'

'बस-बस, यही चाल चलो।'

दूसरे दिन प्रातःकाल गाँव के कई आदमियों ने ऊख काटना शुरु की। होरी भी अपने खेत में गँड़ासा लेकर पहुँचा। उधर से शोभा भी उसकी मदद को आ गया। पुनिया, झुनिया, धनिया, सोना सभी खेत में जा पहुँचीं। कोई ऊख काटता था, कोई छीलता था, कोई पूले बाँधता था। महाजनों ने जो ऊख कटते देखी, तो पेट में चूहे दौड़े। एक तरफ़ से दुलारी दौड़ी, दूसरी तरफ से मँगरू साह, तीसरी ओर से दातादीन और पटेश्वरी और झिंगुरी के प्यादे। दुलारी हाथ-पाँव में मोटे-सोटे चाँदी के कड़े पहने, कानों में सोने का झूमक, आँखों में काजल लगाये, बूढ़े यौवन को रँगे-रँगाये आकर बोली—पहले मेरे रुपये दे दो तब ऊख काटने दूँगी। मैं जितना ही गम खाती हूँ, उतना ही तुम सेर होते हो। दो साल से एक धेला सूद नहीं दिया, पचास रुपये तो मेरे सूद के होते हैं।

होरी ने घिघियाकर कहा—भाभी, ऊख काट लेने दो, इसके रुपये मिलते हैं, तो जितना हो सकेगा, तुमको भी दूँगा। न गाँव छोड़कर भागा जाता हूँ, न इतनी जल्द मौत ही आई जाती है। खेत में खड़ी-खड़ी तो ऊख रुपये न देगी!

दुलारी ने उसके हाथ से गँड़ासा छीनकर कहा—नीयत इतनी खराब हो गई है तुम लोगों की तभी तो बरकत नहीं होती।

आज पाँच साल हुए, होरी ने दुलारी से तीस रुपये लिये थे। तीन साल में

उसके सौ रुपये हो गये, तब स्टाम्प लिखा गया। दो साल में उस पर पचास रुपये सूद चढ़ गया था।

होरी बोला—सहुआइन, नीयत तो कभी खराब नहीं की, और भगवान् चाहेंगे, तो पाई-पाई चुका दूँगा। हाँ, आजकल तङ्ग हो गया हूँ, जो चाहे, कह लो।

सहुआइन के जाते देर नहीं हुई कि मँगरू साह पहुँचे। काला रंग, तोंद कमर के नीचे लटकती हुई, दो बड़े-बड़े दाँत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी, गले में चादर, उम्र अभी पचास से ज़्यादा नहीं; पर लाठी के सहारे चलते थे। गठिया का मरज़ हो गया था। खाँसी भी आती थी। लाठी टेककर खड़े हो गये और होरी को डाँट बताई—पहले हमारे रुपये दे दो होरी, तब ऊख काटो। हमने रुपये उधार दिये थे, ख़ैरात नहीं थे। तीन-तीन साल हो गये, न सूद, न ब्याज; मगर यह न समझना कि तुम मेरे रुपये हजम कर जाओगे, मैं तुम्हारे मुर्दे से भी वसूल कर लूँगा।

शोभा मसखरा था। बोला—तब काहे को घबराते हो साहजी, इनके मुर्दे ही से वसूल कर लेना। नहीं, एक-दो साल के आगे-पीछे दोनों ही सरग में पहुँचोगे। वहीं भगवान् के सामने अपना हिसाब चुका लेना।

मँगरू ने शोभा को बहुत बुरा-भला कहा—जमामार, बेईमान आदि। लेने की बेर तो दुम हिलाते हो, जब देने की बारी आती है तो गुर्राते हो। घर बिकवा लूँगा; बैल बधिये नीलाम करा लूँगा।

शोभा ने फिर छेड़ा—अच्छा, ईमान से बताओ साह, कितने रुपये दिये थे, जिसके अब तीन सौ रुपये हो गये हैं?

'जब तुम साल के साल सूद न दोगे, तो आप ही बढ़ेंगे।'

'पहले-पहले कितने रुपये दिये थे तुमने? पचास ही तो।'

'कितने दिन हुए, यह भी तो देख!'

'पाँच-छः साल हुए होंगे?'

'दस साल हो गये पूरे, ग्यारहवाँ जा रहा है।'

'पचास रुपये के तीन सौ रुपये लेते तुम्हें ज़रा भी सरम नहीं आती?'

'सरम कैसी, रुपये दिये हैं। ख़ैरात माँगते हैं?'

होरी ने इन्हें भी चिरौरी-बिनती करके बिदा किया। दातादीन ने होरी के साझे

में खेती की थी। बीज देकर आधी फसल ले लेंगे। इस वक्त कुछ छेड़-छाड़ करना नीति-विरुद्ध था। झिंगुरीसिंह ने मिल के मैनेजर से पहले ही सब कुछ कह-सुन रखा था। उनके प्यादे गाड़ियों पर ऊख लदवाकर नाव पर पहुँचा रहे थे। नदी गाँव से आध मील पर थी। एक गाड़ी दिन-भर में सात-आठ चक्कर कर लेती थी। और नाव एक खेवे में पचास गाड़ियों का बोझ लाद लेती थी। इस तरह बहुत किफ़ायत पड़ती थी। इस सुविधा का इन्तज़ाम करके झिंगुरीसिंह ने सारे इलाके को एहसान से दबा दिया था।

तौल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिये। हरएक की ऊख तौलाते थे, दाम का पुरजा लेते थे, खज़ांची से रुपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को दे देते थे। असामी कितना ही रोये, चीखे, किसी की न सुनते थे। मालिक का यही हुक्म था। उनका क्या बस।

होरी को एक सौ बीस रुपये मिले। उसमें से झिंगुरीसिंह ने अपने पूरे रुपये सूद समेत काटकर कोई पचीस रुपये होरी के हवाले किये।

होरी ने रुपयों की ओर उदासीन भाव से देखकर कहा—यह लेकर मैं क्या करूँगा ठाकुर, यह भी तुम्हीं ले लो। मेरे लिए मजूरी बहुत मिलेगी।

झिंगुरीसिंह ने पचीसों रुपये ज़मीन पर फेंककर कहा—लो या फेंक दो, तुम्हारी खुशी। तुम्हारे कारन मालिक की घुड़कियाँ खाईं और अभी राय साहब सिर पर सवार हैं कि डाँड़ के रुपये अदा करो। तुम्हारी गरीबी पर दया करके इतने रुपये दिये देता हूँ, नहीं एक धेला भी न देता। अगर राय साहब ने सख्ती की, तो उल्टे और घर से देने पड़ेंगे।

होरी ने धीरे से रुपये उठा लिये और बाहर निकला कि नोखेराम ने ललकारा। होरी ने जाकर पचीसों रुपये उनके हाथ पर रख दिये और बिना कुछ कहे जल्दी से भाग गया। उसका सिर चक्कर खा रहा था। शोभा को भी इतने ही रुपये मिले थे। वह बाहर निकला, तो पटेश्वरी ने घेरा।

शोभा बदल पड़ा। बोला—मेरे पास रुपये नहीं हैं; तुम्हें जो कुछ करना हो, कर लो।

पटेश्वरी ने गर्म होकर कहा—ऊख बेची है कि नहीं?

'हाँ, बेची है।'

'तुम्हारा यही वादा तो था कि ऊख बेचकर रुपया दूँगा ?'

'हाँ, था तो।'

'फिर क्यों नहीं देते। और सब लोगों को दिये हैं कि नहीं ?'

'हाँ, दिये हैं।'

'तो मुझे क्यों नहीं देते ?'

'मेरे पास अब जो कुछ बचा है, वह बाल-बच्चों के लिए है।'

पटेश्वरी ने बिगड़कर कहा—तुम तो रुपये दोगे शोभा, और हाथ जोड़कर और आज ही। हाँ, अभी जितना चाहो, बहक लो। एक रपट में जाओगे छः महीने को, पूरे छः महीने को, न एक दिन बेस, न एक दिन कम। यह जो नित्य जुआ खेलते हो, वह एक रपट में निकल जायगा। मैं ज़मींदार या महाजन का नौकर नहीं हूँ, सरकार बहादुर का नौकर हूँ। जिसका दुनिया-भर में राज है और जो तुम्हारे महाजन और ज़मींदार दोनों का मालिक है।

पटेश्वरीलाल आगे बढ़ गये। शोभा और होरी कुछ दूर चुपचाप चले। मानों इस धिक्कार ने उन्हें संज्ञाहीन कर दिया हो। तब होरी ने कहा—सोभा, इसके रुपये दे दो। समझ लो, ऊख में आग लग गई थी। मैंने भी यही सोचकर मन को समझाया है।

शोभा ने आहत कण्ठ से कहा—हाँ, दे दूँगा दादा! न दूँगा, तो जाऊँगा कहाँ।

सामने से गिरधर ताड़ी पिये, झूमता चला आ रहा था। दोनों को देखकर बोला—झिंगुरिया ने सारे का सारा ले लिया होरी काका! चबैना को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का। रोया, गिड़गिड़ाया; पर इस पापी को दया न आई।

शोभा ने कहा—ताड़ी तो पिये हुए हो, उस पर कहते हो, एक पैसा भी न छोड़ा।

गिरधर ने पेट दिखाकर कहा— साँझ हो गई, जो पानी की बूँद भी कण्ठ-तले गई हो, तो गो-मांस बराबर। एक इकन्नी मुँह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली। सोचा, साल-भर पसीना गारा है, तो एक दिन ताड़ी तो पी लूँ; मगर सच कहता हूँ, नसा नहीं है। एक आने में क्या नसा होगा। हाँ, झूम रहा हूँ, जिसमें लोग समझें, खूब पिये हुए है। बड़ा अच्छा हुआ काका, बेबाकी हो गई। बीस लिये थे, उसके एक सौ साठ भरे, कुछ हद है।

होरी घर पहुँचा, तो रूपा पानी लेकर दौड़ी, सोना चिलम भर लाई, धनिया ने चबेना और नमक लाकर रख दिया और सभी आशा-भरी आँखों से उसकी ओर ताकने लगीं। झुनिया भी चौखट पर आ खड़ी हुई थी। होरी उदास बैठा था। कैसे मुँह-हाथ धोये, कैसे चबेना खाये। ऐसा लज्जित और ग्लानित था, मानों हत्या करके आया हो।

धनिया ने पूछा—कितने की तौल हुई ?

'एक सौ बीस मिले; पर सब वहीं लुट गये। धेला भी न बचा।'

धनिया सिर से पाँव तक भस्म हो उठी। मन में ऐसा उद्वेग उठा कि अपना मुँह नोच ले। बोली—तुम-जैसा घामड़ आदमी भगवान् ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूछती। तुम्हारे साथ सारी जिन्दगी तलख हो गई, भगवान् मौत भी नहीं दे देते कि जंजाल से जान छूटे। उठाकर सारे रुपये बहनोइयों को दे दिये। अब और कौन आमदनी है, जिससे गोईं आयेगी। हल में क्या तुम मुझे जोतोगे, या आप जुतोगे। मैं कहती हूँ, तुम बूढ़े हुए, तुम्हें इतनी अक्ल भी नहीं आई कि गोईं-भर को रुपये तो निकाल लेते! कोई तुम्हारे हाथ से छीन थोड़े ही लेता। पूस की यह ठण्ड और किसी की देह पर लत्ता नहीं। ले जाओ सबको नदी में डुबा दो। सिसक-सिसककर मरने से तो एक दिन मर जाना फिर भी अच्छा है। कब तक पुआल में घुसकर रात काटेंगे और पुआल में घुस भी लें, तो पुआल खाकर रहा तो न जायगा! तुम्हारी इच्छा हो, घास ही खाओ, हमसे तो घास न खाई जायगी।

यह कहते-कहते वह मुस्करा पड़ी। इतनी देर में उसकी समझ में यह बात आने लगी थी कि महाजन जब सिर पर सवार हो जाय, और अपने हाथ में रुपये हों और महाजन जानता हो कि इसके पास रुपये हैं, तो असामी कैसे अपनी जान बचा सकता है।

होरी सिर नीचा किये अपने भाग्य को रो रहा था। धनिया का मुस्कराना उसे न दिखाई दिया। बोला—मजूरी तो मिलेगी। मजूरी करके खायँगे।

धनिया ने पूछा—कहाँ है इस गाँव में मजूरी। और कौन मुँह लेकर मजूरी करोगे? महतो नहीं कहलाते?

होरी ने चिलम के कई कश लगाकर कहा—मजूरी करना कोई पाप नहीं है। मजूर बन जाय, तो किसान हो जाता है। किसान बिगड़ जाय तो मजूर हो जाता

है। मजूरी करना भाग्य में न होता, तो यह सब विपत क्यों आती? क्यों गाय मरती? क्यों लड़का नालायक निकल जाता?

धनिया ने बहू-बेटियों की ओर देखकर कहा—तुम सब-की-सब क्यों घेरे खड़ी हो, जाकर अपना-अपना काम देखो। वह और हैं जो हाट-बजार से आते हैं, तो बाल-बच्चों के लिए दो चार पैसे की कोई चीज लिये आते हैं। यहाँ तो यह लोभ लग रहा होगा कि रुपये तुड़ायें कैसे? एक कम न हो जायगा! इसीसे इनकी कमाई में बरकत नहीं होती। जो खरच करते हैं, उन्हें मिलता है। जो न खा सकें, न पहन सकें, उन्हें रुपये मिलें ही क्यों? जमीन में गाड़ने के लिए?

होरी ने खिलखिलाकर पूछा—कहाँ है, वह गाड़ी हुई थाती?

'जहाँ रखी है, वहीं होगी। रोना तो यही है कि यह जानते हुए भी पैसों के लिए मरते हो! चार पैसे की कोई चीज़ लाकर बच्चों के हाथ पर रख देते तो पानी में न पड़ जाते। झिंगुरी से तुम कह देते कि एक रुपया मुझे दे दो, नहीं तो एक पैसा न दूँगा, जाकर अदालत में लेना, तो वह ज़रूर दे देता।'

होरी लज्जित हो गया। अगर वह झल्लाकर पचीसों रुपये नोखेराम को न दे देता, तो नोखे क्या कर लेते। बहुत होता, बकाया पर दो-चार आना सूद ले लेते; मगर अब तो चूक हो गई!

झुनिया ने भीतर जाकर सोना से कहा—मुझे तो दादा पर बड़ी दया आती है। बेचारे दिन-भर के थके-माँदे घर आये, तो अम्माँ कोसने लगीं। महाजन गला दबाये था तो क्या करते बेचारे!

'तो बैल कहाँ से आयेंगे?'

'महाजन अपने रुपये चाहता है। उसे तुम्हारे घर के दुखड़ों से क्या मतलब?'

'अम्माँ वहाँ होतीं, तो महाजन को मज़ा चखा देतीं। अभागा रोकर रह जाता।'

झुनिया ने दिल्लगी की—तो यहाँ रुपये की कौन कमी है। तुम महाजन से जरा हँसकर बोल दो, देखो सारे रुपये छोड़ देता है कि नहीं। सच कहती हूँ, दादा का सारा दुख-दलिद्दर दूर हो जाय।

सोना ने दोनों हाथों से उसका मुँह दबाकर कहा—बस, चुप ही रहना, नहीं कहे देती हूँ। अभी जाकर अम्माँ से मातादीन की सारी कलई खोल दूँ तो रोने लगो।

झुनिया ने पूछा—क्या कह दोगी अम्माँ से? कहने को कोई बात भी हो।

जब वह किसी बहाने से घर में आ जाते हैं, तो क्या कह दूँ कि निकल जाओ? फिर मुझसे कुछ ले तो नहीं जाते। कुछ अपना ही दे जाते हैं। सिवाय मीठी-मीठी बातों के वह झुनिया से कुछ नहीं पा सकते। और अपनी मीठी बातों को महँगे दामों बेचना भी मुझे आता है। मैं ऐसी अनीली नहीं हूँ कि किसी के झाँसे में आ जाऊँ। हाँ, जब जान जाऊँगी कि तुम्हारे भैया ने वहाँ किसी को रख लिया है, तब की नहीं चलाती। तब मेरे ऊपर किसी का कोई बन्धन न रहेगा। अभी तो मुझे विश्वास है कि वह मेरे हैं और मेरे ही कारन उन्हें गली-गली ठोकर खाना पड़ रहा है। हँसने-बोलने की बात न्यारी है; पर मैं उनसे विश्वासघात न करूँगी। जो एक से दो का हुआ, वह किसी का नहीं रहता।

शोभा ने आकर होरी को पुकारा और पटेश्वरी के रुपये उसके हाथ में रखकर बोला—भैया, तुम जाकर ये रुपये लाला को दे दो। मुझे उस घड़ी न जाने क्या हो गया था।

होरी रुपये लेकर उठा ही था कि शंख की ध्वनि कानों में आई। गाँव के उस सिरे पर ध्यानसिंह नाम के एक ठाकुर रहते थे। पलटन में नौकर थे और कई दिन हुए, दस साल के बाद रजा लेकर आये थे। बगदाद, अदन, सिंगापुर, बर्मा, चारों तरफ़ घूम चुके थे। अब ब्याह करने की धुन में थे। इसीलिए पूजा-पाठ करके ब्राह्मणों को प्रसन्न रखना चाहते थे।

होरी ने कहा—जान पड़ता है, सातों अध्याय पूरे हो गये। आरती हो रही है।

शोभा बोला—हाँ, जान तो पड़ता है, चलो आरती ले लें।

होरी ने चिन्तित-भाव से कहा—तुम जाओ, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।

ध्यानसिंह जिस दिन आये थे, सबके घर सेर-सेर-भर मिठाई बैना भेजी थी। होरी से जब कभी रास्ते में मिल जाते, कुशल पूछते। उनकी कथा में जाकर आरती में कुछ न देना अपमान की बात थी।

आरती का थाल उन्हीं के हाथ में होगा। उनके सामने होरी कैसे खाली हाथ आरती ले लेगा। इससे तो कहीं अच्छा है कि वह कथा में जाये ही नहीं। इतने आदमियों में उन्हें क्या याद आयेगी कि होरी नहीं आया। कोई रजिस्टर लिये तो बैठा नहीं है कि कौन आया, कौन नहीं आया। वह जाकर खाट पर लेट रहा।

मगर उसका हृदय मसोस-मसोसकर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं है। ताँबे का एक पैसा! आरती के पुण्य और माहात्म्य का उसे बिलकुल ध्यान न था। बात थी केवल व्यवहार की। ठाकुरजी की आरती तो वह केवल श्रद्धा की भेंट देकर ले सकता था; लेकिन मर्यादा कैसे तोड़े, सबकी आँखों में हेठा कैसे बने।

सहसा वह उठ बैठा। क्यों मर्यादा की गुलामी करे। मर्यादा के पीछे आरती का पुण्य क्यों छोड़े। लोग हँसेंगे। हँस लें। उसे परवा नहीं है। भगवान् उसे कुकर्म से बचाये रखें, और वह कुछ नहीं चाहता।

वह ठाकुर के घर की ओर चल पड़ा।

१५

मिर्ज़ा ख़ुर्शेद का हाता क्लब भी है, कचहरी भी, अखाड़ा भी। दिन-भर जमघट लगा रहता है। मुहल्ले में अखाड़े के लिए कहीं जगह न मिलती थी। मिर्ज़ा ने एक छप्पर डलवाकर अखाड़ा बनवा दिया है। वहाँ नित्य सौ-पचास लड़न्तिये आ जुटते हैं। मिर्ज़ाजी भी उनके साथ ज़ोर करते हैं। मुहल्ले की पंचायतें भी यहीं होती हैं। मियाँ-बीबी और सास-बहू और भाई-भाई के झगड़े-टण्टे यहीं चुकाये जाते हैं। मुहल्ले के सामाजिक जीवन का यही केन्द्र है और राजनीतिक आन्दोलन का भी। आये दिन सभाएँ होती रहती हैं। यहीं स्वयंसेवक टिकते हैं, यहीं उनके प्रोग्राम बनते हैं, यहीं से नगर का राजनीतिक सचालन होता है। पिछले जलसे में मालती नगर-कांग्रेस-कमेटी की सभानेत्री चुन ली गई है। तब से इस स्थान की रौनक़ और बढ़ गई है।

गोबर को यहाँ रहते साल-भर हो गया। अब वह सीधा-साधा ग्रामीण युवक नहीं है। उसने बहुत कुछ दुनिया देख ली और संसार का रङ्ग-ढङ्ग भी कुछ-कुछ समझने लगा है। मूल में वह अब भी देहाती है, पैसे को दाँत से पकड़ता है, स्वार्थ को कभी नहीं छोड़ता, और परिश्रम से जो नहीं चुराता, न कभी हिम्मत हारता है; लेकिन शहर की हवा भी उसे लग गई है। उसने पहले महीने तो केवल मजूरी की और आध पेट खाकर थोड़े-से रुपये बचा लिये। फिर वह कचालू और मटर और दही-बड़े के खोंचे लगाने लगा। इधर ज़्यादा लाभ देखा तो नौकरी छोड़ दी। गर्मियों में शर्बत और बरफ़ की दूकान भी खोल दी। लेन-देन में खरा था। इसलिए उसको

साख जम गई। जाड़े आये, तो उसने शर्बत की दूकान उठा दी और गर्म चाय पिलाने लगा। अब उसकी रोज़ाना आमदनी ढाई-तीन रुपये से कम नहीं। उसने अंगरेज़ी फ़ैशन के बाल कटवा लिये हैं, महीन धोती और पम्प-शू पहनता है, एक लाल ऊनी चादर खरीद ली है और पान-सिगरेट का शौक़ीन हो गया है। सभाओं में आने-जाने से उसे कुछ कुछ राजनीतिक ज्ञान भी हो चला है। राष्ट्र और वर्ग का अर्थ समझने लगा है। सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा और लोक-निन्दा का भय अब उसमें बहुत कम रह गया है। आये दिन की पचायतों ने उसे निस्संकोच बना दिया है। जिस बात के पीछे वह यहाँ घर से दूर, मुंह छिपाये पड़ा हुआ है, उसी तरह की, बल्कि उससे भी कहीं निन्दास्पद बातें यहाँ नित्य हुआ करती हैं, और कोई कहीं भागता नहीं। फिर वही क्यों इतना डरे और मुँह चुराये?

इतने दिनों में उसने एक पैसा भी घर नहीं भेजा। वह माता-पिता को रुपये-पैसे के मामले में इतना चतुर नहीं समझता। वे लोग तो रुपये पाते ही आकाश में उड़ने लगेंगे। दादा को तुरन्त गया करने की और अम्माँ को गहने बनवाने की धुन सवार हो जायगी। ऐसे व्यर्थ के कामों के लिए उसके पास रुपये नहीं हैं। अब वह छोटा-मोटा महाजन है। पड़ोस के इक्केवालों, गाड़ीवालों और धोबियों को सूद पर रुपये उधार देता है। इस दस-ग्यारह महीने में ही उसने अपनी मेहनत और किफ़ायत और पुरुषार्थ से अपना स्थान बना लिया है और अब झुनिया को यहीं लाकर रखने की बात सोच रहा है।

तीसरे पहर का समय है। वह सड़क के नल पर नहाकर आया है और शाम के लिए आलू उबाल रहा है कि मिर्ज़ा ख़ुर्शेद आकर द्वार पर खड़े हो गये। गोबर अब उनका नौकर नहीं है, पर अदब उसी तरह करता है और उनके लिए जान देने को तैयार रहता है। द्वार पर आकर पूछा—क्या हुकुम है सरकार?

मिर्ज़ा ने खड़े-खड़े कहा—तुम्हारे पास कुछ रुपये हों, तो दे दो। आज तीन दिन से बोतल खाली पड़ी हुई है, जी बहुत बेचैन हो रहा है।

गोबर ने इसके पहले भी दो-तीन बार मिर्ज़ाजी को रुपये दिये थे; पर अब तक वसूल न कर सका था। तक़ाज़ा करते डरता था और मिर्ज़ाजी रुपये लेकर देना न जानते थे। उनके हाथ में रुपये टिकते ही न थे। इधर आये, उधर गायब। यह तो न कह सका, मैं रुपये न दूँगा, या मेरे पास रुपये नहीं है, शराब की निन्दा करने

लगा—आप इसे छोड़ क्यों नहीं देते सरकार, क्या इसके पीने से कुछ फ़ायदा होता है ?

मिर्ज़ाजी ने कोठरी के अन्दर खाट पर बैठते हुए कहा—तुम समझते हो, मैं छोड़ना नहीं चाहता और शौक़ से पीता हूँ। मैं इसके बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकता। तुम अपने रुपयों के लिए न डरो, मैं एक-एक कौड़ी अदा कर दूँगा।

गोबर अविचलित रहा। मैं सच कहता हूँ मालिक, मेरे पास इस समय रुपये होते तो आपसे इन्कार करता ?

'दो रुपये भी नहीं दे सकते ?'

'इस समय तो नहीं हैं।'

'मेरी अँगूठी गिरो रख लो।'

गोबर का मन ललचा उठा ; मगर बात कैसे बदले।

बोला—यह आप क्या कहते हैं मालिक, रुपये होते तो आपको दे देता, अँगूठी की कौन बात थी।

मिर्ज़ा ने अपने स्वर में बड़ा दीन आग्रह भरकर कहा—मैं फिर तुमसे कभी न माँगूँगा गोबर! मुझसे खड़ा नहीं हुआ जा रहा है। इस शराब की बदौलत मैंने लाखों की हैसियत बिगाड़ दी और भिखारी हो गया। अब मुझे भी ज़िद पड़ गई है, कि चाहे भीख ही माँगनी पड़े, इसे छोड़ूँगा नहीं।

जब गोबर ने अबकी भी इनकार किया, तो मिर्ज़ा साहब निराश होकर चले गये। शहर में उनके हज़ारों मिलनेवाले थे। कितने ही उनकी बदौलत बन गये थे। कितनों ही को गाढ़े समय पर मदद की थी ; पर ऐसों से वह मिलना भी पसन्द न करते थे, उन्हें ऐसे हज़ारों लटके मालूम थे, जिनसे वह समय-समय पर रुपयों के ढेर लगा लेते थे ; पर पैसे को उनकी निगाह में कोई क़द्र न थी। उनके हाथ में रुपये जैसे काटते थे। किसी न किसी बहाने उड़ाकर ही उनका चित्त शान्त होता था।

गोबर आलू छीलने लगा। साल-भर के अन्दर ही वह इतना काइयाँ हो गया था और पैसे जोड़ने में इतना कुशल कि अचरज होता था। जिस कोठरी में वह रहता है, वह मिर्ज़ा साहब ने दी है। इस कोठरी और बरामदे का किराया बड़ी आसानी से पाँच रुपया मिल सकता है। गोबर लगभग साल-भर से इसमें रहता है;

लेकिन मिर्ज़ा ने न कभी किराया माँगा न उसने दिया। उन्हें शायद यह खयाल भी न था कि इस कोठरी का कुछ किराया भी मिल सकता है।

थोड़ी देर में एक इक्केवाला रुपये माँगने आया। अलादीन नाम था, सिर घुटा हुआ, खिचड़ी डाढ़ी, और काना! उसकी लड़की विदा हो रही थी। पाँच रुपये की उसे बड़ी जरूरत थी। गोबर ने एक आना रुपया सूद पर रुपये दे दिये।

अलादीन ने धन्यवाद देते हुए कहा—भैया, अब बाल बच्चों को बुला लो। कब तक हाथ से ठोंकते रहोगे।

गोबर ने शहर के खर्च का रोना रोया—थोड़ी आमदनी में गृहस्थी कैसे चलेगी।

अलादीन बीड़ी जलाता हुआ बोला—खरच अल्लाह देगा भैया! सोचो, कितना आराम मिलेगा। मैं तो कहता हूँ, जितना तुम अकेले खरच करते हो, उसी में गृहस्थी चल जायगी। औरत के हाथ में बड़ी बरकत होती है। खुदाक़सम, जब मैं अकेला यहाँ रहता था, तो चाहे कितना ही कमाऊँ, खा-पी सब बराबर। बीड़ी-तमाखू को भी पैसा न रहता। उस पर हैरानी। थके-माँदे आओ, तो घोड़े को खिलाओ और टहलाओ। फिर नानबाई कि दुकान पर दौड़ो। नाक में दम आ गया। जब से घरवाली आ गई है, उसी कमाई में उसको रोटियाँ भी निकल आती हैं और आराम भी मिलता है। आखिर आदमी आराम के लिए ही तो कमाता है। जब जान खपाकर भी आराम न मिला, तो ज़िन्दगी ही गारत हो गई। मैं तो कहता हूँ, तुम्हारी कमाई बढ़ जायगी भैया! जितनी देर में आलू और मटर उबालते हो, उतनी देर में दो-चार प्याले चाय बेच लोगे। अब चाय बारहों मास चलती है। रात को लेटोगे, तो घरवाली पाँव दबावेगी। सारी थकन मिट जायगी।

यह बात गोबर के मन में बैठ गई। जी उचाट हो गया। अब तो वह झुनिया को लाकर ही रहेगा। आलू चूल्हे पर रह गये, और उसने घर चलने की तैयारी कर दी; मगर याद आया कि होली आ रही है; इसलिए होली का सामान भी लेता चले। कृपण लोगों में उत्सवों पर दिल खोलकर खर्च करने की जो एक प्रवृत्ति होती है वह उसमें भी सजग हो गई। आखिर इसी दिन के लिए तो कौड़ी-कौड़ी जोड़ रहा था। वह माँ, बहनों और झुनिया सबके लिए एक-एक जोड़ी साड़ी ले जायगा। होरी के लिए एक धोती और एक चादर। सोना के लिए तेल की एक शीशी ले जायगा, और एक जोड़ा चप्पल। रूपा के लिए जापानी गुड़िया, और झुनिया के लिए

एक पेटार जिसमें तेल, सिन्दूर और आईना होगा। बच्चे के लिए टोप और फ्राक जो बाज़ार में बना-बनाया मिलता है। उसने रुपये निकाले और बाज़ार चला। दोपहर तक सारी चीज़ें आ गईं। बिस्तर भी बँध गया; मुहल्लेवालों को खबर हो गई, गोबर घर जा रहा है। कई मर्द-औरतें उसे बिदा करने आईं। गोबर ने उन्हें अपना घर सौंपते हुए कहा—तुम्हीं लोगों पर घर छोड़े जाता हूँ। भगवान् ने चाहा तो होली के दूसरे दिन लौटूँगा।

एक युवती ने मुस्कराकर कहा—मेहरिया को बिना लिये न आना, नहीं घर में न घुसने पाओगे।

दूसरी प्रौढ़ा ने शिक्षा दी—हाँ, और क्या, बहुत दिनों तक चूल्हा फूँक चुके। ठिकाने से रोटी तो मिलेगी।

गोबर ने सबको राम राम किया। हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे, सभी में मित्र-भाव था, सब एक-दूसरे के दुःख-दर्द के साथी। रोज़ा रखनेवाले रोज़ा रखते थे, एकादशी रखनेवाले एकादशी। कभी-कभी विनोद-भाव से एक-दूसरे पर छींटें भी उड़ा लेते थे। गोबर अलादीन की नमाज़ को उठा-बैठी कहता, अलादीन पीपल के नीचे स्थापित सैकड़ों छोटे-बड़े शिव-लिंगों को बटखरे बनाता; लेकिन सांप्रदायिक द्वेष का नाम भी न था। गोबर घर जा रहा है। सब उसे हँसी-खुशी बिदा करना चाहते हैं।

इतने में भूरे एक्का लेकर आ गया। अभी दिन-भर का धावा मारकर आया था। खबर मिली, गोबर घर जा रहा है। वैसे ही एक्का इधर फेर दिया। घोड़े ने आपत्ति की। उसे कई चाबुक लगाये। गोबर ने एक्के पर सामान रखा, एक्का बढ़ा, पहुँचाने-वाले गली के मोड़ तक पहुँचाने आये, तब गोबर ने सबको राम-राम किया और एक्के पर बैठ गया।

सड़क पर एक्का सरपट दौड़ा जा रहा था। गोबर घर जाने की ख़ुशी में मस्त था। भूरे उसे घर पहुँचाने की ख़ुशी में मस्त था। और घोड़ा था पानीदार, उड़ा चला जा रहा था। बात की बात में स्टेशन आ गया।

गोबर ने प्रसन्न होकर एक रुपया कमर से निकालकर भूरे की तरफ़ बढ़ाकर कहा—लो, घरवाली के लिए मिठाई लेते जाना।

भूरे ने कृतज्ञता-भरे तिरस्कार से उसकी ओर देखा—तुम मुझे ग़ैर समझते

हो भैया! एक दिन ज़रा एक्के पर बैठ गये, तो मैं तुमसे इनाम लूँगा। जहाँ तुम्हारा पसीना गिरे, वहाँ ख़ून गिराने को तैयार हूँ। इतना छोटा दिल नहीं पाया है। और ले भी लूँ, तो घरवाली मुझे जीता छोड़ेगी!

गोबर ने फिर कुछ न कहा। लज्जित होकर अपना असबाब उतारा और टिकट लेने चल दिया।

१६

फागुन अपनी झोली में नव-जीवन की विभूति लेकर आ पहुँचा था। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर की सुगन्ध बाँट रहे थे, और कोयल आम की डालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त दान कर रही थी।

गाँवों में ऊख की बोआई लग गई थी। अभी धूप नहीं निकली; पर होरी खेत में पहुँच गया है। धनिया, सोना, रूपा तीनों तलैया से ऊख के भीगे हुए गट्ठे निकाल-निकालकर खेत में ला रही हैं, और होरी गँड़ासे से ऊख के टुकड़े कर रहा है। अब वह दातादीन की मजूरी करने लगा है। किसान नहीं, मजूर है। दातादीन से अब उसका पुरोहित-जजमान का नाता नहीं, मालिक-मजूर का नाता है।

दातादीन ने आकर डाँटा—हाथ और फुरती से चलाओ होरी! इस तरह तो तुम दिन-भर में न काट सकोगे।

होरी ने आहत अभिमान के साथ कहा—चला ही तो रहा हूँ, महाजन, बैठा तो नहीं हूँ,

दातादीन मजूरों से रगड़कर काम लेते थे; इसी लिए उनके यहाँ कोई मजूर टिकता न था। होरी उनका स्वभाव जानता था; पर जाता कहाँ।

पण्डित उसके सामने खड़े होकर बोले—चलाने-चलाने में भेद है। एक चलाना वह है कि घड़ी-भर में काम तमाम, दूसरा चलाना वह है कि दिन-भर में भी एक बोझ ऊख न कटे।

होरी ने विष का घूँट पीकर और ज़ोर से हाथ चलाना शुरू किया, इधर महीनों से उसे भर-पेट भोजन न मिलता था। प्रायः एक जून तो चबैने पर ही काटता था, दूसरे जून भी कभी आधा पेट भोजन मिला, कभी कड़ाका हो गया। कितना चाहता था कि हाथ और जल्दी-जल्दी उठे; मगर हाथ जवाब दे रहा था। उस पर दातादीन

सिर पर सवार थे। क्षण-भर दम ले लेने पाता, तो ताज़ा हो जाता ; लेकिन दम कैसे ले, घुड़कियाँ पड़ने का भय था।

धनिया और तीनों लड़कियाँ ऊख के गट्‌ठे लिये गीली साड़ियों से लथपथ, कीचड़ में सनी हुई आईं और गट्‌ठे पटककर दम मारने लगीं, कि दातादीन ने डाँट बताई—यहाँ तमाशा क्या देखती है धनिया! जा अपना काम कर। पैसे सेंत में नहीं आते। पहर-भर में तू एक खेप लाई है। इस हिसाब से तो दिन-भर में भी ऊख न ढुल पायगी।

धनिया ने त्योरी बदलकर कहा—क्या ज़रा दम भी न लेने दोगे महाराज! हम भी तो आदमी हैं। तुम्हारी मजूरी करने से बैल नहीं हो गये। जरा मूँड़ पर एक गट्ठा लादकर लाओ, तो हाल मालूम हो।

दातादीन बिगड़ उठे—पैसे देते हैं काम करने के लिए, दम मारने के लिए नहीं। दम लेना है तो घर जाकर दम लो।

धनिया कुछ कहने ही जा रही थी कि होरी ने फटकार बताई—तू जाती क्यों नहीं धनिया? क्यों हुज्जत कर रही है?

धनिया ने बोझा उठाते हुए कहा—जा तो रही हूँ ; लेकिन चलते हुए बैल को आँगी न देना चाहिए।

दातादीन ने लाल आँखें निकाल लीं—जान पड़ता है, अभी मिजाज ठण्डा नहीं हुआ। जभी दाने-दाने को मोहताज हो।

धनिया भला क्यों चुप रहने लगी थी—तुम्हारे द्वार पर भीख माँगने तो नहीं जाती!

दातादीन ने पैने स्वर में कहा—अगर यही हाल है, तो भीख भी माँगोगी।

धनिया के पास जवाब तैयार था ; पर सोना उसे खींचकर तलैया की ओर ले गई, नहीं बात बढ़ जाती ; लेकिन आवाज़ की पहुँच के बाहर जाकर उसने दिल की जलन निकाली—भीख माँगो तुम, जो भिखमंगों की जात हो। हम तो मजूर ठहरे, जहाँ काम करेंगे, वहीं चार पैसे पायेंगे।

सोना ने उसका तिरस्कार किया—अम्माँ, जाने भी दो। तुम तो समय नहीं देखतीं, बात-बात पर लड़ने बैठ जाती हो।

होरी उन्मत्तों की भाँति सिर से ऊपर गँड़ासा उठा-उठाकर ऊख के टुकड़ों के

ढेर करता जाता था। उसके भीतर जैसे आग लगी हुई थी। उसमें अलौकिक शक्ति आ गई थी। उसमें जो पीढ़ियों का संचित पानी था, वह इस समय जैसे भाप बनकर उसे यन्त्र की-सी अन्ध-शक्ति प्रदान कर रहा था। उसकी आँखों में अँधेरा छाने लगा। सिर में फिरकी-सी चल रही थी। फिर भी उसके हाथ यन्त्र की गति से, बिना थके, बिना रुके उठ रहे थे। उसकी देह से पसीने की धार निकल रही थी, मुँह से फिचकुर छूट रहा था, और सिर में धम-धम का शब्द हो रहा था; पर उस पर जैसे कोई भूत सवार हो गया हो।

सहसा उसकी आँखों में निविड़ अन्धकार छा गया। मालूम हुआ वह ज़मीन में धँसा जा रहा है। उसने सँभलने की चेष्टा से शून्य हाथ फैला दिये, और अचेत हो गया। गँड़ासा हाथ से छूट गया और वह औंधे मुँह ज़मीन पर पड़ गया।

उसी वक्त धनिया ऊख का गट्ठा लिये आई। देखा तो कई आदमी होरी को घेरे खड़े हैं। एक हलवाहा दातादीन से कह रहा था, मालिक, तुम्हें ऐसी बात न कहनी चाहिए, जो आदमी को लग जाय। पानी मरते ही मरते तो मरेगा।

धनिया ऊख का गट्ठा पटककर पागलों की तरह दौड़ी हुई होरी के पास गई, और उसका सिर अपनी जाँघ पर रखकर विलाप करने लगी—तुम मुझे छोड़कर कहाँ जाते हो। अरी सोना, दौड़कर पानी ला और जाकर सोभा से कह दे, दादा बेहाल हैं। हाय भगवान्! अब मैं कहाँ जाऊँ। अब किसकी होकर रहूँगी, कौन मुझे धनिया कहकर पुकारेगा...

लाला पटेश्वरी भागे हुए आये और स्नेह-भरी कठोरता से बोले—क्या करती है धनिया, होश सँभाल। होरी को कुछ नहीं हुआ है। गर्मी से अचेत हो गये हैं। अभी होश आया जाता है। दिल इतना कच्चा कर लेगी, तो कैसे काम चलेगा।

धनिया ने पटेश्वरी के पाँव पकड़ लिये और रोती हुई बोली—क्या करूँ लाला, जी नहीं मानता। भगवान् ने सब कुछ हर लिया। मैं सबर कर गई। अब सबर नहीं होता। हाय रे मेरा हीरा!

सोना पानी लाई। पटेश्वरी ने होरी के मुँह पर पानी के छींटे दिये। कई आदमी अपनी-अपनी अँगोछियों से हवा कर रहे थे। होरी की देह ठण्डी पड़ गई थी। पटेश्वरी को भी चिन्ता हुई; पर धनिया को वह बराबर साहस देते जाते थे।

धनिया अधीर होकर बोली—ऐसा कभी नहीं हुआ था लाला, कभी नहीं!

पटेश्वरी ने पूछा—रात कुछ खाया था ?

धनिया बोली—हाँ, रोटियाँ पकाई थीं ; लेकिन आजकल हमारे ऊपर जो बीत रही है, वह क्या तुमसे छिपा है ? महीनों से भर-पेट रोटी नसीब नहीं हुई। कितना समझाती हूँ, जान रखकर काम करो ; लेकिन आराम तो हमारे भाग्य में लिखा ही नहीं।

सहसा होरी ने आँखें खोल दीं और उड़ती हुई नज़रों से इधर-उधर ताका।

धनिया जैसे जी उठी। विह्वल होकर उसके गले से लिपटकर बोली—अब कैसा जी है तुम्हारा ? मेरे तो परान नहीं में समा गये थे।

होरी ने कातर स्वर में कहा—अच्छा हूँ। न जाने कैसा जी हो गया था।

धनिया ने स्नेह में डूबी भर्त्सना से कहा—देह में दम तो है नहीं, काम करते हो जान देकर। लड़कों का भाग था, नहीं तुम तो ले ही डूबे थे।

पटेश्वरी ने हँसकर कहा—धनिया तो रो-पीट रही थी।

होरी ने आतुरता से पूछा—सचमुच, तू रोती थी धनिया ?

धनिया ने पटेश्वरी को पीछे ढकेलकर कहा—इन्हें बकने दो तुम। पूछो, यह क्यों कागद छोड़कर घर से दौड़े आये थे !

पटेश्वरी ने चिढ़ाया—तुम्हें हीरा-हीरा कहकर रोती थी। अब लाज के मारे मुकरती है। छाती पीट रही थी।

होरी ने धनिया को सजल नेत्रों से देखा—पगली है और क्या। अब न जाने कौन-सा सुख देखने के लिए मुझे जिलाये रखना चाहती है।

दो आदमी होरी को टिकाकर घर लाये और चारपाई पर लिटा दिया। दातादीन तो कुछ कुढ़ रहे थे कि बोआई में देर हुई जाती है ; पर मातादीन इतना निर्दयी न था। दौड़कर घर से गर्म दूध लाया ; और एक शीशी में गुलाबजल भी लेता आया और दूध पीकर होरी में जैसे जान आ गई।

उसी वक्त गोबर एक मजूर के सिर पर अपना सामान लादे आता दिखाई दिया।

गाँव के कुत्ते पहले तो भूँकते हुए उसकी तरफ़ दौड़े। फिर दुम हिलाने लगे। रूपा ने कहा—भैया आये, भैया आये, और तालियाँ बजाती हुई दौड़ी। सोना भी दो-तीन क़दम आगे बढ़ी ; पर अपने उछाह को भीतर ही दबा गई। एक साल में

उसका यौवन कुछ और संकोचशील हो गया था। झुनिया भी घूँघट निकाले द्वार पर खड़ी हो गई।

गोबर ने माँ-बाप के चरण छुए और रूपा को गोद में उठाकर प्यार किया। धनिया ने उसे आशीर्वाद दिया और उसका सिर अपनी छाती से लगाकर मानों अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गई। उसका हृदय गर्व से उमड़ा पड़ता था। आज तो वह रानी है। इस फटे-हाल में भी रानी है। कोई उसकी आँखें देखे, उसका मुख देखे, उसका हृदय देखे, उसकी चाल देखे। रानी भी लजा जायगी। गोबर कितना बड़ा हो गया है और पहन-ओढ़कर कैसा भलामानस लगता है। धनिया के मन में कभी अमंगल की शंका न हुई थी। उसका मन कहता था, गोबर कुशल से है और प्रसन्न है। आज उसे आँखों देखकर मानों उसके जीवन के धूल धक्कड़ में गुम हुआ रत्न मिल गया है; मगर होरी ने मुँह फेर लिया था।

गोबर ने पूछा—दादा को क्या हुआ है अम्माँ?

धनिया घर का हाल कहकर उसे दुखी न करना चाहती थी। बोली—कुछ नहीं है बेटा, ज़रा सिर में दर्द है। चलो, कपड़े उतारो, हाथ-मुँह धोओ। कहाँ थे तुम इतने दिन? भला इस तरह कोई घर से भागता है? और कभी एक चिट्ठी तक न भेजी। आज साल-भर के बाद जाके सुधि ली है। तुम्हारी राह देखते-देखते आँखें फूट गईं। यही आसा बँधी रहती थी कि कब वह दिन आयेगा और कब तुम्हें देखूँगी। कोई कहता था, मिरच भाग गया, कोई डमरा टापू बताता था। सुन-सुनकर जान सूखी जाती थी। कहाँ रहे इतने दिन?

गोबर ने शर्माते हुए कहा—कहीं दूर नहीं गया था अम्माँ, यहीं लखनऊ में तो था।

'और इतने नियरे रहकर भी कभी एक चिट्ठी न लिखी!'

उधर सोना और रूपा भीतर गोबर का सामान खोलकर चीज़ का बाँट-बखरा करने में लगी हुई थीं; लेकिन झुनिया दूर खड़ी थी। उसके मुख पर आज मान का शोख रंग झलक रहा है। गोबर ने उसके साथ जो व्यवहार किया है, आज वह उसका बदला लेगी। असामी को देखकर महाजन उससे वह रुपये वसूल करने को भी व्याकुल हो रहा है, जो उसने बट्टे खाते में डाल दिये थे। बच्चा उन चीज़ों की ओर लपक रहा था और चाहता था, सब-का-सब एक साथ मुँह में डाल ले; पर झुनिया उसे गोद से उतरने न देती थी।

सोना बोली—भैया तुम्हारे लिए आईना-कंघी लाये हैं भाभी !

झुनिया ने उपेक्षा-भाव से कहा—मुझे ऐना-कंघी न चाहिए। अपने पास रखे रहें।

रूपा ने बच्चे की चमकीली टोपी निकाली—ओ हो ! यह तो चुन्नू की टोपी है ! और उसे बच्चे के सिर पर रख दिया।

झुनिया ने टोपी उतारकर फेंक दी। और सहसा गोबर को अन्दर आते देखकर वह बालक को लिये अपनी कोठरी में चली गई। गोबर ने देखा, सारा सामान खुला पड़ा है। उसका जी तो चाहता है, पहले झुनिया से मिलकर अपना अपराध क्षमा कराये ; लेकिन अन्दर जाने का साहस नहीं होता। वहीं बैठ गया और चीज़ें निकाल-निकाल हरएक को देने लगा, मगर रूपा इसलिए फूल गई कि उसके लिए चप्पल क्यों नहीं आये, और सोना उसे चिढ़ाने लगी, तू क्या करेगी चप्पल लेकर, अपनी गुड़िया से खेल। हम तो तेरी गुड़िया देखकर नहीं रोते, तू मेरा चप्पल देखकर क्यों रोती है ? मिठाई बाँटने की ज़िम्मेदारी धनिया ने अपने ऊपर ली। इतने दिनों के बाद लड़का कुशल से घर आया है। वह गाँव-भर में बैना बँटवायेगी। एक गुलाबजामुन रूपा के लिए ऊँट के मुँह में जीरे के समान था। वह चाहती थी, हाँड़ी उसके सामने रख दी जाय, वह कूद-कूद खाय।

अब सन्दूक खुला और उसमें से साड़ियाँ निकलने लगीं। सभी किनारदार थीं, जैसी पटेश्वरी लाला के घर में पहिनी जाती हैं ; मगर हैं बड़ी हलकी। ऐसी महीन साड़ियाँ भला कै दिन चलेंगी। बड़े आदमी जितनी महीन साड़ियाँ चाहें पहनें। उनकी मेह-रियों को बैठने और सोने के सिवा और कौन काम है। यहाँ तो खेत-खलिहान सभी कुछ है। अच्छा ! होरी के लिए धोती के अतिरिक्त एक दुपट्टा भी है।

धनिया प्रसन्न होकर बोली—यह तुमने बड़ा अच्छा किया बेटा ! इनका दुपट्टा बिलकुल तार-तार हो गया था।

गोबर को इतनी देर में घर की परिस्थिति का अन्दाज़ हो गया था। धनिया की साड़ी में कई पैवंद लगे हुए थे। सोना की साड़ी सिर पर फटी हुई थी और उसमें से उसके बाल दिखाई दे रहे थे। रूपा की धोती में चारों तरफ़ झालरें-सी लटक रही थीं। सभी के चेहरे रूखे, किसी की देह पर चिकनाहट नहीं। जिधर देखो, विप-न्नता का साम्राज्य था।

लड़कियाँ तो साड़ियों में मग्न थीं, धनिया को लड़के के लिए भोजन की चिन्ता

हुई। घर में थोड़ा-सा जौ का आटा साँझ के लिए संचकर रखा हुआ था। इस वक्त तो चबैने पर कटती थी ; मगर गोबर अब वह गोबर थोड़े ही है। उससे जौ का आटा खाया भी जायगा। परदेस में न जाने क्या-क्या खाता-पीता रहा होगा। जाकर दुलारी की दूकान से गेहूँ का आटा, चावल, घी उधार लाई। इधर महीनों से सहुआइन एक पैसे की चीज़ भी उधार न देती थी ; पर आज उसने एक बार भी न पूछा, पैसे कब दोगी।

उसने पूछा—गोबर तो ख़ूब कमाके आया है न ?

धनिया बोली—अभी तो कुछ नहीं खुला दीदी! अभी मैंने भी कुछ कहना उचित न समझा। हाँ, सबके लिए किनारदार साड़ियाँ लाया है। तुम्हारे आसिरबाद से कुसल से लौट आया, मेरे लिए तो यही बहुत है।

दुलारी ने असीस दिया—भगवान् करें, कुसल से रहे। माँ-बाप को और क्या चाहिए। लड़का समझदार है। छोकरों की तरह उड़ाऊ नहीं है। हमारे रुपये अभी न मिलें, तो ब्याज तो दे दो। दिन-दिन बोझ बढ़ ही तो रहा है।

इधर सोना चुन्नू को उसका फ्राक और टोप और जूता पहनाकर राजा बना रही थी। बालक इन चीज़ों को पहनने से ज़्यादा हाथ में लेकर खेलना पसन्द करता था। अन्दर गोबर और झुनिया में मान-मनौवल का अभिनय हो रहा था।

झुनिया ने तिरस्कार-भरी आँखों से देखकर कहा—मुझे लाकर यहाँ बैठा दिया ; आप परदेस की राह ली। फिर न खोज, न खबर कि मरती है या जीती है। साल-भर के बाद अब जाकर तुम्हारी नींद टूटी है। कितने बड़े कपटी हो तुम! मैं तो सोचती हूँ कि तुम मेरे पीछे-पीछे आ रहे हो और आप उड़े, तो साल-भर के बाद लौटे। मरदों का विस्वास ही क्या, कहीं कोई और ताक ली होगी। सोचा होगा, एक बाहर के लिए भी हो जाय।

गोबर ने सफाई दी—झुनिया, मैं भगवान् को साच्छी देकर कहता हूँ जो मैंने कभी किसी की ओर ताका भी हो। लाज और डर के मारे घर से भागा जरूर ; मगर तेरी याद एक छन के लिए भी मन से न उतरती थी। अब तो मैंने तय कर लिया है कि तुझे भी लेता जाऊँगा ; इसी लिए आया हूँ। तेरे घरवाले तो बहुत बिगड़े होंगे ?

'दादा तो मेरी जान लेने पर उतारू थे।'

'सच !'

'तीनों जने यहाँ चढ आये थे। अम्माँ ने ऐसा डाँटा कि मुँह लेकर रह गये। हाँ, हमारे दोनों बैल खोल ले गये।'

'इतनी बड़ी जबरदस्ती ! और दादा कुछ बोले नहीं ?'

'दादा अकेले किस-किससे लड़ते। गाँववाले तो नहीं ले जाने देते थे; लेकिन दादा ही भलमनसी में आ गये, तो और लोग क्या करते।'

'तो आजकल खेती-बारी कैसे हो रही है ?'

'खेती-बारी सब टूट गई। थोड़ी-सी पण्डित महाराज के साझे में है। ऊख बोई ही नहीं गई।'

गोबर की कमर में इस समय दो सौ रुपये थे। उसकी गर्मी यों भी कम न थी। यह हाल सुनकर तो उसके बदन में आग ही लग गई।

बोला—तो फिर पहले मैं उन्हीं से जाकर समझता हूँ। उनकी यह मजाल कि मेरे द्वार पर से बैल खोल ले जायँ ! यह डाका है, खुला हुआ डाका। तीन-तीन साल को चले जायँगे तीनों। यों न देंगे, तो अदालत से लूँगा। सारा घमण्ड तोड़ दूँगा।

वह उसी आवेश में चला था कि झुनिया ने पकड़ लिया और बोली—तो चले जाना, अभी ऐसी क्या जल्दी है। कुछ आराम कर लो, कुछ खा-पी लो। सारा दिन तो पड़ा है। यहाँ बड़ी-बड़ी पचायत हुई। पंचायत ने अस्सी रुपये डाँड़ लगाये। तीस मन अनाज ऊपर। उसी में तो और तबाही आ गई।

सोना बालक को कपड़े-जूते पहनाकर लाई। कपड़े पहनकर वह जैसे सचमुच राजा हो गया था। गोबर ने उसे गोद में ले लिया; पर इस समय बालक के प्यार में उसे आनन्द न आया। उसका रक्त खौल रहा था और कमर के रुपये आँच और तेज़ कर रहे थे। वह एक-एक से समझेगा। पंचों को उस पर डाँड़ लगाने का अधिकार क्या है ? कौन होता है कोई उसके बीच में बोलनेवाला ? उसने एक औरत रख ली, तो पचों के बाप का क्या बिगड़ा; अगर इसी बात पर वह फौजदारी में दावा कर दे, तो लोगों के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ जायँ। सारी गृहस्थी तहस-नहस हो गई। क्या समझ लिया है उसे इन लोगों ने !

बच्चा उसकी गोद में जरा-सा मुस्कराया, फिर ज़ोर से चीख उठा जैसे कोई डरावनी चीज़ देख ली हो।

झुनिया ने बच्चे को उसकी गोद से ले लिया और बोली—अब जाकर नहा-धो लो। किस सोच में पड़ गये। यहाँ सबसे लड़ने लगो, तो एक दिन निबाह न हो। जिसके पास पैसे हैं, वही बड़ा आदमी है, वही भला आदमी है। पैसे न हों, तो उस पर सभी रोब जमाते हैं।

'मेरा गधापन था कि घर से भागा। नहीं देखता, कैसे कोई एक धेला छीन लेता है।'

'सहर की हवा खा आये हो, तब ये बातें सूझने लगी हैं। नहीं, घर से भागते ही क्यों!'

'यही जी चाहता है कि लाठी उठाऊँ और पटेसुरी, दातादीन, झिंगुरी, सब सालों को पीटकर गिरा दूँ, और उनके पेट से रुपये निकाल लूँ।'

'रुपये की गर्मी चढ़ी हुई है साइत। लाओ निकालो, देखूँ इतने दिन में क्या कमा लाये हो।'

उसने गोबर की कमर में हाथ लगाया। गोबर खड़ा होकर बोला—अभी क्या कमाया, हाँ, अब तुम चलोगी, तो कमाऊँगा। साल-भर तो सहर का रंग-ढंग पहचानने ही में लग गया।

'अम्माँ जाने देंगी, तब तो?'

'अम्माँ क्यों न जाने देंगी। उनसे मतलब?'

'वाह, मैं उनकी राजी बिना कहीं न जाऊँगी। तुम तो छोड़कर चलते बने। और मेरा कौन था यहाँ। वह अगर घर में न घुसने देतीं, तो मैं कहाँ जाती। जब तक जीऊँगी, उनका जस गाऊँगी, और तुम भी क्या परदेस ही करते रहोगे?'

'और यहाँ बैठकर क्या करूँगा। कमाओ और मरो, इसके सिवा यहाँ और क्या रखा है। थोड़ी-सी अकल हो और आदमी काम करने से न डरे, तो वहाँ भूखों नहीं मर सकता। यहाँ तो अकल कुछ काम ही नहीं करती। दादा क्यों मुझसे मुँह फुलाये हुए हैं?'

'अपने भाग बखानो कि मुँह फुलाकर छोड़ देते हैं। तुमने उपद्रव तो इतना बड़ा किया था कि उस क्रोध में पा जाते, तो मुँह लाल कर देते।'

'तो तुम्हें भी ख़ूब गालियाँ देते होंगे?'

'कभी नहीं, भूलकर भी नहीं। अम्माँ तो पहले बिगड़ी थीं; लेकिन दादा ने

तो कभी कुछ नहीं कहा, जब बुलाते हैं, बड़े प्यार से। मेरा सिर भी दुखता है, तो बेचैन हो जाते हैं। अपने बाप को देखते तो मैं इन्हें देवता समझती हूँ। अम्माँ को समझाया करते हैं, बहू को कुछ न कहना। तुम्हारे ऊपर सैकड़ों बार बिगड़ चुके हैं, कि इसे घर में बैठाकर आप न जाने कहाँ निकल गया। आजकल पैसे-पैसे की तंगी है। ऊख के रुपये बाहर ही बाहर उड़ गये। अब तो मजूरी करनी पड़ती है। आज बेचारे खेत में बेहोस हो गये। रोना-पीटना मच गया। तब से पड़े हैं।'

मुँह-हाथ धोकर और खूब बाल बनाकर गोबर गाँव का दिग्विजय करने निकला। दोनों चचाओं के घर जाकर राम-राम कर आया। फिर और मित्रों से मिला। गाँव में कोई विशेष परिवर्तन न था। हाँ, पटेश्वरी की नई बैठक बन गई थी और झिंगुरीसिंह ने दरवाजे पर नया कुआँ खुदवा लिया था। गोबर के मन में विद्रोह और भी ताल ठोंकने लगा। जिससे मिला उसने उसका आदर किया, और युवकों ने तो उसे अपना हीरो बना लिया और उसके साथ लखनऊ जाने को तैयार हो गये। साल ही भर में वह क्या से क्या हो गया था।

सहसा झिंगुरीसिंह अपने कुएँ पर नहाते हुए मिल गये। गोबर निकला; मगर न सलाम किया, न बोला। वह ठाकुर को दिखा देना चाहता था, मैं तुम्हें कुछ नहीं समझता।

झिंगुरीसिंह ने ख़ुद ही पूछा—कब आये गोबर, मजे में तो रहे? कहीं नौकर थे लखनऊ में?

गोबर ने हेकड़ी के साथ कहा—लखनऊ गुलामी करने नहीं गया था। नौकरी है तो गुलामी। मैं व्यापार करता था।

ठाकुर ने कुतूहल-भरी आँखों से उसे सिर से पाँव तक देखा—कितना रोज पैदा करते थे?

गोबर ने छुरी को भाला बनाकर उनके ऊपर चलाया—यही कोई ढाई-तीन रुपये मिल जाते थे। कभी चटक गई तो चार भी मिल गये। इससे बेसी नहीं।

झिंगुरी बहुत नोच खसोट करके भी पचीस-तीस से ज़्यादा न कमा पाते थे। और यह गँवार लौंडा सौ रुपये कमाने लगा। उनका मस्तक नीचा हो गया। अब वह किस दावे से उस पर रोब जमा सकते हैं। वर्ण में वह ज़रूर ऊँचे हैं; लेकिन वर्ण कौन देखता है! उससे स्पर्द्धा करने का यह अवसर नहीं, अब तो उसकी चिरौरी

करके उससे कुछ काम निकाला जा सकता है। बोले—इतनी कमाई कम नहीं है बेटा, जो खरच करते बने। गाँव में तो तीन आने भी नहीं मिलते। भवनिया (उनके जेठे पुत्र का नाम था) को भी कहीं कोई काम दिला दो, तो भेज दूँ। न पढ़े, न लिखे, एक न एक उपद्रव करता रहता है। कहीं मुनीमी खाली हो तो कहना। नहीं साथ ही लेते जाना। तुम्हारा तो मित्र है। तलब थोड़ी हो, कुछ ग़म नहीं, हाँ, चार पैसे की ऊपर की गुंजाइस हो।

गोबर ने अभिमान-भरी हँसी के साथ कहा—यह ऊपरी आमदनी की चाट आदमी को खराब कर देती है ठाकुर; लेकिन हम लोगों की आदत कुछ ऐसी बिगड़ गई है कि जब तक बेईमानी न करें, पेट ही नहीं भरता। लखनऊ में मुनीमी मिल सकती है; लेकिन हरएक महाजन ईमानदार चौकस आदमी चाहता है। मैं भवानी को किसी के गले बाँध तो दूँ; लेकिन पीछे इन्होंने कहीं हाथ लपकाया, तो वह तो मेरी गर्दन पकड़ेगा। संसार में इलम की कदर नहीं है, ईमान की कदर है।

यह तमाचा लगाकर गोबर आगे निकल गया। झिंगुरी मन में ऐंठकर रह गये। लौंडा कितने घमण्ड की बातें करता है, मानों धर्म का अवतार ही तो है।

इसी तरह गोबर ने दातादीन को भी रगड़ा। भोजन करने जा रहे थे। गोबर को देखकर प्रसन्न होकर बोले—मजे में तो रहे गोबर? सुना, वहाँ कोई अच्छी जगह पा गये हो। मातादीन को भी किसी हीले से लगा दो न? भंग पीकर पड़े रहने के सिवा यहाँ और कौन काम है।

गोबर ने बनाया—तुम्हारे घर में किस बात की कमी है महराज, जिस जजमान के द्वार पर जाकर खड़े हो जाओ, कुछ न कुछ मार ही लाओगे। जनम में लो, मरन में लो, सादी में लो, गमी में लो; खेती करते हो, लेन-देन करते हो, दलाली करते हो, किसी से कुछ भूल-चूक हो जाय तो डाँड़ लगाकर उसका घर लूट लेते हो; इतनी कमाई से पेट नहीं भरता? क्या करोगे बहुत-सा धन बटोरकर? कि साथ ले जाने की कोई जुगुत निकाल ली है?

दातादीन ने देखा, गोबर कितना ढिठाई से बोल रहा है; अदब और लिहाज़ जैसे भूल गया। अभी शायद नहीं जानता कि बाप मेरी गुलामी कर रहा है। सच है, छोटी नदी को उमड़ते देर नहीं लगती; मगर चेहरे पर मैल नहीं आने दिया। जैसे

बड़े लोग बालकों से मूँछें उखड़वाकर भी हँसते हैं, उन्होंने भी इस फटकार को हँसी में लिया और विनोद-भाव से बोले—लखनऊ की हवा खाके तू बड़ा चंट हो गया है गोबर ! ला, क्या कमाके लाया है, कुछ निकाल। सच कहता हूँ गोबर, तुम्हारी बहुत याद आती थी। अब तो रहोगे कुछ दिन ?

'हाँ, अभी तो रहूँगा कुछ दिन। उन पंचों पर दावा करना है, जिन्होंने डाँड़ के बहाने मेरे डेढ़ सौ रुपये हजम किये हैं। देखूँ, कौन मेरा हुक्का-पानी बन्द करता है और कौन बिरादरी मुझे जात-बाहर करती है।'

यह धमकी देकर वह आगे बढ़ा। उसकी हेकड़ी ने उसके युवक भक्तों को रोब में डाल दिया था।

एक ने कहा—कर दो नालिश गोबर भैया ! बुड्ढा काला साँप है—जिसके काटे का मन्तर नहीं। तुमने अच्छी डाँट बताई। पटवारी के कान भी जरा गरमा दो। बड़ा मुतफन्नी है दादा ! बाप-बेटे में आग लगा दे, भाई-भाई में आग लगा दे। कारिन्दे से मिलकर असामियों का गला काटता है। अपने खेत पीछे जोतो, पहले उसके खेत जोत दो। अपनी सिंचाई पीछे करो, पहले उसके खेत सींच दो।

गोबर ने मूँछों पर ताव देकर कहा—मुझसे क्या कहते हो भाई, साल-भर में भूल थोड़े ही गया। यहाँ मुझे रहना हो नहीं है, नहीं एक-एक को नचाकर छोड़ता। अबकी होली धूम-धाम से मनाओ और होली का स्वाँग बनाकर इन सबों को खूब भिगो-भिगोकर लगाओ।

होली का प्रोग्राम बनने लगा। खूब भंग घुटे, दूधिया भी, नमकीन भी, और रंगों के साथ कालिख भी बने और मुखियों के मुँह पर कालिख ही पोती जाय। होली में कोई बोल ही क्या सकता है। फिर स्वाँग निकले और पंचों की भद्द उड़ाई जाय। रुपये-पैसे की कोई चिन्ता नहीं। गोबर भाई कमाकर आये हैं।

भोजन करके गोबर भोला से मिलने चला। जब तक अपनी जोड़ी लाकर अपने द्वार पर बाँध न दे, उसे चैन नहीं। वह लड़ने-मरने को तैयार था।

होरी ने कातर स्वर में कहा—राढ़ मत बढ़ाओ बेटा, भोला गोईं ले गये, भगवान् उनका भला करें; लेकिन उनके रुपये तो आते ही थे।

गोबर ने उत्तेजित होकर कहा—दादा, तुम बीच में न बोलो। उनकी गाय पचास की थी। हमारी गोईं डेढ़ सौ में आई थी। तीन साल हमने जोती। फिर भी

सौ की थी हो। वह अपने रुपये के लिए दावा कराते, डिग्री कराते, या जो चाहते करते, हमारे द्वार से जोड़ी क्यों खोल ले गये? और तुम्हें क्या कहूँ। इधर गोईं खो बैठे, उधर डेढ़ सौ रुपये डाँड़ के भरे। यह है गऊ होने का फल। मेरे सामने जोड़ी खोल ले जाते, तो देखता! तीनों को यहीं ज़मीन पर सुला देता। और पंचों से तो बात तक न करता। देखता, कौन मुझे बिरादरी से अलग करता है; लेकिन तुम बैठे ताकते रहे।

होरी ने अपराधी की भाँति सिर झुका लिया; लेकिन धनिया यह अनीति कैसे देख सकती थी। बोली—बेटा, तुम भी तो अन्धेर करते हो। हुक्का-पानी बन्द हो जाता, तो गाँव में निबाह होता? जवान लड़की बैठी है, उसका भी कहीं ठिकान लगाना है कि नहीं। मरने-जीने में आदमी बिरादरी…

गोबर ने बात काटी—हुक्का-पानी सब तो था, बिरादरी में आदर भी था, फिर मेरा ब्याह क्यों नहीं हुआ? बोलो। इसलिए कि घर में रोटी न थी। रुपये हों तो न हुक्का-पानी का काम है, न जात-बिरादरी का। दुनिया पैसे की है, हुक्का-पानी कोई नहीं पूछता।

धनिया तो बच्चे का रोना सुनकर भीतर चली गई और गोबर भी घर से निकला होरी बैठा सोच रहा था, लड़के की अकल जैसे खुल गई है। कैसी बेलाग बात कहता है। उसकी वक्र बुद्धि ने होरी के धर्म और नीति को परास्त कर दिया था

सहसा होरी ने उससे पूछा—मैं भी चला चलूँ?

'मैं लड़ाई करने नहीं जा रहा हूँ दादा, डरो मत। मेरी ओर तो कानून है, मैं क्यों लड़ाई करने लगा।'

'मैं भी चलूँ तो कोई हरज है?'

'हाँ, बड़ा हरज है। तुम बनी बात बिगाड़ दोगे।'

होरी चुप हो गया और गोबर चल दिया।

पाँच मिनट भी न हुए होंगे कि धनिया बच्चे को लिये बाहर निकली औ बोली—क्या गोबर चला गया, अकेले? मैं कहती हूँ, तुम्हें भगवान् कभी बुद्धि देंगे या नहीं। भोला क्या सहज में गोईं देगा? तीनों उस पर टूट पड़ेंगे, बाज की तरह। भगवान् ही कुशल करें। अब किससे कहूँ, दौड़कर गोबर को पकड़ ले। तुमसे तो मैं हार गई।

होरी ने कोने से डण्डा उठाया और गोबर के पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर आकर उसने निगाह दौड़ाई। एक क्षीण-सी रेखा क्षितिज से मिली हुई दिखाई दी। इतनी ही देर में गोबर इतनी दूर कैसे निकल गया। होरी की आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसने क्यों गोबर को रोका नहीं। अगर वह डाँटकर कह देता, भोला के घर मत जाओ, तो गोबर कभी न जाता। और अब उससे दौड़ा भी तो नहीं जाता। वह हारकर वहीं बैठ गया और बोला—उसकी रच्छा करो महावीर स्वामी!

गोबर उस गाँव में पहुँचा, तो देखा, कुछ लोग बरगद के नीचे बैठे जुआ खेल रहे हैं। उसे देखकर लोगों ने समझा, पुलिस का सिपाही है। कौड़ियाँ समेटकर भागे कि सहसा जंगी ने उसे पहचानकर कहा—अरे! यह तो गोबरधन है।

गोबर ने देखा, जंगी पेड़ की आड़ में खड़ा झाँक रहा है। बोला—डरो मत जंगी भैया, मैं हूँ। राम-राम! आज ही आया हूँ। सोचा, चलूँ सबसे मिलता आऊँ, फिर न जाने कब आना हो। मैं तो भैया, तुम्हारे आसिरबाद से बड़े मजे में निकल गया। जिस राजा की नौकरी में हूँ, उसने मुझसे कहा है कि एक-दो आदमी मिल जायँ, तो लेते आना। चौकीदारी के लिए चाहिए। मैंने कहा, सरकार, ऐसे आदमी दूँगा कि चाहे जान चली जाय, मैदान से हटनेवाले नहीं, इच्छा हो तो मेरे साथ चलो। अच्छी जगह है।

जंगी उसका ठाट-बाट देखकर रोब में आ गया। उसे कभी चमरौधे जूते भी मयस्सर न हुए थे। और गोबर चमाचम बूट पहने हुए था। साफ सुथरी, धारीदार कमीज, सँवारे हुए बाल, पूरा बाबू साहब बना हुआ। फटे-हाल गोबर और इस परिष्कृत गोबर में बड़ा अन्तर था। हिंसा-भाव कुछ तो यों ही समय के प्रभाव से शान्त हो गया था और बचा-खुचा अब शान्त हो गया। जुआड़ी था ही, उस पर गाँजे की लत। और घर में बड़ी मुश्किल से पैसे मिलते थे। मुँह में पानी भर आया। बोला—चलूँगा क्यों नहीं, यहाँ पड़ा मक्खी ही तो मार रहा हूँ। के रुपये मिलेंगे?

गोबर ने बड़े आत्मविश्वास से कहा—इसकी कुछ चिन्ता न करो। सब कुछ अपने ही हाथ में है। जो चाहोगे, वह हो जायगा। हमने सोचा, जब घर में ही आदमी है, तो बाहर क्यों जायँ।

जंगी ने उत्सुकता से पूछा—काम क्या करना पड़ेगा?

'काम चाहे चौकीदारी करो, चाहे तगादे पर जाओ। तगादे का काम सबसे अच्छा। असामी से गँठ गये। आकर मालिक से कह दिया, घर पर मिला ही नहीं, चाहो तो रुपये-आठ आने रोज़ बना सकते हो।'

'रहने को जगह भी मिलती है?'

'जगह की कौन कमी। पूरा महल पड़ा है। पानी का नल, बिजली। किसी बात की कमी नहीं है। कामता हैं कि कहीं गये हैं?'

'दूध लेकर गये हैं। मुझे कोई बजार नहीं जाने देता। कहते हैं, तुम तो गाँजा पी जाते हो। मैं अब बहुत कम पीता हूँ भैया, लेकिन दो पैसे रोज तो चाहिए ही। तुम कामता से कुछ न कहना। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।'

'हाँ हाँ, बेखटके चलो। होली के बाद।'

'तो पक्की रही।'

दोनों आदमी बातें करते भोला के द्वार पर आ पहुँचे। भोला बैठे सुतली कात रहे थे। गोबर ने लपककर उनके चरण छुए, और इस वक्त उसका गला सचमुच भर आया। बोला—काका, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई, उसे क्षमा करो।

भोला ने सुतली कातना बन्द कर दिया और पथरीले स्वर में बोला—काम तो तुमने ऐसा ही किया था गोबर, कि तुम्हारा सिर काट लूँ तो भी पाप न लगे; लेकिन अपने द्वार पर आये हो, अब क्या कहूँ। जाओ, जैसा मेरे साथ किया उसकी सजा भगवान् देंगे। कब आये?

गोबर ने ख़ूब नमक-मिर्च लगाकर अपने भाग्योदय का वृत्तान्त कहा, और जंगी को अपने साथ ले जाने की अनुमति माँगी। भोला को जैसे बेमाँगे वरदान मिल गया। जंगी घर पर एक न एक उपद्रव करता रहता था। बाहर चला जायगा, तो चार पैसे पैदा तो करेगा। न किसी को कुछ दे, अपना बोझ तो उठा लेगा।

गोबर ने कहा—नहीं काका, भगवान् ने चाहा और इनसे रहते बना तो साल-दो-साल में आदमी हो जायँगे।

'हाँ, जब इनसे रहते बने।'

'सिर पर आ पड़ती है, तो आदमी आप सँभल जाता है।'

'तो कब तक जाने का विचार है?'

'होली करके चला जाऊँगा। यहाँ खेती-बारी का सिलसिला फिर जमा दूँ, तो निसचिन्त हो जाऊँ।'

'होरी से कहो, अब बैठके राम-राम करें।'

'कहता तो हूँ; लेकिन जब उनसे बैठा जाय।'

'वहाँ किसी बैद से तो तुम्हारी जान-पहचान होगी। खाँसी बहुत दिक कर रही है। हो सके तो कोई दवाई भेज देना।'

'एक नामी बैद तो मेरे पड़ोस ही में रहते हैं। उनसे हाल कहके दवा बनवाकर भेज दूँगा। खाँसी रात को जोर करती है कि दिन को?'

'नहीं बेटा, रात को। आँख नहीं लगती। नहीं वहाँ कोई डौल हो, तो मैं भी वहीं चलकर रहूँ। यहाँ तो कुछ परता नहीं पड़ता।'

'रोजगार का जो मजा वहाँ है काका, यहाँ क्या होगा। यहाँ रुपये का दस सेर दूध भी कोई नहीं पूछता। हलवाइयों के गले लगाना पड़ता है। वहाँ पाँच छः सेर के भाव से चाहो तो एक घड़ी में मनों दूध बेच लो।'

जंगी गोबर के लिए दुधिया शर्बत बनाने चला गया था। भोला ने एकान्त देखकर कहा—और भैया, अब इस जंजाल से जी ऊब गया है। जंगी का हाल देखते ही हो। कामता दूध लेकर जाता है। सानी-पानी, खोलना-बाँधना, सब मुझे करना पड़ता है। अब तो यही जी चाहता है कि सुख से कहीं एक रोटी खाऊँ और पड़ा रहूँ। कहाँ तक हाय-हाय करूँ। रोज लड़ाई-झगड़ा। किस-किसके पाँव सहलाऊँ। खाँसी आती है, रात को उठा नहीं जाता; पर कोई एक लोटे पानी को भी नहीं पूछता। पगहिया टूट गई है, मुदा किसी को इसकी सुधि नहीं है। जब मैं बनाऊँगा तभी बनेगी।

गोबर ने आत्मीयता के साथ कहा—तुम चलो लखनऊ काका! पाँच सेर का दूध बेचो, नगद। कितने ही बड़े-बड़े अमीरों से मेरी जान-पहचान है। मन-भर दूध की निकासी का जिम्मा तो मैं लेता हूँ। मेरी चाय की दूकान भी है। दस सेर दूध तो मैं ही नित लेता हूँ। तुम्हें किसी तरह का कस्ट न होगा।

जंगी दूधिया शर्बत ले आया। गोबर ने एक गिलास शर्बत पीकर कहा—तुम तो खाली साँझ-सबेरे चाय की दूकान पर बैठ जाओ काका, तो एक रुपया कहीं नहीं गया है।

भोला ने एक मिनट के बाद संकोच-भरे भाव से कहा—क्रोध में बेटा, आदमी अन्धा हो जाता है। मैं तुम्हारी गोईं खोल लाया था, उसे लेते जाना। यहाँ कौन खेती-बारी होती है।

'मैंने तो एक नई गोईं ठीक कर ली है काका !'

'नहीं-नहीं, नई गोईं लेकर क्या करोगे। इसे लेते जाओ।'

'तो मैं तुम्हारे रुपये भिजवा दूँगा।'

'रुपये कहीं बाहर थोड़े ही हैं बेटा, घर में हो तो हैं। बिरादरी का ढकोसला है, नहीं तुममें और हममें कौन भेद है। सच पूछो तो मुझे ख़ुश होना चाहिए था कि झुनिया भले घर में है, आराम से है और मैं उसके ख़ून का प्यासा बन गया था।'

सन्ध्या समय गोबर वहाँ से चला, तो गोईं उसके साथ थी और दही की दो हाँड़ियाँ लिये जंगी पीछे-पीछे आ रहा था।

१७

देहातों में साल के छः महीने किसी न किसी उत्सव में ढोल-मजीरा बजता रहता है। होली के एक महीना पहले से एक महीना बाद तक फाग उड़ती है; आषाढ़ लगते ही आल्हा शुरू हो जाता है और सावन-भादों में कजलियाँ होती हैं। कजलियों के बाद रामायण-गान होने लगता है। सेमरी भी अपवाद नहीं है। महाजन की धमकियाँ और कारिन्दे की गालियाँ इस समारोह में बाधा नहीं डाल सकतीं। घर में अनाज नहीं है, देह पर कपड़े नहीं हैं, गाँठ में पैसे नहीं हैं, कोई परवा नहीं। जीवन की आनन्द-वृत्ति तो दबाई नहीं जा सकती, हँसे बिना तो जिया नहीं जा सकता।

यों होली में गाने-बजाने का मुख्य स्थान नोखेराम की चौपाल थी। वहीं भंग बनती थी, वहीं रंग उड़ता था, वहीं नाच होता था। इस उत्सव में कारिन्दा साहब के दस-पाँच रुपये ख़र्च हो जाते थे। और किसमें यह सामर्थ्य थी कि अपने द्वार पर जलसा कराता।

लेकिन अबकी गोबर ने गाँव के सारे नवयुवकों को अपने द्वार पर खींच लिया है और नोखेराम की चौपाल खाली पड़ी हुई है। गोबर के द्वार पर भंग घुट रही है,

पान के बीड़े लग रहे हैं, रंग घोला जा रहा है, फ़र्श बिछा हुआ है, गाना हो रहा है और चौपाल में सन्नाटा छाया हुआ है। भंग रखी हुई है, पीसे कौन! ढोल-मजीरा सब मौजूद हैं; पर गाये कौन? जिसे देखो, गोबर के द्वार की ओर दौड़ा जा रहा है। यहाँ भंग में गुलाबजल और केसर और बादाम की बहार है। हाँ-हाँ, सेर-भर बादाम गोबर खुद लाया। पीते ही चोला तर हो जाता है, आँखें खुल जाती हैं। खमीरा तमाखू लाया है, खास बिसवाँ की! रंग में भी केवड़ा छोड़ा है। रुपये कमाना भी जानता है; और खरच करना भी जानता है। गाड़कर रख लो, तो कौन देखता है। धन की यही शोभा है। और केवल भंग ही नहीं है। जितने गानेवाले हैं, सबका नेवता भी है। और गाँव में न नाचनेवालों की कमी है, न गानेवालों की, न अभिनय करनेवालों की। शोभा ही लँगड़ों की ऐसी नक़ल करता है कि क्या कोई करेगा, और बोली की नक़ल करने में तो उसका सानी नहीं है। जिसकी बोली कहो, उसकी बोले—आदमी की भी, जानवर की भी। गिरधर नकल करने में बे-जोड़ है। वकील की नकल वह करे, पटवारी की नक़ल वह करे; थानेदार की, चपरासी की, सभी की नक़ल कर सकता है। हाँ, बेचारे के पास वैसा सामान नहीं है; मगर अबकी गोबर ने उसके लिए सभी सामान मँगा दिया है, और उसकी नक़लें देखने जोग होंगी।

यह चर्चा इतनी फैली कि साँझ से ही तमाशा देखनेवाले जमा होने लगे। आस-पास के गाँवों से दर्शकों की टोलियाँ आने लगीं। दस बजते-बजते तीन-चार हज़ार आदमी जमा हो गये। और जब गिरधर झिंगुरीसिंह का रूप भरे अपनी मण्डली के साथ खड़ा हुआ, तो लोगों को खड़े होने की जगह भी न मिलती थी। वही खल्वाट सिर, वही बड़ी-बड़ी मूँछें, और वही तोंद! बैठे भोजन कर रहे हैं और पहली ठकुराइन बैठी पंखा झल रही हैं।

ठाकुर ठकुराइन को रसिक नेत्रों से देखकर कहते हैं—अब भी तुम्हारे ऊपर वह जोबन है कि कोई जवान भी देख ले, तो तड़प जाय। और ठकुराइन फूलकर कहती हैं, जभी तो नई नवेली लाये।

'उसे तो लाया हूँ तुम्हारी सेवा करने के लिए। वह तुम्हारी क्या बराबरी करेगी।'

छोटी बीवी, यह वाक्य सुन लेती है और मुँह फुलाकर चली जाती जाती है।

दूसरे दृश्य में ठाकुर खाट पर लेटे हैं और छोटी बहू मुँह फेरे ज़मीन पर बैठी

है। ठाकुर बार-बार उसका मुँह अपनी ओर फेरने की विफल चेष्टा करके कहते हैं—मुझसे क्यों रूठी हो मेरी लाड़ली ?

'तुम्हारी लाड़ली जहाँ हो, वहाँ जाओ। मैं तो लौंडी हूँ, दूसरों की सेवा-टहल करने के लिए आई हूँ।'

'तुम मेरी रानी हो। तुम्हारी सेवा-टहल करने के लिए वह बुढ़िया है।'

पहली ठकुराइन सुन लेती हैं और झाड़ू लेकर घर में घुसती हैं, और कई झाड़ू उन पर जमाती हैं। ठाकुर साहब जान बचाकर भागते हैं।

फिर दूसरी नक़ल हुई, जिसमें ठाकुर ने दस रुपये का दस्तावेज़ लिखकर पाँच रुपये दिये, शेष नज़राने और तहरीर और दस्तूरी और ब्याज में काट लिये।

किसान आकर ठाकुर के चरण पकड़कर रोने लगता है। बड़ी मुश्किल से ठाकुर रुपये देने पर राज़ी होते हैं। जब कागज लिख जाता है और असामी के हाथ में पाँच रुपये रख दिये जाते हैं, तो वह चकराकर पूछता है—'यह तो पाँच ही हैं मालिक!'

'पाँच नहीं दस हैं। घर जाकर गिनना!'

'नहीं सरकार, पाँच हैं।'

'एक रुपया नज़राने का हुआ कि नहीं ?'

'हाँ, सरकार!'

'एक तहरी का ?'

'हाँ, सरकार!'

'एक कागद का ?'

'हाँ, सरकार!'

'एक दस्तूरी का ?'

'हाँ, सरकार!'

'एक सूद का ?'

'हाँ सरकार!'

'पाँच नगद, दस हुए कि नहीं ?'

'हाँ, सरकार! अब यह पाँचों भी मेरी ओर से रख लीजिए।'

'कैसा पागल है!'

'नहीं सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नज़राना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाक़ी बचा एक, वह आपके क्रिया-करम के लिए!'

इसी तरह नोखेराम और पटेश्वरी और दातादीन की—बारी-बारी से सबकी खबर ली गई। और फबतियों में चाहे कोई नयापन न हो और नकलें पुरानी हों; लेकिन गिरधर का ढंग ऐसा हास्यजनक था, दर्शक इतने सरल हृदय थे कि बेबात की बात में भी हँसते थे, रात-भर भँड़ैती होती रही और सताये हुए दिल, कल्पना में प्रतिशोध पाकर प्रसन्न होते रहे। आखिरी नक़ल समाप्त हुई, तो कौए बोल रहे थे।

सबेरा होते ही जिसे देखो, उसी की ज़बान पर वह रात के गाने, वही नक़ल, वही फ़िक़रे। मुखिये तमाशा बन गये। जिधर निकलते हैं उधर ही दो-चार लड़के पीछे लग जाते हैं और वही फ़िक़रे कसते हैं। झिंगुरीसिंह तो दिल्लगीबाज़ आदमी थे, इसे दिल्लगी में लिया; मगर पटेश्वरी में चिढ़ने की बुरी आदत थी और पण्डित दातादीन तो इतने तुनुकमिज़ाज थे कि लड़ने पर तैयार हो जाते थे। वह सबसे सम्मान पाने के आदी थे। कारिन्दा की तो बात ही क्या, राय साहब तक उन्हें देखते ही सिर झुका देते थे। उनकी ऐसी हँसी उड़ाई जाय और अपने ही गाँव में—यह उनके लिए असह्य था। अगर उनमें ब्रह्मतेज होता तो इन दुष्टों को भस्म कर देते, ऐसा शाप देते कि सब-के सब भस्म हो जाते; लेकिन इस कलियुग में शाप का असर ही जाता रहा। इसलिए उन्होंने कलियुगवाला हथियार निकाला। होरी के द्वार पर आये और आँखें निकालकर बोले—क्या आज भी तुम काम करने न चलोगे होरी? अब तो तुम अच्छे हो गये। मेरा कितना हरज हो गया, यह तुम नहीं सोचते।

गोबर देर में सोया था। अभी-अभी उठा था और आँखें मलता हुआ बाहर आ रहा था कि दातादीन की आवाज़ कान में पड़ी। पालागन करना तो दूर रहा, उलटे और हेकड़ी दिखाकर बोला—अब वह तुम्हारी मजूरी न करेंगे। हमें अपनी ऊख भी तो बोनी है।

दातादीन ने सुरती फाँकते हुए कहा—काम कैसे नहीं करेंगे, साल के बीच में काम नहीं छोड़ सकते। जेठ में छोड़ना हो छोड़ दें, करना हो करें। उसके पहले नहीं छोड़ सकते।

गोबर ने जम्हाई लेकर कहा—उन्होंने तुम्हारी गुलामी नहीं लिखी है। जब तक इच्छा थी, काम किया। अब नहीं इच्छा है, नहीं करेंगे। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं कर सकता।

'तो होरी काम नहीं करेंगे?'

'ना!'

'तो हमारे रुपये सूद समेत दे दो। तीन साल का सूद होता है सौ रुपया। असल मिलाकर दो सौ होते हैं। हमने समझा था, तीन रुपये महीने सूद में कटते जायँगे; लेकिन तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो मत करो। मेरे रुपये दे दो। धन्ना सेठ बनते हो, तो धन्ना सेठ का काम करो।'

होरी ने दातादीन से कहा—तुम्हारी चाकरी से मैं कब इनकार करता हूँ महाराज? लेकिन हमारी ऊख भी तो बोने को पड़ी है।

गोबर ने बाप को डाँटा—कैसी चाकरी और किसकी चाकरी? यहाँ कोई किसी का चाकर नहीं। सभी बराबर हैं। अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रुपये उधार दे दिये और उससे सूद में जिन्दगी-भर काम लेते रहे! मूल ज्यों का त्यों! यह महाजनी नहीं है, खून चूसना है।

'तो रुपये दे दो भैया, लड़ाई काहे की। मैं आने रुपये ब्याज लेता हूँ। तुम्हें गाँव-घर का समझकर आध आने रुपये कर दिया था।'

'हम तो एक रुपया सैकड़ा देंगे। एक कौड़ी बेसी नहीं। तुम्हें लेना हो तो लो, नहीं अदालत से लेना। एक रुपया सैकड़े ब्याज कम नहीं होता।'

'मालूम होता है, रुपये की गर्मी हो गई है।'

'गर्मी उन्हें होती है, जो एक के दस लेते हैं। हम तो मजूर हैं। हमारी गर्मी पसीने के रस्ते बह जाती है। मुझे खूब याद है, तुमने बैल के लिए तीस रुपये दिये थे। उसके सौ हुए। और अब सौ के दो सौ हो गये। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट-लूटकर मजूर बना डाला और आप उनकी जमीन के मालिक बन बैठे। तीस के दो सौ! कुछ हद है! कितने दिन हुए होंगे दादा?'

होरी ने कातर कण्ठ से कहा—यही आठ-नौ साल हुए होंगे।

गोबर ने छाती पर हाथ रखकर कहा—नौ साल में तीस रुपये के दो सौ! एक रुपये के हिसाब से कितना होता है?

उसने ज़मीन पर एक ठीकरे से हिसाब लगाकर कहा—इस साल में छत्तीस रुपये होते हैं। असल मिलाकर छाछठ। उसके सत्तर रुपये ले लो। इससे बेसी में एक कौड़ी न दूँगा।

दातादीन ने होरी को बीच में डालकर कहा—सुनते हो होरी, गोबर का फैसला। मैं अपने दो सौ छोड़के सत्तर रुपये ले लूँ, नहीं अदालत करूँ। इस तरह का व्यवहार हुआ तो के दिन संसार चलेगा। और तुम बैठे सुन रहे हो; मगर यह समझ लो, मैं ब्राह्मण हूँ, मेरे रुपये हजम करके तुम चैन न पाओगे। मैंने ये सत्तर रुपये भी छोड़े, अदालत भी न जाऊँगा, जाओ। अगर मैं ब्राह्मण हूँ, तो अपने पूरे दो सौ रुपये लेकर दिखा दूँगा। और तुम द्वार पर आओगे और हाथ बाँधकर दोगे।

दातादीन झल्लाये हुए लौट पड़े। गोबर अपनी जगह बैठा रहा। मगर होरी के पेट में धर्म की क्रान्ति मची हुई थी। अगर ठाकुर या बनिये के रुपये होते, तो उसे ज़्यादा चिन्ता न होती; लेकिन ब्राह्मण के रुपये! उसकी एक पाई भी दब गई, तो हड्डी तोड़कर निकलेगी। भगवान् न करें कि ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे। बंस में कोई चिल्लू-भर पानी देनेवाला, घर में दिया जलानेवाला भी नहीं रहता। उसका धर्मभीरु मन त्रस्त हो उठा। उसने दौड़कर पण्डितजी के चरण पकड़ लिये और आर्त्त स्वर में बोला—महाराज, जब तक मैं जीता हूँ, मैं तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊँगा। लड़कों की बातों पर मत जाओ। मामला तो हमारे-तुम्हारे बीच में हुआ है। वह कौन होता है।

दातादीन ज़रा नर्म पड़े—ज़रा इसकी जबरदस्ती देखो, कहता है, दो सौ रुपये के सत्तर रुपये लो या अदालत जाओ। अभी अदालत की हवा नहीं खाई है, जभी। एक बार किसी के पाले पड़ जायँगे, तो फिर यह ताव न रहेगा। चार दिन सहर में क्या रहे तानासाह हो गये।

‘मैं तो कहता हूँ महाराज, मैं तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊँगा।’

‘तो कल से हमारे यहाँ काम करने आना पड़ेगा।’

‘अपनी ऊख बोना है महाराज, नहीं तुम्हारा ही काम करता।’

दातादीन चले गये तो गोबर ने तिरस्कार की आँखों से देखकर कहा—गये थे देवता को मनाने! तुम्हीं लोगों ने तो इन सबों का मिजाज बिगाड़ दिया है। तीस

रुपये दिये, अब दो सौ रुपये लेगा, और डाँट ऊपर से बतायेगा और तुमसे मजूरी करायेगा और काम कराते-कराते मार डालेगा।

होरी ने अपने विचार में सत्य का पक्ष लेकर कहा—नीति हाथ से न छोड़ना चाहिए बेटा, अपनी-अपनी करनी अपने साथ है। हमने जिस ब्याज पर रुपये लिये, वह तो देने ही पड़ेंगे। फिर बाम्हन ठहरे। इनका पैसा हमें पचेगा? ऐसा माल तो उन्हीं लोगों को पचता है।

गोबर ने त्योरियाँ चढ़ाईं—नीति छोड़ने को कौन कह रहा है। और कौन कह रहा है कि बाम्हन के पैसे दबा लो। मैं तो यही कहता हूँ कि इतना सूद हम नहीं देंगे। बंकवाले बारह आने सूद लेते हैं। तुम एक रुपया ले लो। और क्या किसी को लूट लोगे?

'उनका रोयाँ जो दुखी होगा?'

'हुआ करे। उनके दुखी होने के डर से हम बिल क्यों खोदें।'

'बेटा, जब तक मैं जीता हूँ, मुझे अपने रस्ते चलने दो। जब मैं मर जाऊँ, तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करना।'

'तो फिर तुम्हीं देना। मैं तो अपने हाथों अपने पाँव में कुल्हाड़ी न मारूँगा। मेरा गधापन था कि तुम्हारे बीच में बोला—तुमने खाया है, तुम भरो। मैं क्यों अपनी जान दूँ।'

यह कहता हुआ गोबर भीतर चला गया। झुनिया ने पूछा—आज सबेरे-सबेरे दादा से क्यों उलझ पड़े?

गोबर ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और अन्त में बोला—इनके ऊपर रिन का बोझ इसी तरह बढ़ता जायगा। मैं कहाँ तक भरूँगा। उन्होंने कमा-कमाकर दूसरों का घर भरा है। मैं क्यों उनकी खोदी हुई खंदक में गिरूँ। इन्होंने मुझसे पूछकर करज नहीं लिया। न मेरे लिए लिया। मैं उसका देनदार नहीं हूँ।

उधर मुखियों में गोबर को नीचा दिखाने के लिए षड्यंत्र रचा जा रहा था। यह लौंडा शिकंजे में न कसा गया, तो गाँव में ऊधम मचा देगा। प्यादे से फर्जी हो गया है न, टेढ़े तो चलेगा ही। जाने कहाँ से इतना कानून सीख आया है। कहता है, रुपये सैकड़े सूद से बेसी न दूँगा। लेना हो तो लो, नहीं अदालत जाओ। रात इसने सारे गाँव के लौंडों को बटोरकर कितना अनर्थ किया। लेकिन मुखियों

में भी ईर्ष्या की कमी न थी। सभी अपने बराबरवालों के परिहास पर प्रसन्न थे। पटेश्वरी और नोखेराम में बातें हो रही थीं। पटेश्वरी ने कहा—मगर सबों को घर-घर का रत्ती-रत्ती हाल मालूम है। झिंगुरीसिंह को तो सबों ने ऐसा रगेटा कि कुछ न पूछो। दोनों ठकुराइनों की बातें सुन-सुनकर लोग हँसी के मारे लोट गये।

नोखेराम ने ठट्ठा मारकर कहा—मगर नकल सच्ची थी। मैंने कई बार उनकी छोटी बेगम को द्वार पर खड़े लौंडों से हँसी करते देखा।

'और बड़ी रानी काजल और सेंदुर और महावर लगाकर जवान बनी रहती हैं।'

'दोनों में रात-दिन छिड़ी रहती है। झिंगुरी पक्का बेहया है। कोई दूसरा होता तो पागल हो जाता।'

'सुना, तुम्हारी बड़ी भद्दी नकल की। चमरिया के घर में बन्द करके पिटवाया।'

'मैं तो बचा पर बकाया लगान का दावा करके ठीक कर दूँगा। वह भी क्या याद करेंगे कि किसी से पाला पड़ा था।'

'लगान तो उसने चुका दिया है न?'

'लेकिन रसीद तो मैंने नहीं दी। सबूत क्या है कि लगान चुका दिया? और यहाँ कौन हिसाब-किताब देखता है। आज ही प्यादा भेजकर बुलाता हूँ।'

होरी और गोबर दोनों ऊख बोने के लिए खेत सींच रहे थे। अबकी ऊख की खेती होने की आशा तो थी नहीं, इसलिए खेत परती पड़ा हुआ था। अब बैल आ गये हैं, तो ऊख क्यों न बोई जाय।

मगर दोनों जैसे छत्तीस बने हुए थे। न बोलते थे, न ताकते थे। होरी बैलों को हाँक रहा था और गोबर मोट ले रहा था। सोना और रूपा दोनों खेत में पानी दौड़ा रही थीं कि उनमें झगड़ा हो गया। विवाद का विषय यह था कि झिंगुरीसिंह की छोटी ठकुराइन पहले ख़ुद खाकर तब पति को खिलाती है या पति को खिलाकर तब ख़ुद खाती है। सोना कहती थी, पहले वह ख़ुद खाती है। रूपा का मत इसके प्रतिकूल था।

रूपा ने जिरह की—अगर वह पहले खाती हैं, तो क्यों मोटी नहीं हैं? ठाकुर क्यों मोटे हैं? अगर ठाकुर उन पर गिर पड़ें, तो ठकुराइन पिस जायँ।

सोना ने प्रतिवाद किया—तू समझती है, अच्छा खाने से लोग मोटे हो जाते

हैं। अच्छा खाने से लोग बलवान होते हैं। मोटे नहीं होते हैं, मोटे होते हैं घास-पात खाने से।

'तो ठकुराइन ठाकुर से बलवान हैं?'

'और क्या। अभी उस दिन दोनों में लड़ाई हुई, तो ठकुराइन ने ठाकुर को ऐसा ढकेला, कि उनके घुटने फूट गये।'

'तो तू भी पहले आप खाकर तब जीजा को खिलायेगी?'

'और क्या'

'अम्माँ तो पहले दादा को खिलाती हैं।'

'तभी तो जब देखो तब दादा डाँट देते हैं। मैं बलवान होकर अपने मरद को काबू में रखूँगी। तेरा मरद तुझे पीटेगा। तेरी हड्डी तोड़कर रख देगा।'

रूपा रुआँसी होकर बोली—क्यों पीटेगा? मैं मार खाने का काम ही न करूँगी।

'वह कुछ न सुनेगा। तूने जरा भी कुछ कहा और वह मार चलेगा। मारते-मारते तेरी खाल उधेड़ लेगा।'

रूपा ने बिगड़कर सोना की साड़ी दाँतों से फाड़ने की चेष्टा की और असफल होने पर चुटकियाँ काटने लगी।

सोना ने और चिढ़ाया—वह तेरी नाक भी काट लेगा।

इस पर रूपा ने बहन के दांत से काट खाया। सोना की बाँह लहुआ गई। उसने रूपा को ज़ोर से ढकेल दिया। वह गिर पड़ी और उठकर रोने लगी। सोना भी दाँतों के निशान देखकर रो पड़ी।

उन दोनों का चिल्लाना सुनकर गोबर गुस्से में भरा हुआ आया और दोनों को दो-दो घूँसे जड़ दिये। दोनों रोती हुई खेत से निकलकर घर चल दीं। सिंचाई का काम रुक गया। इस पर पिता-पुत्र में एक झड़प हो गई।

होरी ने पूछा—पानी कौन चलायेगा? दौड़े-दौड़े गये; दोनों को भगा आये। अब जाकर मना क्यों नहीं लाते?

'तुम्हीं ने इन सबों को बिगाड़ रखा है।'

'इस तरह मारने से और भी निर्लज्ज हो जायँगी।'

'दो जून खाना बन्द कर दो, आप ठीक हो जायँ।'

'मैं उनका बाप हूँ, कसाई नहीं हूँ।'

पाँव में एक बार ठोकर लग जाने के बाद किसी कारण से बार-बार ठोकर लगती है और कभी-कभी अँगूठा पक जाता है और महीनों कष्ट देता है। पिता और पुत्र के सद्भाव को आज उसी तरह की चोट लग गई थी और उस पर यह तीसरी चोट पड़ी।

गोबर ने घर आकर झुनिया को खेत में पानी देने के लिए साथ लिया। झुनिया बच्चे को लेकर खेत में गई। धनिया और उसकी दोनों बेटियाँ ताकती रहीं। माँ को भी गोबर की यह उद्दण्डता बुरी लगती थी। रूपा को मारता तो वह बुरा न मानती; मगर जवान लड़की को मारना, यह उसके लिए असह्य था।

आज ही रात को गोबर ने लखनऊ लौट जाने का निश्चय कर लिया। यहाँ अब वह नहीं रह सकता। जब घर में उसकी कोई पूछ नहीं है, तो वह क्यों रहे। वह लेन-देन के मामले में बोल नहीं सकता। लड़कियों को ज़रा मार दिया तो लोग ऐसे जामे से बाहर हो गये, मानों वह बाहर का आदमी है। तो इस सराय में वह न रहेगा।

दोनों भोजन करके बाहर आये थे कि नोखेराम के प्यादे ने आकर कहा—चलो, कारिन्दा साहब ने बुलाया है।

होरी ने गर्व से कहा—रात को क्यों बुलाते हैं, मैं तो बाकी दे चुका हूँ।

प्यादा बोला—मुझे तो तुम्हें बुला लाने का हुक्म मिला है। जो कुछ अरज करना हो वहीं चलकर करना।

होरी की इच्छा न थी, मगर जाना पड़ा। गोबर विरक्त-सा बैठा रहा। आध घण्टे में होरी लौटा और चिलम भरकर पीने लगा। अब गोबर से न रहा गया। पूछा—किस मतलब से बुलाया था?

होरी ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—मैंने पाई पाई लगान चुका दिया। वह कहते हैं, तुम्हारे ऊपर दो साल की बाकी है। अभी उस दिन मैंने ऊख बेची, तो पच्चीस रुपये वहीं उनको दे दिये, और आज वह दो साल की बाकी निकालते हैं। मैंने कह दिया, मैं एक धेला न दूँगा।

गोबर ने पूछा—तुम्हारे पास रसीद तो होगी?

'रसीद कहाँ देते हैं।'

'तो तुम बिना रसीद लिये रुपये देते ही क्यों हो ?'

'मैं क्या जानता था, यह लोग बेईमानी करेंगे। यह सब तुम्हारी करनी का फल है। तुमने रात को उनकी हँसी उड़ाई, यह उसी का दंड है। पानी में रहकर मगर से बैर नहीं किया जाता। सूद लगाकर सत्तर रुपये बाक़ी निकाल दिये। ये किसके घर से आयेंगे ?'

गोबर ने अपनी सफ़ाई देते हुए कहा—तुमने रसीद ले ली होती, तो मैं लाख उनकी हँसी उड़ाता, तुम्हारा बाल भी बाँका न कर सकते। मेरी समझ में नहीं आता कि लेन-देन में तुम सावधानी से क्यों काम नहीं लेते। यों रसीद नहीं देते, तो डाक से रुपया भेजो। यही तो होगा, एकाध रुपया महसूल पड़ जायगा। इस तरह की धाँधली तो न होगी ?

'तुमने यह आग न लगाई होती, तो कुछ न होता। अब तो सभी मुखिया बिगड़े हुए हैं। बेदखली की धमकी दे रहे हैं। दैव जाने कैसे बेड़ा पार लगेगा।'

'मैं जाकर उनसे पूछता हूँ।'

'तुम जाकर और आग लगा दोगे।'

'अगर आग लगानी पड़ेगी, तो आग भी लगा दूँगा। वह बेदखली करते हैं, करें। मैं उनके हाथ में गंगाजल रखकर अदालत में क़सम खिलाऊँगा। तुम दुम दबाकर बैठे रहो। मैं इसके पीछे जान लड़ा दूँगा। मैं किसी का एक पैसा दबाना नहीं चाहता, न अपना एक पैसा खोना चाहता हूँ।'

वह उसी वक्त उठा और नोखेराम की चौपाल में जा पहुँचा। देखा तो सभी मुखिया लोगों का कैबिनेट बैठा हुआ है। गोबर को देखकर सब-के-सब सतर्क हो गये। वातावरण में षड्यन्त्र की-सी कुण्ठा भरी हुई थी।

गोबर ने उत्तेजित कण्ठ से पूछा—यह क्या बात है कारिन्दा साहब, कि आपको दादा ने हाल तक का लगान चुकता कर दिया, और आप अभी दो साल की बाकी निकाल रहे हैं। यह कैसा गोलमाल है ?

नोखेराम ने मसनद पर लेटकर रोब दिखाते हुए कहा—जब तक होरी है, मैं तुमसे लेन-देन की कोई बातचीत नहीं करना चाहता।

गोबर ने आहत स्वर में कहा—तो मैं घर में कुछ नहीं हूँ ?

'तुम अपने घर में सब कुछ होगे। यहाँ तुम कुछ नहीं हो।'

'अच्छी बात है, आप बेदखली दायर कीजिए। मैं अदालत में तुमसे गङ्गाजली उठवाकर रुपये दूँगा; इसी गाँव से एक सौ सहादतें दिलाकर साबित कर दूँगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे-सादे किसान हैं, कुछ बोलते नहीं, तो तुमने समझ लिया कि सब काठ के उल्लू हैं। राय साहब वहीं रहते हैं, जहाँ मैं रहता हूँ। गाँव के सब लोग उन्हें हौवा समझते होंगे, मैं नहीं समझता। रत्ती-रत्ती हाल कहूँगा, और देखूँगा, तुम कैसे मुझसे दोबारा रुपये वसूल कर लेते हो!'

उसकी वाणी में सत्य का बल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूँगा हो जाता है। वही सीमेंट जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाय, तो मिट्टी हो जायगा। गोबर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीति के बख्तर को बेध डाला, जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्बल आत्मा अपने को शक्तिमान् समझ रही थी।

नोखेराम ने जैसे कुछ याद करने का प्रयास करके कहा—तुम इतना गर्म क्यों हो रहे हो, इसमें गर्म होने की कौन बात है? अगर होरी ने रुपये दिये हैं, तो कहीं न कहीं तो टाँके गये होंगे। मैं कल कागज निकालकर देखूँगा। अब मुझे कुछ-कुछ याद आ रहा है कि शायद होरी ने रुपये दिये थे। तुम निसाखातिर रहो; अगर रुपये यहाँ आ गये हैं, तो कहीं जा नहीं जा सकते। तुम थोड़े-से रुपयों के लिए झूठ थोड़े ही बोलोगे और न मैं ही इन रुपयों से धनी हो जाऊँगा।

गोबर ने चौपाल से आकर होरी को ऐसा लथाड़ा कि बेचारा स्वार्थभीरु बूढ़ा रुआँसा हो गया—तुम तो बच्चों से भी गये-बीते हो, जो बिल्ली की म्याऊँ सुनकर चिल्ला उठते हैं। मैं कहाँ-कहाँ तुम्हारी रक्षा करता फिरूँगा। मैं तुम्हें सत्तर रुपये दिये जाता हूँ। दातादीन लें तो देकर भरपाई लिखा लेना। इसके ऊपर तुमने एक पैसा भी दिया, तो फिर मुझसे एक पैसा भी न पाओगे। मैं परदेस में इसलिए नहीं पड़ा हूँ कि तुम अपने को लुटवाते रहो और मैं कमाकर भरता रहूँ। मैं कल चला जाऊँगा; लेकिन इतना कहे देता हूँ कि किसी से एक पैसा उधार मत लेना और किसी को कुछ मत देना। मँगरू, दुलारी, दातादीन सभी से एक रुपया सैकड़े सूद कराना होगा।

धनिया भी खाना खाकर बाहर निकल आई। बोली—अभी क्यों जाते हो बेटा, दो-चार दिन और रहकर ऊख की बोनी करा लो और कुछ लेन-देन का हिसाब भी ठीक कर लो, तो जाना।

गोबर ने शान जमाते हुए कहा—मेरा दो-तीन रुपये रोज़ का घाटा हो रहा है, यह भी समझती हो ! यहाँ मैं बहुत-बहुत तो चार आने की मजूरी ही तो करता हूँ ; और अबकी मैं झुनिया को भी लेता जाऊँगा। वहाँ मुझे खाने-पीने की बड़ी तकलीफ होती है।

धनिया ने डरते-डरते कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा। लेकिन वहाँ वह कैसे अकेले घर सँभालेगी, कैसे बच्चे की देख-भाल करेगी ?

'अब बच्चे को देखूँ कि अपना सुभीता देखूँ, मुझसे चूल्हा नहीं फूँका जाता।'

'ले जाने को मैं नहीं रोकती ; लेकिन परदेस में बाल-बच्चों के साथ रहना, न कोई आगे, न पीछे, सोचो, कितना झंझट है।'

'परदेस में भी संगी-साथी निकल ही आते हैं, अम्माँ ! और यह तो स्वारथ का संसार है। जिसके साथ चार पैसे गम खाओ वही अपना। खाली हाथ तो माँ-बाप भी नहीं पूछते।'

धनिया कटाक्ष समझ गई। उसके सिर से पाँव तक आग लग गई। बोली—माँ-बाप को भी तुमने उन्हीं पैसे के यारों में समझ लिया ?

'आँखों देख रहा हूँ।'

'नहीं देख रहे हो ; माँ-बाप का मन इतना निठुर नहीं होता ; हाँ, लड़के अलबत्ता जहाँ चार पैसे कमाने लगे कि माँ-बाप से आँखें फेर लीं। इसी गाँव में एक-दो नहीं, दस-बीस परतोख दे दूँ। माँ-बाप करज-कवाम लेते हैं किसके लिए ? लड़कों-लड़कियों ही के लिए कि अपने भोग-विलास के लिए।'

'क्या जाने तुमने किसके लिए करज लिया। मैंने तो एक पैसा भी नहीं जाना।'

'बिना पाले ही इतने बड़े हो गये ?'

'पालने में तुम्हारा लगा क्या। जब तक बच्चा था, दूध पिला दिया। फिर लावारिस की तरह छोड़ दिया। जो सबने खाया, वही मैंने खाया। मेरे लिए दूध नहीं आता था, मक्खन नहीं बँधा था। और अब तुम भी चाहती हो, और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा करजा चुकाऊँ ; लगान दूँ, लड़कियों का ब्याह करूँ। जैसे मेरी जिन्दगी तुम्हारा देना भरने ही के लिए है। मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं ?'

धनिया सन्नाटे में आ गई। एक ही क्षण में उसके जीवन का मृदु स्वप्न जैसे टूट गया। अब तक वह मन में प्रसन्न थी कि अब उसका दुख-दरिद्र सब दूर हो गया।

जब से गोबर घर आया, उसके मुख पर हास की एक छटा खिली रहती थी ? उसकी वाणी में मृदुता और व्यवहारों में उदारता आ गई थी। भगवान् ने उस पर दया की है, तो उसे सिर झुकाकर चलना चाहिए। भीतर की शान्ति बाहर सौजन्य बन गई थी। ये शब्द तपते हुए बालू की तरह हृदय पर पड़े और चने की भाँति सारे अरमान झुलस गये। उसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया। इतना सुन लेने के बाद अब जीवन में क्या रस रह गया। जिस नौका पर बैठकर इस जीवन-सागर को पार करना चाहती थी, वही टूट गई, तो किस सुख के लिए जिये!

लेकिन नहीं। उसका गोबर इतना स्वार्थी नहीं है। उसने कभी माँ की बात का जवाब नहीं दिया, कभी किसी बात के लिए ज़िद नहीं की। जो कुछ रूखा-सूखा मिल गया, वही खा लेता था। वही भोला-भाला शील-स्नेह का पुतला आज क्यों ऐसी दिल तोड़नेवाली बातें कर रहा है ? उसकी इच्छा के विरुद्ध तो किसी ने कुछ नहीं कहा। माँ-बाप दोनों ही उसका मुँह जोहते रहते हैं। उसने खुद ही लेन-देन की बात चलाई, नहीं उससे कौन कहता है कि तू माँ-बाप का देना चुका। माँ-बाप के लिए यही क्या कम सुख है कि वह इज्ज़त-आबरू के साथ भलेमानसों की तरह कमाता-खाता है। उससे कुछ हो सके, तो माँ-बाप की मदद कर दे। नहीं हो सकता तो माँ-बाप उसका गला न दबायेंगे। झुनिया को ले जाना चाहता है, खुशी से ले जाय। धनिया ने तो केवल उसकी भलाई के ख़याल से कहा था कि झुनिया को वहाँ ले जाने में उसे जितना आराम मिलेगा, उससे कहीं ज्यादा झंझट बढ़ जायगा। इसमें ऐसी कौन-सी लगनेवाली बात थी कि वह इतना बिगड़ उठा। हो न हो, यह आग झुनिया ने लगाई है। वही बैठे-बैठे उसे यह मन्तर पढ़ा रही है। यहाँ सौक-सिंगार करने को नहीं मिलता, घर का कुछ न-कुछ काम भी करना ही पड़ता है। वहाँ रुपये-पैसे हाथ में आयेंगे, मजे से चिकना खायगी, चिकना पहनेगी और टाँग फैलाकर सोयेगी। दो आदमियों की रोटी पकाने में क्या लगता है, वहाँ तो पैसा चाहिए। सुना, बजार में पकी-पकाई रोटियाँ मिल जाती हैं। यह सारा उपद्रव उसी ने खड़ा किया है। सहर में कुछ दिन रह भी चुकी है। वहाँ का दाना-पानी मुँह लगा हुआ है। यहाँ कोई पूछता न था। यह भोंदू मिल गया। इसे फाँस लिया। जब यहाँ पाँच महीने का पेट लेकर आई थी, तब कैसी म्याँव-म्याँव करती थी। तब यहाँ सरन न मिली होती, तो आज कहीं भीख माँगती होती। यह उसी नेकी का बदला है! इसी

चुड़ैल के पीछे डाँड़ देना पड़ा, बिरादरी में बदनामी हुई, खेती टूट गई, सारी दुर्गत हो गई। और आज यह चुड़ैल जिस पत्तल में खाती है, उसी में छेद कर रही है। पैसे देखे, तो आँख हो गई। तभी ऐंठी-ऐंठी फिरती है, मिजाज नहीं मिलता। आज लड़का चार पैसे कमाने लगा है न! इतने दिनों बात नहीं पूछी, तो सास का पाँव दबाने के लिए तेल लिये दौड़ती थी। डाइन उसके जीवन की निधि को उसके हाथ से छीन लेना चाहती है।

दुखित स्वर में बोली—यह मन्तर तुम्हें कौन दे रहा है बेटा, तुम तो ऐसे न थे? माँ-बाप तुम्हारे ही हैं, बहनें तुम्हारी ही हैं, घर तुम्हारा ही है। यहाँ बाहर का कौन है। और हम क्या बहुत दिन बैठे रहेंगे? घर की मरजाद बनाये रहोगे, तो तुम्हीं को सुख होगा। आदमी घरवालों ही के लिए धन कमाता है कि और किसी के लिए। अपना पेट तो सुअर भी पाल लेती है। मैं न जानती थी, झुनिया नागिन बनकर हमीं को डसेगी।

गोबर ने तिनककर कहा—अम्माँ, मैं नादान नहीं हूँ कि झुनिया मुझे मन्तर पढ़ायेगी। तुम उसे नाहक कोस रही हो। तुम्हारी गिरस्ती का सारा बोझ मैं नहीं उठा सकता। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, तुम्हारी मदद कर दूँगा; लेकिन अपने पावों में बेड़ियाँ नहीं डाल सकता।

झुनिया भी कोठरी से निकलकर बोली—अम्माँ, जुलाहे का गुस्सा डाढ़ी पर न उतारो। कोई बच्चा नहीं है कि उसे फोड़ लूँगी। अपना-अपना भला-बुरा सब समझते हैं। आदमी इसी लिए नहीं जनम लेता कि सारी उम्र तपस्या करता रहे, और एक दिन खाली हाथ मर जाय। सब जिन्दगी का कुछ सुख चाहते हैं, सबकी लालसा होती है कि हाथ में चार पैसे हों।

धनिया ने दाँत पीसकर कहा—अच्छा झुनिया, बहुत ज्ञान न बघार। अब तू भी अपना भला-बुरा सोचने जोग हो गई है। जब यहाँ आकर मेरे पैरों पर सिर रखे रो रही थी, तब अपना भला-बुरा नहीं सूझा था? उस घड़ी हम भी अपना भला-बुरा सोचने लगते; तो आज तेरा कहीं पता न होता।

इसके बाद संग्राम छिड़ गया। ताने-मेहने, गाली-गलौज, थुक्का-फ़जीहत, कोई बात न बची। गोबर भी बीच-बीच में डंक मारता जाता था। होरी बरौठे में बैठा सब कुछ सुन रहा था। सोना और रूपा आँगन में सिर झुकाये खड़ी थीं, दुलारी,

पुनिया और कई स्त्रियाँ बीच-बचाव करने आ पहुँची थीं। गरजन के बीच में कभी-कभी बूँद भी गिर जाती थी। दोनों ही अपने-अपने भाग्य को रो रही थीं। दोनों ही ईश्वर को कोस रही थीं और दोनों अपनी-अपनी निर्दोषिता सिद्ध कर रही थीं। झुनिया गड़े मुर्दे उखाड़ रही थी। आज उसे हीरा और शोभा से विशेष सहानुभूति हो गई थी, जिन्हें धनिया ने कहीं का न रखा था। धनिया को आज तक किसी से न पटी, तो झुनिया से कैसे पट सकती है। धनिया अपनी सफ़ाई देने की चेष्टा कर रही थी; लेकिन न जाने क्या बात थी कि जनमत झुनिया की ओर था। शायद इसलिए कि झुनिया संयम हाथ से न जाने देती थी और धनिया आपे से बाहर थी। शायद इसलिए भी कि झुनिया अब कमाऊ पुरुष की स्त्री थी और उसे प्रसन्न रखने में ज़्यादा मसलहत थी।

तब होरी ने आँगन में आकर कहा—मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ धनिया, चुप रह। मेरे मुँह में कालिख मत लगा। हाँ, अभी मन न भरा हो, तो और सुन।

धनिया फुँकार मारकर उधर दौड़ी—तुम भी मोटी डाल पकड़ने चले। मैं ही दोषी हूँ। वह तो मेरे ऊपर फूल बरसा रही है?

संग्राम का क्षेत्र बदल गया।

'जो छोटों के मुँह लगे, वह छोटा।'

धनिया किस तर्क से झुनिया को छोटा मान ले?

होरी ने व्यथित कण्ठ से कहा—अच्छा, वह छोटी नहीं, बड़ी सही। जो आदमी नहीं रहना चाहता, क्या उसे बाँधकर रखेगी? माँ-बाप का धरम है, लड़के को पाल-पोसकर बड़ा कर देना। वह हम कर चुके। उनके हाथ-पाँव हो गये। अब तू क्या चाहती है, वे दाना-चारा लाकर खिलायें। माँ-बाप का धरम सोलहों आना लड़कों के साथ है। लड़कों का माँ-बाप के साथ एक आना भी धरम नहीं है। जो जाता है उसे असीस देकर बिदा कर दे। हमारा भगवान् मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है, भोगेंगे। चालीस सात सैंतालीस साल इसी तरह रोते-धोते कट गये। दस-पाँच साल हैं, वह भी यों ही कट जायँगे।

उधर गोबर जाने की तैयारी कर रहा था। इस घर का पानी भी उसके लिए हराम है। माता होकर जब उसे ऐसी-ऐसी बातें कहे, तो अब वह उसका मुँह भी न देखेगा।

देखते ही देखते उसका विस्तर बँध गया। झुनिया ने भी चुँदरी पहन ली। चुन्नू भी टोप और फ्राक पहनकर राजा बन गया।

होरी ने आर्द्र कण्ठ से कहा—बेटा, तुमसे कुछ कहने का मुँह तो नहीं है; लेकिन कलेजा नहीं मानता। क्या जरा जाकर अपनी अभागिनी माता के पाँव छू लोगे, तो कुछ बुरा होगा? जिस माता की कोख से जनम लिया और जिसका रक्त पीकर पले हो, उसके साथ इतना भी नहीं कर सकते?

गोबर ने मुँह फेरकर कहा—मैं उसे अपनी माता नहीं समझता।

होरी ने आँखों में आँसू लाकर कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा। जहाँ रहो, सुखी रहो।

झुनिया ने सास के पास जाकर उसके चरणों को अंचल से छुआ। धनिया के मुँह से असीस का एक शब्द भी न निकला। उसने आँख उठाकर देखा भी नहीं। गोबर बालक को गोद में लिये आगे-आगे था। झुनिया विस्तर बगल में दबाये पीछे। एक चमार का लड़का सन्दूक लिये था। गाँव के कई स्त्री-पुरुष गोबर को पहुँचाने गाँव के बाहर तक आये।

और धनिया बैठी रो रही थी, जैसे कोई उसके हृदय को आरे से चीर रहा हो। उसका मातृत्व उस घर के समान हो रहा था, जिसमें आग लग गई हो और सब कुछ भस्म हो गया हो। बैठकर रोने के लिए भी स्थान न बचा हो।

१८

गोबर और झुनिया के जाने के बाद घर सुनसान रहने लगा। धनिया को बार-बार चुन्नू की याद आती रहती है। बच्चे की माँ तो झुनिया थी; पर उसका पालन धनिया ही करती थी। वही उसे उबटन मलती, काजल लगाती, सुलाती और जब काम-काज से अवकाश मिलती, तो उसे प्यार करती। वात्सल्य का यह नशा ही उसकी विपत्ति को भुलाता रहता था। उसका भोला-भाला, मक्खन-सा मुँह देखकर वह अपनी सारी चिन्ता भूल जाती, और स्नेहमय गर्व से उसका हृदय फूल उठता। वह जीवन का आधार अब न था। उसका सूना खटोला देखकर वह रो उठती। वह कवच जो सारी चिन्ताओं और दुराशाओं से उसकी रक्षा करता था, उससे छीन लिया गया था। वह बार-बार सोचती, उसने झुनिया के साथ ऐसी कौन-सी बुराई की थी,

जिसका उसने यह दण्ड दिया। डाइन ने आकर उसका सोने-सा घर मिट्टी में मिला दिया। गोबर ने तो कभी उसकी बात का जवाब भी न दिया था। इसी राँड़ ने उसे फोड़ा और वहाँ ले जाकर न जाने कौन-कौन-सा नाच नचायेगी। यहाँ ही वह बच्चे की कौन बहुत परवाह करती थी। उसे तो अपनी मिस्सी-काजल, माँग-चोटी ही से छुट्टी नहीं मिलती। बच्चे को देख-भाल क्या करेगी। बेचारा अकेला ज़मीन पर पड़ा रोता होगा। बेचारा एक दिन भी तो सुख से नहीं रहने पाता। कभी खाँसी, कभी दस्त, कभी कुछ, कभी कुछ। यह सोच-सोचकर उसे झुनिया पर क्रोध आता। गोबर के लिए अब भी उसके मन में वही ममता थी। इसी चुड़ैल ने उसे कुछ खिला-पिलाकर अपने बस में कर लिया। ऐसी मायाविनी न होती, तो यह टोना ही कैसे करती। कोई बात न पूछता था, भौजाइयों की लातें खाती थी। यह भुग्गा मिल गया, तो आज रानी हो गई।

होरी ने चिढ़कर कहा—जब देखो तब तू झुनिया ही को दोस देती है। यह नहीं समझती कि अपना सोना खोटा तो सोनार का क्या दोस। गोबर उसे न ले जाता, तो क्या आप-से आप चली जाती? सहर का दाना-पानी लगने से लौंडे की आँखें बदल गईं। ऐसा क्यों नहीं समझ लेती।

धनिया गरज उठी—अच्छा चुप रहो। तुम्हीं ने राँड़ को मूड़ पर चढ़ा रखा था, नहीं मैंने पहले ही दिन झाड़ू मारकर निकाल दिया होता।

खलिहान में डाँठें जमा हो गई थीं। होरी बैलों को जुखरकर अनाज माँड़ने जा रहा था। पीछे मुँह फेरकर बोला—मान ले, बहू ने गोबर को फोड़ ही लिया, तो तू इतना कुढ़ती क्यों है? जो सारा जमाना करता है, वही गोबर ने भी किया। अब उसके बाल-बच्चे हुए। मेरे बाल-बच्चों के लिए क्यों अपनी साँसत कराये, क्यों हमारे सिर का बोझ अपने सिर पर रखे?

'तुम्हीं उपद्रव की जड़ हो।'

'तो मुझे भी निकाल दे। ले जा बैलों को, अनाज माँड़। मैं हुक्का पीता हूँ।'

'तुम चलकर चक्की पीसो, मैं अनाज माँड़ूँगी।'

विनोद में दुःख उड़ गया। यही उसकी दवा है। धनिया प्रसन्न होकर रूपा के बाल गूँथने बैठ गई जो बिलकुल उलझकर रह गये थे, और होरी खलिहान चला। रसिक वसन्त सुगन्ध और प्रमोद और जीवन की विभूति लुटा रहा था, दोनों हाथों

से, दिल खोलकर। कोयल आम की डालियों में छिपी अपनी रसीली, मधुर, आत्म-स्पर्शी कूक से आशाओं को जगाती फिरती थी। महुए की डालियों पर मैनों की बरात-सी लगी बैठी थी। नीम और सिरस और करौंदे अपनी महक में नशा-सा घोले देते थे। होरी आमों के बाग में पहुँचा, तो वृक्षों के नीचे तारों-से खिले थे। उसका व्यथित, निराश मन भी इस व्यापक शोभा और स्फूर्ति में आकर गाने लगा—

'हिया जरत रहत दिन-रैन।

आम की डरिया कोयल बोले तनिक न आवत चैन।'

सामने से दुलारी सहुआइन गुलाबी साड़ी पहने चली आ रही थी। पाँव में मोटे चाँदी के कड़े थे, गले में मोटी सोने की हँसली, चेहरा सूखा हुआ; पर दिल हरा। एक समय था, जब होरी खेत-खलिहान में उसे छेड़ा करता था। वह भाभी थी, होरी देवर था, इस नाते से दोनों में विनोद होता रहता था। जब से साहजी मर गये, दुलारी ने घर से निकलना छोड़ दिया। सारे दिन दूकान पर बैठी रहती थी और वहीं से सारे गाँव की खबर लगाती रहती थी। कहीं आपस में झगड़ा हो जाय, सहुआइन वहाँ बीच-बचाव करने के लिए अवश्य पहुँचेगी। आने रुपये सूद से कम पर रुपये उधार न देती थी और यद्यपि सूद के लोभ में मूल भी हाथ न आता था—जो रुपये लेता, खाकर बैठ रहता—मगर उसके ब्याज की दर ज्यों की त्यों बनी रहती थी। बेचारी कैसे वसूल करे, नालिश-फरियाद करने से रही, थाना-पुलिस करने से रही, केवल जीभ का बल था; पर ज्यों-ज्यों उम्र के साथ जीभ की तेज़ी बढ़ती जाती थी, उसकी काट घटती जाती थी। अब उसकी गालियों पर लोग हँस देते थे और मज़ाक में कहते—क्या करेगी रुपये लेकर काकी, साथ तो एक कौड़ी भी न ले जा सकेगी। ग़रीबों को खिला-पिलाकर जितनी असीस मिल सके, ले ले। यही परलोक में काम आयेगा, और दुलारी परलोक के नाम से जलती थी।

होरी ने छेड़ा—आज तो भाभी, तुम सचमुच जवान लगती हो।

सहुआइन मगन होकर बोली—आज मंगल का दिन है, नजर न लगा देना। इसी मारे मैं कुछ पहनती-ओढ़ती नहीं। घर से निकलो तो सभी घूरने लगते हैं, जैसे कभी कोई मेहरिया देखी न हो। पटेसरी लाला की पुरानी बान अभी तक नहीं छूटी।

होरी ठिठक गया, बड़ा मनोरंजक प्रसंग छिड़ गया था। बैल आगे निकल गये।

'वह तो आजकल बड़े भगत हो गये हैं। देखती नहीं हो, हर पूरनमासी को सत्यनारायण की कथा सुनते हैं और दोनों जून मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं।'

'ऐसे लम्पट जितने होते हैं, सभी बूढ़े होकर भगत बन जाते हैं। कुकर्म का परासचित तो करना ही पड़ता है। पूछो, मैं अब बुढ़िया हुई, मुझसे क्या हँसी।'

'तुम अभी बुढ़िया कैसे हो गईं भाभी? मुझे तो अब भी...'

'अच्छा चुप ही रहना, नहीं डेढ़ सौ गाली दूँगी। लड़का परदेस कमाने लगा, एक दिन नेवता भी न खिलाया, सेंत-मेंत में भाभी बनाने को तैयार।'

'मुझसे कसम ले लो भाभी, जो मैंने उसकी कमाई का एक पैसा भी छुआ हो। न जाने क्या लाया, कहाँ खरच किया, मुझे कुछ भी पता नहीं। बस, एक जोड़ा धोती और एक पगड़ी मेरे हाथ लगी।'

'अच्छा, कमाने तो लगा, आज नहीं, कल घर सँभालेगा ही। भगवान् उसे सुखी रखें। हमारे रुपये भी थोड़ा-थोड़ा देते चलो। सूद ही तो बढ़ रहा है।'

'तुम्हारी एक-एक पाई दूँगा भाभी, हाथ में पैसे आने दो। और खा ही जायँगे, तो कोई बाहर के तो नहीं हैं, हैं तो तुम्हारे ही।'

सहुआइन ऐसी विनोद-भरी चापलूसियों से निरस्त्र हो जाती थी। मुस्कराती अपनी राह चली गई। होरी लपककर बैलों के पास पहुँच गया और उन्हें पौर में डालकर चक्कर देने लगा। सारे गाँव का यही एक खलिहान था। कहीं मड़ाई हो रही थी, कोई अनाज ओसा रहा था, कोई गल्ला तौल रहा था। नाई, बारी, बढ़ई, लोहार, पुरोहित, भाँट, भिखारी सभी अपने-अपने जेवरे लेने के लिए जमा हो गये थे। एक पेड़ के नीचे झिंगुरीसिंह खाट पर बैठे अपनी सवाई उगाह रहे थे। कई बनिये खड़े गल्ले का भाव ताव कर रहे थे। सारे खलिहान में मण्डी की-सी रौनक थी। एक खटकिन बेर और मकोय बेच रही थी और खोंचेवाला तेल के सेव और जिलेबियाँ लिये फिर रहा था। पण्डित दातादीन भी होरी से अनाज बँटवाने के लिए आ पहुँचे थे और झिंगुरीसिंह के साथ खाट पर बैठे थे।

दातादीन ने सुरती मलते हुए कहा—कुछ सुना, सरकार भी महाजनों से कह रही है कि सूद का दर घटा दो, नहीं डिग्री न मिलेगी।

झिंगुरी तमाखू फाँककर बोले—पण्डित, मैं तो एक बात जानता हूँ। तुम्हें गरज

पड़ेगी तो सौ बार हमसे रुपये उधार लेने आओगे, और हम जो ब्याज चाहेंगे, लेंगे। सरकार अगर असामियों को रुपये उधार देने का कोई बन्दोबस्त न करेगी, तो हमें इस क़ानून से कुछ न होगा। हम दर कम लिखायेंगे ; लेकिन एक सौ में पचीस पहले ही काट लेंगे। इसमें सरकार क्या कर सकती है।

'यह तो ठीक है ; लेकिन सरकार भी इन बातों को खूब समझती है। इसकी भी कोई रोक निकालेगी, देख लेना।'

'इसकी कोई रोक हो ही नहीं सकती।'

'अच्छा, अगर वह सर्त कर दे, जब तक स्टाम्प पर गाँव के मुखिया या कारिन्दा के दसखत न होंगे, वह पक्का न होगा। तब क्या करोगे ?'

'असामी को सौ बार गरज होगी, मुखिया को हाथ-पाँव जोड़के लायेगा और दसखत करायेगा। हम तो एक चौथाई काट ही लेंगे।'

'और जो फँस जाओ !-जाली हिसाब लिखा और गये चौदह साल को।'

झिंगुरीसिंह ज़ोर से हँसे—तुम क्या कहते हो पण्डित, क्या तब संसार बदल जायेगा। क़ानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है। क़ानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई ज़मींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है। रोज ही देखते हो। ज़मींदार मुसक बँधवाके पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है, उससे न ज़मींदार बोलता है, न महाजन। ऐसे आदमियों से हम मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आदमियों की गर्दन दबाते हैं। तुम्हारे ही ऊपर राय साहब के पाँच सौ रुपये निकलते हैं ; लेकिन नोखेराम में है इतनी हिम्मत कि तुमसे कुछ बोलें ? वह जानते हैं, तुमसे मेल करने ही में उनका हित है। किस असामी में इतना बूता है कि रोज अदालत दौड़े। सारा कारबार इसी तरह चला जायगा, जैसे चल रहा है। कचहरी-अदालत उसी के साथ है, जिसके पास पैसा है। हम लोगों को घबराने की कोई बात नहीं।

यह कहकर उन्होंने खलिहान का एक चक्कर लगाया और फिर आकर खाट पर बैठते हुए बोले—हाँ, मतई के ब्याह का क्या हुआ ? हमारी सलाह तो है कि उसका ब्याह कर डालो। अब तो बड़ी बदनामी हो रही है।

दातादीन को जैसे ततैया ने काट खाया। इस आलोचना का क्या आशय था,

वह खूब समझते थे। गर्म होकर बोले—पीठ पीछे आदमी जो चाहे, बके; हमारे मुँह पर कोई कुछ कहे, तो उसकी मूँछें उखाड़ लूँ। कोई हमारी तरह नेमी बन तो ले। कितनों को जानता हूँ, जो कभी सन्ध्या-बन्दन नहीं करते, न उन्हें धरम से मतलब, न करम से; न कथा से मतलब, न पुरान से। वह भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। हमारे ऊपर क्या हँसेगा कोई, जिसने अपने जीवन में एक एकादशी भी नागा नहीं की, कभी बिना स्नान-पूजन किये मुँह में पानी नहीं डाला। नेम निभाना कठिन है। कोई बता दे कि हमने कभी बजार की कोई चीज़ खाई हो, या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो, तो उसकी टाँग की राह निकल जाऊँ। सिलिया हमारी चौखट नहीं लाँघने पाती, चौखट; बरतन-भाँड़े छूना तो दूसरी बात है। मैं यह नहीं कहता कि मतई यह बहुत अच्छा काम कर रहा है; लेकिन जब एक बार एक बात हो गई तो यह पाजी का काम है कि औरत को छोड़ दे। मैं तो खुल्लमखुल्ला कहता हूँ, इसमें छिपाने की कोई बात नहीं। स्त्री-जाति पवित्र है।

दातादीन अपनी जवानी में स्वयं बड़े रसिया रह चुके थे; लेकिन अपने नेम-धर्म से कभी नहीं चूके। मातादीन भी सुयोग्य पुत्र की भाँति उन्हीं के पद-चिह्नों पर चल रहा था। धर्म का मूल तत्त्व है पूजा पाठ, कथा-व्रत और चौका-चूल्हा। जब पिता-पुत्र दोनों ही मूल तत्त्व को पकड़े हुए हैं, तो किसकी मजाल है कि उन्हें पथ-भ्रष्ट कह सके।

झिंगुरीसिंह ने क़ायल होकर कहा—मैंने तो भाई! जो सुना था, वह तुमसे कह दिया।

दातादीन ने महाभारत और पुराणों से ब्राह्मणों द्वारा अन्य जातियों की कन्याओं के ग्रहण किये जाने की एक लम्बी सूची पेश की और यह सिद्ध कर दिया कि उनसे जो सन्तान हुई, वह ब्राह्मण कहलाई और आजकल के जो ब्राह्मण हैं, वह उन्हीं सन्तानों की सन्तान हैं। यह प्रथा आदिकाल से चली आई है और इसमें कोई लज्जा की बात नहीं।

झिंगुरीसिंह, उनके पाण्डित्य पर मुग्ध होकर बोले—तब क्यों आजकल लोग बाजपेयी और सुकुल बने फिरते हैं।

'समय-समय की परथा है, और क्या। किसी में उतना तेज तो हो। बिस खाकर उसे पचाना तो चाहिए। वह सतयुग की बात थी, सतयुग के साथ गई। अब तो

अपना निबाह बिरादरी के साथ मिलकर रहने में है ; मगर करूँ क्या, कोई लड़कीवाला आता ही नहीं। तुमसे भी कहा, औरों से भी कहा, कोई नहीं सुनता, तो मैं क्या लड़की बनाऊँ ?'

झिंगुरीसिंह ने डाँटा—झूठ मत बोलो पण्डित, मैं दो आदमियों को फाँस-फूँसकर लाया ; मगर तुम मुँह फैलाने लगे, तो दोनों कान खड़े करके निकल भागे। आखिर किस बिरते पर हजार-पाँच सौ माँगते हो तुम ? दस बीघे खेत और भीख के सिवा तुम्हारे पास और क्या है ?

दातादीन के अभिमान को चोट लगी। डाढ़ी पर हाथ फेरकर बोले—मेरे पास कुछ न सही, मैं भीख ही माँगता हूँ ; लेकिन मैंने अपनी लड़कियों के ब्याह में पाँच-पाँच सौ दिये हैं ; फिर लड़के के लिए पाँच सौ क्यों न माँगू ? किसी ने सेंत-मेंत में मेरी लड़की ब्याह ली होती, तो मैं भी सेंत में लड़का ब्याह देता। रही हैसियत की बात। तुम जजमानी को भीख समझो, मैं तो उसे जमींदारी समझता हूँ, बंक-घर। जमींदारी मिट जाय ; बंक-घर टूट जाय ; लेकिन जजमानी अन्त तक बनी रहेगी। जब तक हिन्दू-जाति रहेगी, तब तक ब्राम्हन भी रहेंगे और जजमानी भी रहेगी। सहालग में मजे से घर बैठे सौ-दो-सौ फटकार लेते हैं। कभी भाग लड़ गया, तो चार-पाँच सौ मार लिया। कपड़े, बरतन, भोजन अलग। कहीं-न-कहीं नित ही कार-परोजन पड़ा ही रहता है। कुछ न मिले तब भी एक-दो थाल और दो-चार आने दच्छिना के मिल ही जाते हैं। ऐसा चैन न जमींदारी में है, न साहूकारी में। और फिर मेरा तो सिलिया से जितना उबार होता है, उतना ब्राह्मण की कन्या से क्या होगा। वह तो बहुरिया बनी बैठी रहेगी। बहुत होगा, रोटियाँ पका देगी। यहाँ सिलिया अकेली तीन आदमियों का काम करती है। और मैं उसे रोटी के सिवा और क्या देता हूँ। बहुत हुआ, तो साल में एक धोती दे दी।

दूसरे पेड़ के नीचे दातादीन का निजी पैरा था। चार बैलों से मँड़ाई हो रही थी। धन्ना चमार बैलों को हाँक रहा था, सिलिया पैरे से अनाज निकाल-निकालकर ओसा रही थी और मातादीन दूसरी ओर बैठा अपनी लाठी में तेल मल रहा था।

सिलिया साँवली, सलोनी, छरहरी बालिका थी, जो रूपवती न होकर भी आकर्षक थी। उसके हास में, चितवन में, अंगों के विलास में हर्ष का उन्माद था, जिससे उसकी बोटी-बोटी नाचती रहती थी। सिर से पाँव तक भूसे के अणुओं में सनी,

पसीने से तर, सिर के बाल आधे खुले, वह दौड़-दौड़कर अनाज ओसा रही थी, मानों तन-मन से कोई खेल खेल रही हो।

मातादीन ने कहा—आज साँझ तक अनाज बाकी न रहे सिलिया! तू थक गई हो, तो मैं आऊँ? सिलिया प्रसन्न-मुख बोली—तुम काहे को आओगे पण्डित! मैं सम्झा तक सब ओसा दूँगी।

'अच्छा, तो मैं अनाज ढो-ढोकर रख आऊँ। तू अकेली क्या-क्या कर लेगी?'

'तुम घबड़ाते क्यों हो, मैं ओसा भी दूँगी, ढोकर रख भी आऊँगी। पहर रात तक यहाँ एक दाना भी न रहेगा।'

दुलारी सहुआइन आज अपना लेहना वसूल करती फिरती थी। सिलिया उसकी दूकान से होली के दिन दो पैसे का गुलाबी रंग लाई थी। अभी तक पैसे न दिये थे। सिलिया के पास आकर बोली—क्यों री सिलिया, महीना-भर रंग लाये हो गया, अभी तक पैसे नहीं दिये। माँगती हूँ, तो मटककर चली जाती है। आज मैं बिना पैसे लिये न जाऊँगी।

मातादीन चुपके से सरक गया था। सिलिया का तन और मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था। सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी, और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाता रहता था।

सिलिया ने आँख उठाकर देखा तो मातादीन वहाँ न था। बोली—चिल्लाओ मत सहुआइन, यह ले लो दो की जगह चार पैसे का अनाज। अब क्या जान लोगी? मैं मरी थोड़े ही जाती थी!

उसने अन्दाज से कोई सेर-भर अनाज ढेर में से निकालकर सहुआइन के फैले हुए अञ्चल में डाल दिया। उसी वक्त मातादीन पेड़ की आड़ से झल्लाया हुआ निकला और सहुआइन का अञ्चल पकड़कर बोला—अनाज सीधे से रख दो सहुआइन, लूट नहीं है।

फिर उसने लाल-लाल आँखों से सिलिया को देखकर डाँटा—तूने अनाज क्यों दे दिया? किससे पूछकर दिया? तू कौन होती है मेरा अनाज देनेवाली?

सहुआइन ने अनाज ढेर में डाल दिया और सिलिया हक्का-बक्का होकर मातादीन का मुँह देखने लगी। ऐसा जान पड़ा, जिस डाल पर वह निश्चिन्त बैठी हुई थी, वह

टूट गई है और अब वह निराधार नीचे गिरी जा रही है। खिसियाये हुए मुँह से, आँखों में आँसू भरकर, सहुआइन से बोली—तुम्हारे पैसे मैं फिर दे दूँगी सहुआइन, आज मुझ पर दया करो।

सहुआइन ने उसे दयार्द्र नेत्रों से देखा और मातादीन को धिक्कार-भरी आँखों से देखती हुई चली गई।

तब सिलिया ने अनाज ओसाते हुए आहत गर्व से पूछा—तुम्हारी चीज में मेरा कुछ अख्तियार नहीं है?

मातादीन आँखें निकालकर बोला—नहीं, तुझे कोई अख्तियार नहीं है। काम करती है, खाती है। जो तू चाहे कि खा भी और लुटा भी, तो यह यहाँ न होगा। अगर तुझे यहाँ न पड़ता पड़ता हो, तो कहीं और जाकर काम कर। मजूरों की कमी नहीं है। सेंत में नहीं लेते, खाना-कपड़ा देते हैं।

सिलिया ने उस पक्षी की भाँति जिसे मालिक ने पर काटकर पिंजरे से निकाल दिया हो, मातादीन की ओर देखा। उस चितवन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की भाँति उसका मन फड़फड़ा रहा था और ऊँची डाल पर, उस उन्मुक्त वायु-मण्डल में उड़ने की शक्ति न पाकर उसी पिंजरे में जा बैठना चाहता था, चाहे उसे बेदाना, बेपानी, पिंजरे की तीलियों से सिर टकराकर मर ही क्यों न जाना पड़े। सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा कौन-सा ठौर है। वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभाव में ब्याहता थी, और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं है, दूसरा अवलम्ब नहीं है। उसे वह दिन याद आये—और अभी दो साल भी तो नहीं हुए—जब यही मातादीन उसके तलवे सहलाता था, जब उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था—सिलिया, जब तक दम में दम है, तुझे ब्याहता की तरह रखूँगा; जब वह प्रेमातुर होकर हार में और बाग में और नदी के तट पर उसके पीछे-पीछे पागलों की भाँति फिरा करता था। और आज उसका यह निष्ठुर व्यवहार! मुट्ठी-भर अनाज के लिए उसका पानी उतार लिया!

उसने कोई जवाब न दिया। कंठ में नमक के एक डले का-सा अनुभव करती हुई आहत हृदय और शिथिल हाथों से फिर काम करने लगी।

उसी वक्त उसकी माँ, बाप, दोनों भाई और कई अन्य चमारों ने न जाने किधर

से आकर मातादीन को घेर लिया। सिलिया की माँ ने आते ही उसके हाथ से अनाज की टोकरी छीनकर फेंक दी और गाली देकर बोली—राँड़, जब तुझे मजूरी ही करनी थी तो घर की मजूरी छोड़कर यहाँ क्यों मरने आई। जब बाम्हन के साथ रहती है, तो बाम्हन की तरह रह। सारी बिरादरी की नाक कटवाकर भी चमारिन ही बनना था, तो यहाँ क्या घी का लौंदा लेने आई थी। चुल्लू-भर पानी में डूब नहीं मरती!

झिंगुरीसिंह और दातादीन दोनों दौड़े और चमारों के बदले हुए तेवर देखकर उन्हें शान्त करने की चेष्टा करने लगे। झिंगुरीसिंह ने सिलिया के बाप से पूछा—क्या बात है चौधरी, किस बात का झगड़ा है?

सिलिया का बाप हरखू साठ साल का बूढ़ा था, काला, दुबला, सूखी मिर्च की तरह पिचका हुआ; पर उतना ही तीक्ष्ण! बोला—झगड़ा कुछ नहीं है ठाकुर, हम आज या तो मातादीन को चमार बनाके छोड़ेंगे, या उनका और अपना रकत एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी-न-किसी के घर तो जायगी ही। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है; मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे। तुम हमें बाम्हन नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें बाम्हन बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह सामरथ नहीं है, तो फिर तुम भी चमार बनो, हमारे साथ खाओ-पियो, हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धरम हमें दो।

दातादीन ने लाठी फटकार कहा—मुँह सँभाल कर बातें कर हरखुआ! तेरी बिटिया वह खड़ी है, ले जा जहाँ चाहे। हमने उसे बाँध नहीं रखा है। काम करती थी, मजूरी लेती थी। यहाँ मजूरों की कमी नहीं है।

सिलिया की माँ उँगली चमकाकर बोली—वाह-वाह पण्डित, खूब नियाव कहते हो। तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गई होती और तुम इस तरह की बातें करते, तो देखती। हम चमार हैं, इसलिए हमारी कोई इज्जत ही नहीं! हम सिलिया को अकेली न ले जायँगे, उसके साथ मातादीन को भी ले जायँगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी-धर्मी हो। उसके साथ सोओगे; लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे! वही चुड़ैल है कि यह सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती।

हरखू ने अपने साथियों को ललकारा—सुन ली इन लोगों की बात कि नहीं? अब क्या खड़े मुँह ताकते हो।

इतना सुनना था, कि दो चमारों ने लपककर मातादीन के हाथ पकड़ लिये, तीसरे ने झपटकर उसका जनेऊ तोड़ डाला और इसके पहले कि दातादीन और झिंगुरीसिंह अपनी-अपनी लाठी सँभाल सकें, दो चमारों ने मातादीन के मुँह में एक बड़ी-सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया। मातादीन ने दाँत जकड़ लिये, फिर भी वह घिनौनी वस्तु उसके ओठों में तो लग ही गई। उसे मतली हुई और मुँह आप-से-आप खुल गया और हड्डी कण्ठ तक जा पहुँची। इतने में खलिहान के सारे आदमी जमा हो गये; पर आश्चर्य यह कि कोई इन धर्म के लुटेरों से मुज़ाहिम न हुआ। मातादीन का व्यवहार सभी को नापसन्द था। वह गाँव की बहू-बेटियों को घूरा करता था; इसलिए मन में सभी उसकी दुर्गति से प्रसन्न थे, हाँ, ऊपरी मन से लोग चमारों पर रोब जमा रहे थे।

होरी ने कहा—अच्छा, अब बहुत हुआ हरखू! भला चाहते हो, तो यहाँ से चले जाओ।

हरखू ने निडरता से उत्तर दिया—तुम्हारे घर में भी लड़कियाँ हैं होरी महतो, इतना समझ लो। इस तरह गाँव की मरजाद बिगड़ने लगी, तो किसी की आबरू न बचेगी।

एक क्षण में शत्रु पर पूरी विजय पाकर आक्रमणकारियों ने वहाँ से टल जाना ही उचित समझा। जन-मत बदलते देर नहीं लगती। उससे बचे रहना ही अच्छा।

मातादीन कै कर रहा था। दातादीन ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा—एक-एक को पाँच-पाँच साल के लिए न भेजवाया, तो कहना। पाँच पाँच साल तक चक्की पिसवाऊँगा।

हरखू ने हेकड़ी के साथ जवाब दिया—इसका यहाँ कोई गम नहीं। कौन तुम्हारी तरह बैठे मौज करते हैं। जहाँ काम करेंगे, वहीं आधा पेट दाना मिल जायगा।

मातादीन कै कर चुकने के बाद निर्जीव-सा ज़मीन पर लेट गया, मानों कमर टूट गई हो, मानों डूब मरने के लिए चुल्लू-भर पानी खोज रहा हो। जिस मर्यादा के बल पर उसकी रसिकता और घमण्ड और पुरुषार्थ अकड़ता फिरता था, वह मिट

चुकी थी। उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुँह को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी खान-पान, छूत विचार पर टिका हुआ था। आज उस धर्म की जड़ कट गई। अब वह लाख प्रायश्चित्त करे, लाख गोबर खाय और गंगाजल पिये, लाख दान-पुण्य और तीर्थ-व्रत करे, उसका मरा हुआ धर्म जी नहीं सकता; अगर अकेले की बात होती, तो छिपा ली जाती; यहाँ तो सबके सामने उसका धर्म लुटा। अब उसका सिर हमेशा के लिए नीचा हो गया। आज से वह अपने ही घर में अछूत समझा जायगा। उसकी स्नेहमयी माता भी उससे घृणा करेगी। और संसार से धर्म का ऐसा लोप हो गया कि इतने आदमी केवल खड़े तमाशा देखते रहे। किसी ने चूँ तक न की। एक क्षण पहले जो लोग उसे देखते ही पालागन करते थे, अब उसे देखकर मुँह फेर लेंगे। वह किसी मन्दिर में भी न जा सकेगा, न किसी के बरतन-भाँड़े छू सकेगा। और यह सब इस अभागिन सिलिया के कारण।

सिलिया जहाँ अनाज ओसा रही थी, वहीं सिर झुकाये खड़ी थी, मानों यह उसी की दुर्गति हो रही है। सहसा उसकी माँ ने आकर डाँटा—खड़ी ताकती क्या है, चल सीधे घर, नहीं बोटी-बोटी काट डालूँगी। बाप-दादा का नाम तो खूब उजागिर कर चुकी, अब क्या करने पर लगी है!

सिलिया मूर्तिवत् खड़ी रही। माता पिता और भाइयों पर उसे क्रोध आ रहा था। यह लोग क्यों उसके बीच में बोलते हैं। वह जैसे चाहती है, रहती है, दूसरों से क्या मतलब? कहते हैं, यहाँ तेरा अपमान होता है, तब क्या कोई ब्राह्मन उसका पकाया खा लेगा? उसके हाथ का पानी पी लेगा? अभी ज़रा देर पहले उसका मन मातादीन के निठुर व्यवहार से खिन्न हो रहा था; पर अपने घरवालों और बिरादरी के इस अत्याचार ने उस विराग को प्रचण्ड अनुराग का रूप दे दिया।

विद्रोह-भरे मन से बोली—मैं कहीं नहीं जाऊँगी। तू क्या यहाँ भी मुझे जीने न देगी?

बुढ़िया कर्कश स्वर में बोली—तू न चलेगी?

'नहीं।'

'चल सीधे-से।'

'नहीं जाती।'

तुरत दोनों भाइयों ने उसके हाथ पकड़ लिये और उसे घसीटते हुए ले चले। सिलिया ज़मीन पर बैठ गई। भाइयों ने इस पर भी न छोड़ा। घसीटते ही रहे। उसकी साड़ी फट गई, पीठ और कमर की खाल छिल गई; पर राज़ी न हुई।

तब हरखू ने लड़कों से कहा—अच्छा, अब इसे छोड़ दो। समझ लेंगे, मर गई; मगर अब जो कभी मेरे द्वार पर आई, तो लहू पी जाऊँगा।

सिलिया जान पर खेलकर बोली—हाँ; जब तुम्हारे द्वार पर जाऊँ, तो पी लेना।

बुढ़िया ने क्रोध के उन्माद में सिलिया को कई लातें जमाईं और हरखू ने उसे हटा न दिया होता, तो शायद प्राण ही लेकर छोड़ती।

बुढ़िया फिर झपटी, तो हरखू ने उसे धक्के देकर पीछे हटाते हुए कहा—तू बड़ी हत्यारिनी है, कलिया! क्या उसे मार ही डालेगी?

सिलिया बाप के पैरों से लिपटकर बोली—मार डालो दादा, सब जने मिलकर मार डालो। हाय अम्माँ, तुम इतनी निर्दयी हो; इसीलिए दूध पिलाकर पाला था? सौर में ही क्यों न गला घोंट दिया? हाय! मेरे पीछे पण्डित को भी तुमने भिरस्ट कर दिया। उसका धरम लेकर तुम्हें क्या मिला? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा, लेकिन पूछे या न पूछे, रहूँगी तो उसी के साथ। वह मुझे चाहे भूखों रखे, चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोड़ूँगी। उसकी इतनी साँसत कराके छोड़ दूँ? मर जाऊँगी, पर हरजाई न बनूँगी, एक बार जिसने बाँह पकड़ ली, उसी की रहूँगी।

कलिया ने ओठ चबाकर कहा—जाने दो राँड़ को। समझती है, वह इसका निबाह करेगा; मगर आज ही मारकर भगा न दे तो मुँह न दिखाऊँ।

भाइयों को भी दया आ गई। सिलिया को वहीं छोड़कर सब-के-सब चले गये। तब वह धीरे से उठकर लँगड़ाती, कराहती, खलिहान में आकर बैठ गई और अंचल में मुँह ढाँपकर रोने लगी।

दातादीन ने जुलाहे का गुस्सा डाढ़ी पर उतारा—उनके साथ चली क्यों नहीं गई री सिलिया! अब क्या करवाने पर लगी हुई है? मेरा सत्यानास कराके भी पेट नहीं भरा!

सिलिया ने आँसू भरी आँखें ऊपर उठाईं। उनमें तेज की झलक थी।

'उनके साथ क्यों जाऊँ ? जिसने बाँह पकड़ी है, उसके साथ रहूँगी।'

पण्डितजी ने धमकी दी—मेरे घर में पाँव रखा, तो लातों से बात करूँगा।

सिलिया ने भी उद्दण्डता से कहा—मुझे जहाँ वह रखेंगे, वहाँ रहूँगी। पेड़ तले रखें, चाहे महल में रखें।

मातादीन सज्ञाहीन-सा बैठा था। दोपहर होने आ रहा था। धूप पत्तियों से छन-छनकर उसके चेहरे पर पड़ रही थी। माथे से पसीना टपक रहा था। पर वह मौन, निःस्पन्द बैठा हुआ था।

सहसा जैसे उसने होश में आकर कहा—मेरे लिए अब क्या कहते हो दादा ?

दातादीन ने उसके सिर पर हाथ रखकर ढाढ़स देते हुए कहा—तुम्हारे लिए अभी मैं क्या कहूँ बेटा ? चलकर नहाओ, खाओ। फिर पण्डितों की जैसी व्यवस्था होगी, वैसा किया जायगा। हाँ, एक बात है ; सिलिया को त्यागना पड़ेगा।

मातादीन ने सिलिया की ओर रक्त-भरे नेत्रों से देखा—मैं अब उसका कभी मुँह न देखूँगा ; लेकिन परासचित हो जाने पर फिर तो कोई दोष न रहेगा ?

'परासचित हो जाने पर कोई दोष-पाप नहीं रहता।'

'तो आज ही पण्डितों के पास जाओ।'

'आज ही जाऊँगा, बेटा !'

'लेकिन पण्डित लोग कहें कि इसका परासचित नहीं हो सकता, तब ?'

'उनकी जैसी इच्छा।'

'तो तुम मुझे घर से निकाल दोगे ?'

दातादीन ने पुत्र-स्नेह से विह्वल होकर कहा—ऐसा कहीं हो सकता है, बेटा ! धन जाय, धरम जाय, लोक-मरजाद जाय ; पर तुम्हें नहीं छोड़ सकता।

मातादीन ने लकड़ी उठाई और बाप के पीछे-पीछे घर चला। सिलिया भी उठी और लँगड़ाती हुई उसके पीछे हो ली।

मातादीन ने पीछे फिरकर निर्मम स्वर से कहा—मेरे साथ मत आ, मेरा तुझसे कोई वास्ता नहीं। इतनी साँसत करवाके भी तेरा पेट नहीं भरता ?

सिलिया ने धृष्टता के साथ उसका हाथ पकड़कर कहा—वास्ता कैसे नहीं है ? इसी गाँव में तुमसे धनी, तुमसे सुन्दर, तुमसे इज्जतदार लोग हैं। मैं उनका हाथ क्यों नहीं पकड़ती ? तुम्हारी यह दुरदसा ही आज क्यों हुई ? जो रस्सी तुम्हारे गले

में पड़ गई है, उसे तुम लाख चाहो, नहीं तोड़ सकते। और न मैं तुम्हें छोड़कर कहीं जाऊँगी। मजूरी करूँगी, भीख माँगूँगी; लेकिन तुम्हें न छोड़ूँगी।

यह कहते हुए उसने मातादीन का हाथ छोड़ दिया, और फिर खलिहान में जाकर अनाज ओसाने लगी। होरी अभी तक वहाँ अनाज माँड़ रहा था। धनिया उसे भोजन करने के लिए बुलाने आई थी। होरी ने बैलों को पैर से बाहर निकालकर एक पेड़ में बाँध दिया और सिलिया से बोला—तू भी जा, खा-पी आ सिलिया! धनिया यहाँ बैठी है। तेरी पीठ पर की साड़ी तो लहू से रँग गई है रे! कहीं घाव पक न जाय। तेरे घरवाले बड़े निर्दयी हैं।

सिलिया ने उसकी ओर करुण नेत्रों से देखा—यहाँ निर्दयी कौन नहीं है, दादा! मैंने तो किसी को दयावान नहीं पाया।

'क्या कहा पंडित ने?'

'कहते हैं, मेरा तुमसे कोई वास्ता नहीं।'

'अच्छा! ऐसा कहते हैं?'

'समझते होंगे, इस तरह अपने मुँह की लाली रख लेंगे; लेकिन जिस बात को दुनिया जानती है, उसे कैसे छिपा लेंगे। मेरी रोटियाँ भारी हैं, न दें। मेरे लिए क्या? मजूरी अब भी करती हूँ, तब भी करूँगी। सोने को हाथ-भर जगह तुम्हीं से माँगूँगी तो क्या तुम न दोगे?'

धनिया दयार्द्र होकर बोली—जगह की कौन कमी है बेटी! तू चल मेरे घर रह।

होरी ने कातर स्वर में कहा—बुलाती तो है, लेकिन पंडित को जानती नहीं?

धनिया ने निर्भीक भाव से कहा—बिगड़ेंगे तो एक रोटी बेसी खा लेंगे, और क्या करेंगे। कोई उनकी दबैल हूँ। उसकी इज्जत ली, बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं, मेरा तुमसे कोई वास्ता नहीं। आदमी है कि कसाई! यह उसी नीयत का आज फल मिला है। पहले नहीं सोच लिया था। तब तो बिहार करते रहे। अब कहते हैं, मुझसे कौन वास्ता।

होरी के विचार में धनिया गलती कर रही थी। सिलिया के घरवालों ने मतई को कितना बेधरम कर दिया, यह कोई अच्छा काम नहीं किया। सिलिया को चाहे

मारकर ले जाते, चाहे दुलारकर ले जाते। वह उनकी लड़की है। मतई को क्यों बेधरम किया?

धनिया ने फटकार बताई—अच्छा रहने दो, बड़े न्यायी बने हो। मरद-मरद सब एक होते हैं। इसको मतई ने बेधरम किया तब तो किसी को बुरा न लगा। अब जो मतई बेधरम हो गये, तो क्यों बुरा लगता है? क्या सिलिया का धरम धरम ही नहीं? रखी तो चमारिन, उस पर नेमी-धरमी बनते हैं। बड़ा अच्छा किया हरखू चौधरी ने। ऐसे गुण्डों की यही सजा है। तू चल सिलिया मेरे घर। न-जाने कैसे बेदरद माँ-बाप हैं कि बेचारी की सारी पीठ लहूलुहान कर दी। तुम जाके सोना को भेज दो। मैं इसे लेकर आती हूँ।

होरी घर चला और सिलिया धनिया के पैरों पर गिरकर रोने लगी।

१९

सोना सत्रहवें साल में थी और इस साल उसका विवाह करना आवश्यक था। होरी तो दो साल से इसी फ़िक्र में था, पर हाथ खाली होने से कोई क़ाबू न चलता था। मगर इस साल जैसे भी हो, उसका विवाह कर देना ही चाहिए, चाहे क़र्ज लेना पड़े चाहे खेत गिरों रखने पड़ें। और अकेले होरी की बात चलती तो दो साल पहले ही विवाह हो गया होता। वह किफायत से काम करना चाहता था। पर धनिया कहती थी, कितना ही हाथ बाँधकर खर्च करो, दो-ढाई सौ लग ही जायँगे। झुनिया के आ जाने से बिरादरी में इन लोगों का स्थान कुछ हेठा हो गया था, और बिना सौ-दो-सौ दिये कोई कुलीन वर न मिल सकता था। पिछले साल चैती में कुछ न मिला। था तो पंडित मातादीन से आधा-साझा; मगर पण्डितजी ने बीज और मजूरी का कुछ ऐसा ब्योरा बताया कि होरी के हाथ एक चौथाई से ज़्यादा अनाज न लगा। और लगान देना पड़ गया पूरा। ऊख और सन की फसल नष्ट हो गई। सन तो वर्षा अधिक होने, और ऊख दीमक लग जाने के कारण। हाँ, इस साल की चैती अच्छी थी और ऊख भी खूब लगी हुई थी। विवाह के लिए गल्ला तो मौजूद था; दो सौ रुपये भी हाथ आ जायँ, तो कन्या-ऋण से उसका उद्धार हो जाय। अगर गोबर सौ रुपये की मदद कर दे, तो बाकी सौ रुपये होरी को आसानी से मिल जायँगे। झिंगुरीसिंह और मँगरू साह दोनों ही अब कुछ नर्म पड़ गये थे। जब गोबर परदेश में कमा रहा है, तो उनके रुपये मारे न पड़ सकते थे।

एक दिन होरी ने गोबर के पास दो-तीन दिन के लिए जाने का प्रस्ताव किया। मगर धनिया अभी तक गोबर के वह कठोर शब्द न भूली थी। वह गोबर से एक पैसा भी न लेना चाहती थी, किसी तरह नहीं।

होरी ने झुँझलाकर कहा—लेकिन काम कैसे चलेगा, यह बता?

धनिया सिर हिलाकर बोली—मान लो गोबर परदेस न गया होता, तब तुम क्या करते? वही अब करो।

होरी की ज़बान बन्द हो गई। एक क्षण के बाद बोला—मैं तो तुमसे पूछता हूँ।

धनिया ने जान बचाई—यह सोचना मरदों का काम है।

होरी के पास जवाब तैयार था—मान ले, मैं न होता, तू ही अकेली रहती, तब तू क्या करती? वही कर।

धनिया ने तिरस्कार-भरी आँखों से देखा—तब मैं कुस-कन्या भी दे देती, तो कोई हँसनेवाला न था।

कुस-कन्या होरी भी दे सकता था। इसी में उसका मंगल भी था; लेकिन कुल-मर्यादा कैसे छोड़ दे? उसकी बहनों के विवाह में तीन-तीन सौ बराती द्वार पर आये थे। दहेज भी अच्छा ही दिया गया था। नाच-तमाशा, बाजा-गाजा, हाथी-घोड़े सभी आये थे। आज भी बिरादरी में उसका नाम है। दस गाँव के आदमियों से उसका हेल-मेल है। कुश-कन्या देकर वह किसे मुँह दिखायेगा? इससे तो मर जाना अच्छा है। और वह क्यों कुश-कन्या दे? पेड़-पालों हैं, ज़मीन है और थोड़-सी साख भी है। अगर वह एक बीघा भी बेच दे, तो दो सौ मिल जायँ; लेकिन किसान के लिए ज़मीन जान से भी प्यारी है, कुल-मर्यादा से भी प्यारी है। और कुल तीन ही बीघे तो उसके पास हैं; अगर एक बीघा बेच दे, तो फिर खेती कैसे करेगा?

कई दिन इसी हैस-बैस में गुज़रे। होरी कुछ फैसला न कर सका।

दशहरे की छुट्टियों के दिन थे। झिंगुरी, पटेश्वरी और नोखेराम तीनों ही सज्जनों के लड़के छुट्टियों में घर आये थे। तीनों अंग्रेजी पढ़ते थे और यद्यपि तीनों बीस-बीस साल के हो गये थे; पर अभी तक युनिवर्सिटी में जाने का नाम न लेते थे। एक-एक क्लास में दो-दो, तीन-तीन साल पड़े रहते। तीनों की शादियाँ हो चुकी थीं। पटेश्वरी के सपूत बिन्देसरी तो एक पुत्र के पिता भी हो चुके थे। तीनों दिन-

भर तो ताश खेलते, भंग पीते और छैला बने घूमते। वे दिन में कई-कई बार होरी के द्वार की ओर ताकते हुए निकलते और कुछ ऐसा संयोग था कि जिस वक्त वे निकलते, उसी वक्त सोना भी किसी-न-किसी काम से द्वार पर आ खड़ी होती। इन दिनों वह वही साड़ी पहनती थी, जो गोबर उसके लिए लाया था। यह सब तमाशा देख देखकर होरी का खून सूखता जाता था, मानों उसकी खेती चौपट करने के लिए आकाश में ओलेवाले पीले बादल उठे चले आते हों।

एक दिन तीनों उसी कुएँ पर नहाने जा पहुँचे, जहाँ होरी ऊख सींचने के लिए पुर चला रहा था। सोना मोट ले रही थी। होरी का खून आज खौल उठा।

उसी साँझ को वह दुलारी सहुआइन के पास गया। सोचा, औरतों में दया होती है, शायद इसका दिल पसीज जाय और कम सूद पर रुपये दे दे। मगर दुलारी अपना ही रोना ले बैठी। गाँव में ऐसा कोई घर न था जिस पर उसके कुछ रुपये न आते हों, यहाँ तक कि झिंगुरीसिंह पर भी उसके बीस रुपये आते थे; लेकिन कोई देने का नाम न लेता था। बेचारी कहाँ से रुपये लाये?

होरी ने गिड़गिड़ाकर कहा—भाभी, बड़ा पुन्न होगा। तुम रुपये न दोगी, मेरे गले की फाँसी खोल दोगी। झिंगुरी और पटेसरी मेरे खेतों पर दाँत लगाये हुए हैं। मैं सोचता हूँ, बाप-दादों की यही तो निसानी है, यह निकल गई, तो जाऊँगा कहाँ? एक सपूत वह होता है कि घर की सम्पत बढ़ाता है, मैं ऐसा कपूत हो जाऊँ कि बाप-दादों की कमाई पर झाड़ू फेर दूँ।

दुलारी ने क़सम खाई—होरी, मैं ठाकुरजी के चरन छूकर कहती हूँ कि इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। जिसने लिया, वह देता नहीं तो मैं क्या करूँ? तुम कोई गैर तो नहीं हो। सोना भी मेरी ही लड़की है; लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ? तुम्हारा ही भाई हीरा है। बैल के लिए पचास रुपये लिये। उसका तो कहीं पता-ठिकाना नहीं, उसकी घरवाली से माँगो तो लड़ने को तैयार। सोभा भी देखने में बड़ा सीधा-सादा है; लेकिन पैसा देना नहीं जानता। और असल बात तो यह है कि किसी के पास है ही नहीं, दे कहाँ से। सबकी दसा देखती हूँ, इसी मारे सबर कर जाती हूँ। लोग किसी तरह पेट पाल रहे हैं, और क्या। खेत-बारी बेचने की मैं सलाह न दूँगी। कुछ नहीं है, मरजाद तो है।

फिर कनफुसकियों में बोली—पटेसरी लाला का लौंडा तुम्हारे घर की ओर

बहुत चक्कर लगाया करता है। तीनों का वही हाल है। इनसे चौकस रहना। यह सहरी हो गये, गाँव का भाई-चारा क्या समझें। लड़के गाँव में भी हैं; मगर उनमें कुछ लिहाज है, कुछ अदब है, कुछ डर है। ये सब तो छूटे साँड़ हैं। मेरी कौसल्या ससुराल से आई थी, मैंने सबों के ढंग देखकर उसके ससुर को बुलाकर बिदा कर दिया। कोई कहाँ तक पहरा दे।

होरी को मुस्कराते देखकर उसने सरस ताड़ना के भाव से कहा—हँसोगे होरी! तो मैं भी कुछ कह दूँगी। तुम क्या किसी से कम नटखट थे। दिन में पचीसों बार किसी-न-किसी बहाने मेरी दूकान पर आया करते थे; मगर मैंने कभी ताका तक नहीं।

होरी ने मीठे प्रतिवाद के साथ कहा—यह तो तुम झूठ बोलती हो भाभी! मैं बिना कुछ रस पाये थोड़े ही आता था। चिड़िया एक बार परच जाती है, तभी दूसरी बार आँगन में आती है।

'चल झूठे।'

'आँखों से न ताकती रही हो; लेकिन तुम्हारा मन तो ताकता ही था; बल्कि बुलाता था।'

'अच्छा रहने दो, बड़े आये अन्तरजामी बनके। तुम्हें बार-बार मँडराते देखके मुझे दया आ जाती थी, नहीं तुम ऐसे कोई बाँके जवान न थे।'

हुसेनी एक पैसे का नमक लेने आ गया और यह परिहास बन्द हो गया। हुसेनी नमक लेकर चला गया, तो दुलारी ने फिर कहा—गोबर के पास क्यों नहीं चले जाते? देखते भी आओगे और साइत कुछ मिल भी जाय।

होरी निराश मन से बोला—वह कुछ न देगा। लड़के चार पैसे कमाने लगते हैं, तो उनकी आँखें फिर जाती हैं। मैं तो बेहयाई करने को तैयार था; लेकिन धनिया नहीं मानती। उसकी बिना मरजी चला जाऊँ तो घर में रहना अपाढ़ कर दे। उसका सुभाव तो जानती हो।

दुलारी ने कटाक्ष करके कहा—तुम तो मेहरिया के जैसे गुलाम हो गये।

'तुमने पूछा ही नहीं तो क्या करता?'

'मेरी गुलामी करने को कहते तो मैंने लिखा लिया होता, सच!'

'तो अब से क्या बिगड़ा है, लिखा लो न। दो सौ में लिखता हूँ, इन दामों मँहगा नहीं हूँ।'

'तब धनिया से तो न बोलोगे ?'

'नहीं, कहो कसम खाऊँ ।'

'और जो बोले ?'

'तो मेरी जीभ काट लेना ।'

'अच्छा तो जाओ, वर ठीक-ठाक करो, मैं रुपये दे दूँगी ।'

होरी ने सजल नेत्रों से दुलारी के पाँव पकड़ लिये । भावावेश से मुँह बन्द हो गया ।

सहुआइन ने पाँव खींचकर कहा—अब यही सरारत मुझे अच्छी नहीं लगती । मैं साल-भर के भीतर अपने रुपये सूद समेत कान पकड़कर ले लूँगी । तुम तो व्यवहार के ऐसे सच्चे नहीं हो ; लेकिन धनिया पर मुझे विश्वास है । सुना, पण्डित तुमसे बहुत बिगड़े हुए हैं । कहते हैं, इस गाँव से निकालकर न छोड़ा तो बाम्हन नहीं । तुम सिलिया को निकाल बाहर क्यों नहीं करते । बैठे-बैठाये झगड़ा मोल ले लिया ।

'धनिया उसे रखे हुए है, मैं क्या करूँ ?'

'सुना है, पण्डित कासी गये थे । वहाँ एक बड़ा नामी विद्वान पंडित है । वह पाँच सौ माँगता है । तब परासचित करायेगा । भला पूछो, ऐसा अन्धेर कहीं हुआ है । जब धरम नस्ट हो गया, तो एक नहीं, हजार परासचित करो, इससे क्या होता है । तुम्हारे हाथ का छुआ पानी कोई न पियेगा, चाहे जितना परासचित करो ।'

होरी यहाँ से घर चला, तो उसका दिल उछल रहा था । जीवन में ऐसा सुखद अनुभव उसे न हुआ था । रास्ते में शोभा के घर गया और सगाई लेकर चलने के लिए नेवता दे आया । फिर दोनों दातादीन के पास सगाई की सायत पूछने गये । वहाँ से आकर द्वार पर सगाई की तैयारियों की सलाह करने लगे ।

धनिया ने बाहर निकलकर कहा—पहर रात गई, अभी रोटी खाने की बेला नहीं आई ? खाकर बैठो । गपड़चौथ करने को तो सारी रात पड़ी है ।

होरी ने उसे भी परामर्श में शरीक होने का अनुरोध करते हुए कहा—इसी सहालग में लगन ठीक हुआ है । बता, क्या-क्या सामान लाना चाहिए । मुझे तो कुछ मालूम नहीं ।

'जब कुछ मालूम ही नहीं, तो सलाह करने क्या बैठे हो । कुछ रुपये-पैसे का डौल भी हुआ कि मन की मिठाई खा रहे हो ?'

होरी ने गर्व से कहा—तुझे इससे क्या मतलब ? तू इतना बता दे कि क्या-क्या सामान लाना होगा ?

'तो मैं ऐसी मन की मिठाई नहीं खाती ।'

'तू इतना बता दे कि हमारी बहनों के ब्याह में क्या-क्या सामान आया था ।'

'पहले यह बता दो, रुपये मिल गये ?'

'हाँ, मिल गये, और नहीं क्या भंग खाई है ।'

'तो पहले चलकर खा लो । फिर सलाह करेंगे ।'

मगर जब उसने सुना कि दुलारी से बातचीत हुई है, तो नाक सिकोड़कर बोली—उससे रुपये लेकर आज तक कोई उरिन हुआ है ? चुड़ैल कितना कसकर सूद लेती है ।

'लेकिन करता क्या ? दूसरा देता कौन है ?'

'यह क्यों नहीं कहते कि इसी बहाने दो गाल हँसने-बोलने गया था । बूढ़े हो गये ; पर वह बान न गई ।'

'तू तो धनिया, कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करने लगती है। मेरे-जैसे फटेहालों से वह हँसे-बोलेगी ? सीधे मुँह बात तो करती नहीं ।'

'तुम-जैसों को छोड़कर उसके पास और जायगा ही कौन ?'

'उसके द्वार पर अच्छे-अच्छे नाक रगड़ते हैं धनिया, तू क्या जाने । उसके पास लच्छमी है ।'

'उसने जरा-सी हामी भर दी, तो तुम चारों ओर खुसखबरी लेकर दौड़े ।'

'हामी नहीं भर दी, पक्का वादा किया है ।'

होरी रोटी खाने गया और शोभा अपने घर चला गया, तो सोना सिलिया के साथ बाहर निकली । वह द्वार पर खड़ी सारी बातें सुन रही थी । उसकी सगाई के लिए दो सौ रुपये दुलारी से उधार लिये जा रहे हैं, यह बात उसके पेट में इस तरह खलबली मचा रही थी, जैसे ताजा चूना पानी में पड़ गया हो । द्वार पर एक कुप्पी जल रही थी, जिससे ताक के ऊपर की दीवार काली हो गई थी । दोनों बैल नांद में सानी खा रहे थे और एक कुत्ता ज़मीन पर टुकड़े के इन्तजार में बैठा हुआ था । दोनों युवतियाँ बैलों की चरनी के पास आकर खड़ी हो गईं ।

सोना बोली—तूने कुछ सुना? दादा सहुआइन से मेरी सगाई के लिए दो सौ रुपये उधार ले रहे हैं।

सिलिया घर का रत्ती-रत्ती हाल जानती थी। बोली—घर में पैसा नहीं है, तो क्या करें।

सोना ने सामने के काले वृक्षों की ओर ताकते हुए कहा—मैं ऐसा नहीं करना चाहती, जिसमें माँ-बाप को कर्जा लेना पड़े। कहाँ से देंगे बेचारे, बता? पहले ही कर्ज के बोझ से दबे हुए हैं। दो सौ और ले लेंगे, तो बोझा और भारी होगा, कि नहीं?

'बिना दान-दहेज के बड़े आदमियों का कहीं ब्याह होता है पगली! बिना दहेज के तो कोई बूढ़ा ठेला ही मिलेगा। जायगी बूढ़े के साथ?'

'बूढ़े के साथ क्यों जाऊँ? भैया बूढ़े थे जो झुनिया को ले आये? उन्हें किसने के पैसे दहेज में दिये थे?'

'उसमें बाप दादा का नाम डूबता है।'

'मैं तो सोनारीवालों से कह दूँगी, अगर तुमने एक पैसा भी दहेज लिया, तो मैं तुमसे ब्याह न करूँगी।'

सोना का विवाह सोनारी के एक धनी किसान के लड़के से ठीक हुआ था।

'और जो वह कह दे कि मैं क्या करूँ, तुम्हारे बाप देते हैं, मेरे बाप लेते हैं, इसमें मेरा क्या अख्तियार है?'

सोना ने जिस अस्त्र को रामबाण समझा था, अब मालूम हुआ कि वह बाँस की कैन है। हताश होकर बोली—मैं एक बार उससे कहके देख लेना चाहती हूँ; अगर उसने कह दिया, मेरा कोई अख्तियार नहीं है, तो क्या गोमती यहाँ से बहुत दूर हैं। डूब मरूँगी। माँ-बाप ने मर-मरके पाला-पोसा। उसका बदला क्या यही है कि उनके घर से जाने लगूँ, तो उन्हें कर्ज से और लादती जाऊँ? माँ-बाप को भगवान् ने दिया हो, तो खुशी से जितना चाहें, लड़की को दें, मैं मना नहीं करती; लेकिन जब वह पैसे-पैसे को तंग हो रहे हैं, आज महाजन नालिश करके लिल्लाम करा ले, तो कल मजूरी करनी पड़े, तो कन्या का धरम यही है कि डूब मरे। घर की जमीन-जैजात तो बच जायगी, रोटी का सहारा तो रह जायगा। माँ-बाप चार दिन मेरे नाम को रोकर सन्तोष कर लेंगे। यह तो न होगा कि मेरा ब्याह करके

उन्हें जनम-भर रोना पड़े। तीन-चार साल में दो सौ के दूने हो जायँगे। दादा कहाँ से लाकर देंगे?

सिलिया को जान पड़ा, जैसे उसकी आँख में नई ज्योति आ गई है। आवेश में सोना को छाती से लगाकर बोली—तूने इतनी अक्ल कहाँ से सीख ली सोना? देखने में तो तू बड़ी भोली-भाली है।

'इसमें अक्ल की कौन बात है चुड़ैल! क्या मेरे आँखें नहीं हैं, कि मैं पागल हूँ? दो सौ मेरे ब्याह में लें। तीन-चार साल में वह दूना हो जाय। तब रुपिया के ब्याह में दो सौ और लें। जो कुछ खेती-बारी है, सब लिलाम-तिलाम हो जाय, और द्वार-द्वार भीख माँगते फिरें। यही न? इससे तो कहीं अच्छा है कि मैं अपनी ही जान दे दूँ। मुँह-अँधेरे सोनारी चली जाना और उसे बुला लाना; मगर नहीं, बुलाने का काम नहीं। मुझे उससे बोलते लाज आयेगी। तू ही मेरा यह सन्देसा कह देना। देख, क्या जवाब देते हैं। कौन दूर है। नदी के उस पार ही तो है। कभी-कभी ढोर लेकर इधर आ जाता है। एक बार उसकी भैंस मेरे खेत में पड़ गई थी, तो मैंने उसे बहुत गालियाँ दी थीं। हाथ जोड़ने लगा। हाँ, यह तो बता, इधर मतई से तेरी भेंट नहीं हुई? सुना, बाम्हन लोग उन्हें बिरादरी में नहीं ले रहे हैं।

सिलिया ने हिकारत के साथ कहा—बिरादरी में क्यों न लेंगे? हाँ, बूढ़ा रुपये नहीं खरच करना चाहता। इसको पैसा मिल जाय, तो झूठी गंगा उठा ले। लड़का आजकल बाहर ओसारे में टिक्कड़ लगाता है।

'तू इसे छोड़ क्यों नहीं देती? अपनी बिरादरी में किसी के साथ बैठ जा और आराम से रह। वह तेरा अपमान तो न करेगा।'

'हाँ रे, क्यों नहीं, मेरे पीछे उस बेचारे की इतनी दुरदसा हुई, अब मैं उसे छोड़ दूँ! अब वह चाहे पण्डित बन जाय, चाहे देवता बन जाय, मेरे लिए तो वही मतई है, जो मेरे पैरों पर सिर रगड़ा करता था; और बाम्हन भी हो जाय और बाम्हनी से ब्याह भी कर ले, फिर भी जितनी उसकी सेवा मैंने की है, वह कोई बाम्हनी क्या करेगी। अभी मान-मरजाद के मोह में वह चाहे मुझे छोड़ दे; लेकिन देख लेना, फिर दौड़ा आयेगा।'

'आ चुका अब। तुझे पा जाय तो कच्चा ही खा जाय।'

'तो उसे बुलाने ही कौन जाता है। अपना-अपना धरम अपने-अपने साथ है। वह अपना धरम तोड़ रहा है, तो मैं अपना धरम क्यों तोड़ूँ।'

प्रातःकाल सिलिया सोनारी की ओर चली ; लेकिन होरी ने रोक लिया। धनिया के सिर में दर्द था। उसकी जगह क्यारियों को बराना था। सिलिया इनकार न कर सकी। वहाँ से जब दोपहर को छुट्टी मिली तो वह सोनारी चली।

इधर तीसरे पहर होरी फिर कुएँ पर चला तो सिलिया का पता न था। बिगड़कर बोला—सिलिया कहाँ उड़ गई? रहती है, रहती है न जाने किधर चल देती है, जैसे किसी काम में जी ही नहीं लगता। तू जानती है सोना, कहाँ गई है?

सोना ने बहाना किया। मुझे तो कुछ मालूम नहीं। कहती थी, धोबिन के घर कपड़े लेने जाना है, वहीं चली गई होगी।

धनिया ने खाट से उठकर कहा—चलो, मैं क्यारी बराये देती हूँ। कौन उसे मजूरी देते हो जो उसे बिगड़ रहे हो।

'हमारे घर में रहती नहीं है? उसके पीछे सारे गाँव में बदनाम नहीं हो रहे हैं?'

'अच्छा रहने दो, एक कोने में पड़ी हुई है, तो उससे किराया लोगे?'

'एक कोने में नहीं पड़ी हुई है, एक पूरी कोठरी लिये हुए है।'

'तो उस कोठरी का किराया होगा कोई पचास रुपये महीना।'

'उसका किराया एक पैसा सही। हमारे घर में रहती है, जहाँ जाय, पूछकर जाय। आज आती है तो खबर लेता हूँ।'

पुर चलने लगा। धनिया को होरी ने न आने दिया। रूपा क्यारी बराती थी। और सोना मोट ले रही थी। रूपा गीली मिट्टी के चूल्हे और बरतन बना रही थी, और सोना सशंक आँखों से सोनारी की ओर ताक रही थी। शंका भी थी, आशा भी थी; शंका अधिक थी, आशा कम। सोचती थी, उन लोगों को रुपये मिल रहे हैं, तो क्यों छोड़ने लगे। जिनके पास पैसे हैं, वे तो पैसे पर और भी जान देते हैं। और गौरी महतो तो एक ही लालची हैं। मथुरा में दया है, धरम है; लेकिन बाप की इच्छा जो होगी, वही उसे माननी पड़ेगी ; मगर सोना भी बचा को ऐसा फटकारेगी कि याद करेंगे। वह साफ़ कहेगी, जाकर किसी धनी की लड़की से ब्याह कर, तुम-जैसे पुरुष के साथ मेरा निवाह न होगा। कहीं गौरी महतो मान गये, तो वह उनके चरन धो-धोकर पियेगी। उनकी ऐसी सेवा करेगी कि अपने बाप की भी न की होगी।

और सिलिया को भरपेट मिठाई खिलायेगी। गोबर ने उसे जो रुपया दिया था, उसे वह अभी तक सचे हुए थी। इस मृदु कल्पना से उसकी आँखें चमक उठीं और कपोलों पर हलकी-सी लाली दौड़ गई।

मगर सिलिया अभी तक आई क्यों नहीं? कौन बड़ी दूर है। न आने दिया होगा उन लोगों ने! अहा! वह आ रही है: लेकिन बहुत धीरे-धीरे आती है। सोना का दिल बैठ गया। अभागे नहीं माने साइत, नहीं सिलिया दौड़ती आती। तो सोना से हो चुका ब्याह। मुँह धो रखो।

सिलिया आई ज़रूर; पर कुएँ पर न आकर खेत में क्यारी बराने लगी। डर रही थी, होरी पूछेंगे, कहाँ थी अब तक, तो क्या जवाब देगी। सोना ने यह दो घण्टे का समय बड़ी मुश्किल से काटा। पुर छूटते ही वह भागी हुई सिलिया के पास पहुँची।

'वहाँ जाकर तू मर गई थी क्या? ताकते-ताकते आँखें फूट गईं।'

सिलिया को बुरा लगा—तो क्या मैं वहाँ सोती थी। इस तरह की बात-चीत राह चलते थोड़े ही हो जाती है। अवसर देखना पड़ता है। मथुरा नदी की ओर ढोर चराने गये थे। खोजती-खोजती उनके पास गई और तेरा सन्देसा कहा। ऐसा परसन हुआ कि तुमसे क्या कहूँ। मेरे पाँव पर गिर पड़ा और बोला—सिल्लो, मैंने तो जब से सुना कि सोना मेरे घर में आ रही है, तबसे आँखों की नींद हर गई है। उसकी वह गालियाँ मुझे फल गईं; लेकिन काका को क्या करूँ। वह किसी की नहीं सुनते।

सोना ने टोका—तो न सुनें। सोना भी जिद्दिन है। जो कहा है वह कर दिखायेगी। फिर हाथ मलते रह जायँगे।

'बस उसी छन ढोरों को वहीं छोड़, मुझे लिये हुए गौरी महतो के पास गया। महतो के चार पुर चलते हैं। कुआँ भी उन्हीं का है। दस बीघे ऊख है। महतो को देखके मुझे हँसी आ गई। जैसे कोई घसियारा हो। हाँ, भाग का बली है। बाप-बेटे में खूब कहा-सुनी हुई। गौरी महतो कहते थे, तुमसे क्या मतलब, मैं चाहे कुछ लूँ या न लूँ; तू कौन होता है बोलनेवाला। मथुरा कहता था, तुमको लेना-देना है, तो मेरा ब्याह मत करो, मैं अपना ब्याह जैसे चाहूँगा, कर लूँगा। बात बढ़ गई और गौरी महतो ने पनहियाँ उताकर मथुरा को खूब पीटा। कोई दूसरा लड़का इतनी मार

खाकर बिगड़ खड़ा होता। मथुरा एक घूँसा भी जमा देता, तो महतो फिर न उठते; मगर बेचारा पचासों जूते खाकर भी कुछ न बोला। आँखों में आँसू भरे, मेरी ओर गरीबों की तरह ताकता हुआ चला गया। तब महतो मुझ पर बिगड़ने लगे। सैकड़ों गालियाँ दीं; मगर मैं क्यों सुनने लगी थी। मुझे उनका क्या डर था? मैंने सफा कह दिया—महतो, दो-तीन सौ कोई भारी रकम नहीं है और होरी महतो इतने में बिक न जायँगे, न तुम्हीं धनवान हो जाओगे, वह सब धन नाच-तमासे में ही उड़ जायगा। हाँ, ऐसी बहू न पाओगे।

सोना ने सजल आँखों से पूछा—महतो इतनी ही बात पर उन्हें मारने लगे?

सिलिया ने यह बात छिपा रखी थी। ऐसी अपमान की बात सोना के कानों में न डालना चाहती थी, पर यह प्रश्न सुनकर संयम न रख सकी। बोली—वही गोबर भैयावाली बात थी। महतो ने कहा—आदमी जूठा तभी खाता है जब मीठा हो। कलंक चाँदी से ही धुलता है। इस पर मथुरा बोला—काका कौन घर कलक से बचा हुआ है। हाँ, किसी का खुल गया, किसी का छिपा हुआ है। गौरी महतो भी पहले एक चमारिन से फँसे थे। उससे दो लड़के भी हैं। मथुरा के मुँह से इतना निकलना था कि डोकरे पर जैसे भूत सवार हो गया। जितना लालची है, उतना ही क्रोधी भी है। बिना लिये न मानेगा।

दोनों घर चलीं। सोना के सिर पर चरसा, रस्सा और जुए का भारी बोझ था; पर इस समय वह उसे फूल से भी हल्का लग रहा था। उसके अन्तस्तल में जैसे आनन्द और स्फूर्ति का सोता खुल गया हो। मथुरा की वह वीर मूर्ति सामने खड़ी थी, और वह जैसे उसे अपने हृदय में बैठाकर उसके चरण आँसुओं से पखार रही थी। जैसे आकाश की देवियाँ उसे गोद में उठाये आकाश में छाई हुई लालिमा में लिये चली जा रही हों।

उसी रात को सोना को बड़े ज़ोर का ज्वर चढ़ आया।

तीसरे दिन गौरी महतो ने नाई के हाथ यह पत्र भेजा—

'स्वस्ती श्री सर्बोपमा जोग श्री होरी महतो को गौरीराम का राम-राम बाँचना। आगे जो हम लोगों में दहेज की बातचीत हुई थी, उस पर हमने सान्त मन से बिचार किया, तो समझ में आया कि लेन-देन से बर और कन्या दोनों ही के घरवाले जेर-बार होते हैं। जब हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध हो गया, तो हमें ऐसा व्यवहार करना

चाहिए कि किसी को न अखरे। तुम दान-दहेज की कोई फिकर मत करना, हम तुमको सौगन्ध देते हैं। जो कुछ मोटा-महीन जुरे, बरातियों को खिला देना। हम वह भी न माँगेंगे। रसद का इन्तजाम हमने कर लिया है। हाँ, तुम खुसी-खुर्रमी से हमारी जो खातिर करोगे, वह सिर झुकाकर स्वीकार करेंगे।'

होरी ने पत्र पढ़ा और दौड़ा हुआ भीतर जाकर धनिया को सुनाया। हर्ष के मारे उछला पड़ता था; मगर धनिया किसी विचार में डूबी बैठी रही। एक क्षण के बाद बोली—यह गौरी महतो की भलमनसी है; लेकिन हमें भी तो अपने मरजाद का निबाह करना है। संसार क्या कहेगा! रुपया हाथ का मैल है। उसके लिए कुल-मरजाद नहीं छोड़ा जाता। जो कुछ हमसे हो सकेगा, देंगे, और गौरी महतो को लेना पड़ेगा। तुम यही जवाब लिख दो। माँ बाप की कमाई में क्या लड़की का कोई हक़ नहीं? लिखना क्या है, चलो, मैं नाई से सन्देसा कहलाये देती हूँ।

होरी हतबुद्धि-सा आँगन में खड़ा था और धनिया उस उदारता की प्रतिक्रिया में, जो गौरी महतो की सज्जनता ने जगा दी थी, सन्देशा कह रही थी। फिर उसने नाई को रस पिलाया और बिदाई देकर बिदा किया।

वह चला गया तो होरी ने कहा—यह तूने क्या कर डाला धनिया? तेरा मिजाज आज तक मेरी समझ में न आया। तू आगे भी चलती है, पीछे भी चलती है। पहले तो इस बात पर लड़ रही थी कि किसी से एक पैसा करज मत लो, कुछ देने-दिलाने का काम नहीं है, और जब भगवान् ने गौरी के भीतर पैठकर यह पत्र लिखवाया, तो तूने कुल मरजाद का राग छेड़ दिया। तेरा मरम भगवान् ही जाने।

धनिया बोली—मुँह देखकर बीड़ा दिया जाता है, जानते हो कि नहीं। तब गौरी अपनी सान दिखाते थे, अब वह भलमनसी दिखा रहे हैं। ईंट का जवाब चाहे पत्थर हो; लेकिन सलाम का जवाब तो गाली नहीं है।

होरी ने नाक सिकोड़कर कहा—तो दिखा अपनी भलमनसी। देखें कहाँ से रुपये लाती है!

धनियाँ आँखें चमकाकर बोली—रुपये लाना मेरा काम नहीं है, तुम्हारा काम है

'मैं तो दुलारी से ही लूँगा।

'ले लो उसी से। सूद तो सभी लेंगे। जब डूबना ही है, तो क्या तालाब और क्या गंगा।'

होरी बाहर जाकर चीलम पीने लगा। कितने मजे से गला छूटा जाता था; लेकिन धनिया जब जान छोड़े तब तो। जब देखो, उल्टी ही चलती है। इसे जैसे कोई भूत सवार हो जाता है। घर की दसा देखकर भी इसकी आँखें नहीं खुलतीं।

२०

भोला इधर दूसरी सगाई लाये थे। औरत के बगैर उनका जीवन नीरस था। जब तक झुनिया थी, उन्हें हुक्का-पानी दे देती थी। समय से खाने को बुला ले जाती थी। अब बेचारे अनाथ-से हो गये थे। बहुओं को घर के काम-धाम से छुट्टी न मिलती थी, उनका क्या सेवा-सत्कार करतीं; इसलिए अब सगाई परमावश्यक हो गई थी। संयोग से एक जवान विधवा मिल गई, जिसके पति का देहान्त हुए केवल तीन महीने हुए थे। एक लड़का भी था। भोला की लार टपक पड़ी। झटपट शिकार मार लाये। जब तक सगाई न हुई, उसका घर खोद डाला।

अभी तक उनके घर में जो कुछ था, बहुओं का था। जो चाहती थीं, करती थीं; जैसे चाहती थीं, रहती थीं। जंगी जब से अपनी स्त्री को लेकर लखनऊ चला गया था, कामता की बहू ही घर की स्वामिनी थी। पाँच-छः महीनों में ही उसने तीस-चालीस रुपये अपने हाथ में कर लिये थे। सेर-आध सेर दूध-दही चोरी से बेच लेती थी। अब स्वामिनी हुई उसकी सौतेली सास। उसका नियंत्रण बहू को बुरा लगता था और आये-दिन दोनों में तकरार होती रहती थी। यहाँ तक कि औरतों के पीछे भोला और कामता में भी कहा-सुनी हो गई। झगड़ा इतना बढ़ा कि अलग्योझे की नौबत आ गई। और यह रीति सनातन से चली आई है कि अलग्योझे के समय मार-पीट अवश्य हो। यहाँ भी उस रीति का पालन किया गया। कामता जवान आदमी था। भोला का उस पर जो कुछ दबाव था, वह पिता के नाते था। मगर नई स्त्री लाकर बेटे से आदर पाने का अब उसे कोई हक़ न रहा था। कम-से-कम कामता इसे स्वीकार न करता था। उसने भोला को पटककर कई लातें जमाईं और घर से निकाल दिया। घर की चीज़ें न छूने दीं। गाँववालों में भी किसी ने भोला का पक्ष न लिया। नई सगाई ने उन्हें नक्कू बना दिया था। रात तो उन्होंने किसी तरह एक पेड़ के नीचे काटी, सुबह होते ही नोखेराम के पास जा पहुँचे और अपनी फरियाद सुनाई। भोला का गाँव भी उन्हीं के इलाके में था और इलाके-भर के मालिक-मुखिया

जो कुछ थे, वही थे। नोखेराम को भोला पर तो क्या दया आती; पर उनके साथ एक चटपटी, रँगीली स्त्री देखी, तो चटपट आश्रय देने पर राज़ी हो गये। जहाँ उनकी गायें बँधती थीं, वहीं एक कोठरी रहने को दे दी। अपने जानवरों की देख-भाल, सानी-भूसे के लिए उन्हें एकाएक एक जानकार आदमी की ज़रूरत मालूम होने लगी। भोला को तीन रुपया महीना और सेर-भर रोजाना अनाज पर नौकर रख लिया।

नोखेराम नाटे, मोटे, खल्वाट, लम्बी नाक और छोटी-छोटी आँखोंवाले साँवले आदमी थे। बड़ा-सा पगगड़ बाँधते, नीचा कुरता पहनते और जाड़ों में लिहाफ ओढ़-कर बाहर आते-जाते थे। उन्हें तेल की मालिश कराने में बड़ा आनन्द आता था, इसलिए उनके कपड़े हमेशा मैले, चीकट रहते थे। उनका परिवार बहुत बड़ा था। सात भाई और उनके बाल-बच्चे सभी उन्हीं पर आश्रित थे। उस पर स्वयं उनका लड़का नवें दरजे में अँग्रेज़ी पढ़ता था और उसका बबुआई ठाठ निभाना कोई आसान काम न था। राय साहब से उन्हें केवल बारह रुपये वेतन मिलता था; मगर खर्च सौ रुपये से कौड़ी कम न था। इसलिए असामी किसी तरह उनके चंगुल में फँस जाय तो बिना उसे अच्छी तरह चूसे न छोड़ते थे पहले छः रुपये वेतन मिलता था, तब असामियों से इतनी नोच खसोट न करते थे। जब से बारह रुपये हो गये थे, तब से उनकी तृष्णा और भी बढ़ गई थी; इसलिए राय साहब उनकी तरक्क़ी न करते थे।

गाँव में और तो सभी किसी न किसी रूप में उनका दबाव मानते थे, यहाँ तक कि दातादीन और झिंगुरीसिंह भी उनकी खुशामद करते थे, केवल पटेश्वरी उनसे ताल ठोंकने को हमेशा तैयार रहते थे। नोखेराम को अगर यह ज़ोम था कि हम ब्राह्मण हैं और कायस्थों को उँगली पर नचाते हैं, तो पटेश्वरी को भी घमण्ड था कि हम कायस्थ हैं, क़लम के बादशाह, इस मैदान में कोई हमसे क्या बाज़ी ले जायगा। फिर वह ज़मींदार के नौकर नहीं, सरकार के नौकर हैं, जिसके राज़ में सूरज कभी नहीं डूबता। नोखेराम अगर एकादशी को व्रत रखते हैं और पाँच ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं, तो पटेश्वरी हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा सुनेंगे और दस ब्राह्मणों को भोजन करायेंगे। जब से उनका जेठा लड़का सज़ावल हो गया था, नोखेराम इस ताक में रहते थे कि उनका लड़का किसी तरह दसवाँ पास कर ले, तो उसे भी कहीं नक़लनवीसी दिला दें। इसीलिए हुक्काम के पास फसली

सौगातें लेकर बराबर सलामी करते रहते थे। एक और बात में पटेश्वरी उनसे बढ़े हुए थे। लोगों का खयाल था कि वह अपनी विधवा कहारिन को रखे हुए हैं। अब नोखेराम को भी अपनी शान में यह कसर पूरी करने का अवसर मिलता हुआ जान पड़ा।

भोला को ढारस देते हुए बोले—तुम यहाँ आराम से रहो भोला, किसी बात का खटका नहीं। जिस चीज़ की ज़रूरत हो, हमसे आकर कहो। तुम्हारी घरवाली है, उसके लिए भी कोई न कोई काम निकल आयेगा। बखारों में अनाज रखना, निकालना, पछोड़ना, फटकना क्या थोड़ा काम है?

भोला ने अरज़ की—सरकार एक बार कामता को बुलाकार पूछ लो, क्या बाप के साथ बेटे का यही सलूक होना चाहिए। घर हमने बनवाया, गायें-भैसें हमने लीं। अब उसने सब कुछ हथिया लिया और हमें निकाल बाहर किया। यह अन्याय नहीं तो क्या है। हमारे मालिक तो तुम्हीं हो। तुम्हारे दरबार से इसका फैसला होना चाहिए।

नोखेराम ने समझाया—भोला, तुम उससे लड़कर पेश न पाओगे ; उसने जैसा किया है, उसकी सज़ा उसे भगवान् देंगे। बेईमानी करके कोई आज तक फलीभूत हुआ है? संसार में अन्याय न होता, तो इसे नरक क्यों कहा जाता। यहाँ न्याय और धर्म को कौन पूछता है। भगवान् सब देखते हैं। ससार का रत्ती रत्ती हाल जानते हैं। तुम्हारे मन में इस समय क्या बात है, यह उनसे क्या छिपा है? इसी से तो अन्तरजामी कहलाते हैं। उनसे बचकर कोई कहाँ जायगा? तुम चुपके होके बैठो। भगवान् की इच्छा हुई तो यहाँ तुम उससे बुरे न रहोगे।

यहाँ से उठकर भोला ने होरी के पास जाकर अपना दुखड़ा रोया। होरी ने अपनी बीती सुनाई—लड़कों की आजकल कुछ न पूछो भोला भाई ; मर-मरकर पालो, जवान हों, तो दुसमन हो जायँ। मेरे ही गोबर को देखो। माँ से लड़कर गया, और सालों हो गये, न चिट्ठी, न पत्तर। उसके लेखे तो माँ-बाप मर गये। बिटिया का ब्याह सिर पर है ; लेकिन उससे कोई मतलब नहीं। खेत रेहन रखकर दो सौ रुपये लिये हैं। इज्जत-आबरू का निबाह तो करना ही होगा।

कामता ने बाप को निकाल बाहर तो किया ; लेकिन अब उसे मालूम होने लगा कि बुड्ढा कितना कामकाजी आदमी था। सबेरे उठकर सानी-पानी करना, दूध दुहना,

फिर दूध लेकर बाजार जाना, वहाँ से आकर फिर सानी-पानी करना, फिर दूध दुहना; एक पखवारे में उसका हुलिया बिगड़ गया। स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई। स्त्री ने कहा—मैं जान देने के लिए तुम्हारे घर नहीं आई हूँ। मेरी रोटी तुम्हें भारी हो, तो मैं अपने घर चली जाऊँ। कामता डरा, यह कहीं चली जाय, तो रोटी का ठिकाना भी न रहे, अपने हाथ से ठोंकना पड़े। आखिर एक नौकर रखा; लेकिन उससे काम न चला। नौकर खली-भूसा चुरा-चुराकर बेचने लगा। उसे अलग किया। फिर स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई। स्त्री रूठकर मैके चली गई। कामता के हाथ-पाँव फूल गये। हारकर भोला के पास आया और चिरौरी करने लगा—दादा, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई हो, क्षमा करो। अब चलकर घर सँभालो, जैसे तुम रखोगे, वैसे ही रहूँगा।

भोला को यहाँ मजूरों की तरह रहना अखर रहा था। पहले महीने-दो-महीने उसकी जो खातिर हुई, वह अब न थी। नोखेराम कभी-कभी उससे चिलम भरने या चारपाई बिछाने को भी कहते थे। तब बेचारा भोला ज़हर का घूँट पीकर रह जाता था। अपने घर में लड़ाई-दंगा भी हो, तो किसी की टहल तो न करनी पड़ेगी।

उसकी स्त्री नोहरी ने यह प्रस्ताव सुना तो ऐंठकर बोली—जहाँ से लात खाकर आये, वहाँ फिर जाओगे? तुम्हें लाज भी नहीं आती?

भोला ने कहा—तो यहीं कौन सिंहासन पर बैठा हुआ हूँ।

नोहरी ने मटककर कहा—तुम्हें जाना हो तो जाओ, मैं नहीं जाती।

भोला जानता था, नोहरी विरोध करेगी। इसका कारण भी वह कुछ-कुछ समझता था, कुछ देखता भी था। उसके यहाँ से भागने का एक कारण यह भी था। यहाँ उसकी तो कोई बात न पूछता था; पर नोहरी की बड़ी खातिर होती थी। प्यादे और शहने तक उसका दबाव मानते थे। उसका जवाब सुनकर भोला को क्रोध आया; लेकिन करता क्या। नोहरी को छोड़कर चले जाने का साहस उसमें होता तो नोहरी भी झख मारकर उसके पीछे-पीछे चली जाती। अकेले उसे यहाँ अपने आश्रय में रखने की हिम्मत नोखेराम में न थी। वह टट्टी की आड़ से शिकार खेलने-वाले जीव थे; मगर नोहरी भोला के स्वभाव से परिचित हो चुकी थी।

भोला मिन्नत करके बोला—देख नोहरी, दिक मत कर। अब तो वहाँ बहुएँ भी नहीं हैं। तेरे ही हाथ में सब कुछ रहेगा। यहाँ मजूरी करने से बिरादरी में कितनी बदनामी हो रही है, यह सोच।

नोहरी ने ठेंगा दिखाकर कहा—तुम्हें जाना है जाओ, मैं तुम्हें रोक तो नहीं रही हूँ। तुम्हें बेटे की लातें प्यारी लगती होंगी, मुझे नहीं लगतीं। मैं अपनी मज-दूरी में मगन हूँ।

भोला को रहना पड़ा और कामता अपनी स्त्री की खुशामद करके उसे मना लाया। इधर नोहरी के विषय में कनबतियाँ होती रहीं—नोहरी ने आज गुलाबी साड़ी पहनी है। अब क्या पूछना है, चाहे रोज एक साड़ी पहने। सैयाँ भये कोत-वाल अब डर काहे का। भोला की आँखें फूट गई हैं क्या!

शोभा बड़ा हँसोड़ था। सारे गाँव का विदूषक, बल्कि नारद। हर एक बात की टोह लगाता रहता था। एक दिन नोहरी उसे घर में मिल गई। कुछ हँसी कर बैठा। नोहरी ने नोखेराम से जड़ दिया। शोभा की चौपाल में तलबी हुई और ऐसी डाँट पड़ी कि उम्र-भर न भूलेगा।

एक दिन लाला पटेश्वरीप्रसाद की शामत आ गई। गर्मियों के दिन थे। लाला बगीचे में बैठे आम तुड़वा रहे थे। नोहरी बनी-ठनी उधर से निकली। लाला ने पुकारा—नोहरा रानी, इधर आओ, थोड़े-से आम लेती जाओ, बड़े मीठे हैं।

नोहरी को भ्रम हुआ, लाला मेरा उपहास कर रहे हैं। उसे अब घमण्ड होने लगा था। वह चाहती थी, लोग उसे ज़मींदारिन समझें। और उसका सम्मान करें। घमण्डी आदमी प्रायः शक्की हुआ करता है। और जब मन में चोर हो तो शक्कीपन और भी बढ़ जाता है। वह मेरी ओर देखकर क्यों हँसा? सब लोग मुझे देखकर जलते क्यों हैं? मैं किसी से कुछ माँगने नहीं जाती। कौन बड़ी सतवन्ती है! ज़रा मेरे सामने आये, तो देखूँ। इतने दिनों में नोहरी गाँव के गुप्त रहस्यों से परिचित हो चुकी थी। यही लाला कहारिन को रखे हुए हैं और मुझे हँसते हैं। इन्हें कोई कुछ नहीं कहता। बड़े आदमी हैं न। नोहरी ग़रीब है, जात की हेठी है, इसलिए सभी उसका उपहास करते हैं। और जैसा बाप है, वैसा ही बेटा। इन्हीं का रमेसरी तो सिलिया के पीछे पागल बना फिरता है। चमारियों पर तो गिद्ध की तरह टूटते हैं, उस पर दावा है कि हम ऊँचे हैं।

उसने वहीं खड़े होकर कहा—तुम दानी कब से हो गये लाला! पाओ तो दूसरों की थाली की रोटी उड़ा जाओ। आज बड़े आमवाले हुए हैं। मुझसे छेड़ की तो अच्छा न होगा, कहे देती हूँ।

ओ हो! इस अहीरिन का इतना मिजाज! नोखेराम को क्या फाँस लिया, समझती है, सारी दुनिया पर उसका राज है। बोले—तू तो ऐसी तिनक रही है नोहरी, जैसे अब किसी को गाँव में रहने न देगी। ज़रा ज़बान सँभालकर बातें किया कर, इतनी जल्द अपने को न भूल जा।

'तो क्या तुम्हारे द्वार पर कभी भीख माँगने आई थी?'

'नोखेराम ने छाँह न दी होती, तो भीख भी माँगती।'

नोहरी को लाल मिर्च-सा लगा। जो कुछ मुँह में आया, बका—डाढ़ीजार, लम्पट, मुँहझौंसा और जाने क्या-क्या कहा और उसी क्रोध में भरी हुई अपनी कोठरी में गई और अपने बरतन-भाँडे निकाल-निकालकर बाहर रखने लगी।

नोखेराम ने सुना तो घबराये हुए आये और पूछा—यह क्या कर रही है नोहरी? कपड़े-लत्ते क्यों निकाल रही है? किसी ने कुछ कहा है क्या?

नोहरी मर्दों के नचाने की कला जानती थी। अपने जीवन में उसने यही विद्या सीखी थी। नोखेराम पढ़े-लिखे आदमी थे। क़ानून भी जानते थे। धर्म की पुस्तकें भी बहुत पढ़ी थीं। बड़े-बड़े वकीलों-बैरिस्टरों की जूतियाँ सीधी की थीं; पर इस मूर्ख नोहरी के हाथ का खिलौना बने हुए थे। भौंहें सिकोड़कर बोली—समय का फेर है, यहाँ आ गई; लेकिन अपनी आबरू न गवाऊँगी।

ब्राह्मण सतेज हो उठा। मूँछें खड़ी करके बोला—तेरी ओर जो ताके उसकी आँखें निकाल लूँ।

नोहरी ने लोहे को लाल करके घन जमाया—लाला पटेसरी जब देखो, मुझसे बेबात की बात किया करते हैं। मैं हरजाई थोड़े ही हूँ कि कोई मुझे पैसे दिखाये। गाँव-भर सभी औरतें तो हैं, कोई उनसे नहीं बोलता। जिसे देखो, मुझी को छेड़ता है।

नोखेराम के सिर पर भूत सवार हो गया। अपना मोटा डंडा उठाया और आँधी की तरह हरहराते हुए बाग में पहुँचकर लगे ललकारने—आ जा बड़ा मर्द है तो। मूँछें उखाड़ लूँगा, खोदकर गाड़ दूँगा। निकल आ सामने। अगर फिर कभी नोहरी को छेड़ा होगा, तो खून पी जाऊँगा। सारी पटवारगिरी निकाल दूँगा। जैसा खुद है, वैसा ही दूसरों को समझता है। तू है किस घमंड में?

लाला पटेश्वरी सिर झुकाये, दम साधे जड़वत् खड़े थे। ज़रा भी ज़बान खोली

और शामत आ गई। उनका इतना अपमान जीवन में कभी न हुआ था। एक बार लोगों ने उन्हें ताल के किनारे रात को घेरकर खूब पीटा था; लेकिन गाँव में उसकी किसी को खबर न हुई थी। किसी के पास कोई प्रमाण न था; लेकिन आज तो सारे गाँव के सामने उनकी इज्जत उतर गई। कल जो औरत गाँव में आश्रय माँगती आई थी, आज सारे गाँव पर उसका आतंक था। अब किसको हिम्मत है जो उसे छेड़ सके। जब पटेश्वरी कुछ नहीं कर सके, तो दूसरों की बिसात ही क्या।

अब नोहरी गाँव की रानी थी। उसे आते देखकर किसान लोग उसके रास्ते से हट जाते थे। यह खुला हुआ रहस्य था कि उसकी थोड़ी-सी पूजा करके नोखेराम से बहुत काम निकल सकता है। किसी को बटवारा करना हो, लगान के लिए मुहलत माँगनी हो, मकान बनाने के लिए ज़मीन की ज़रूरत हो, नोहरी की पूजा किये बग़ैर उसका काम सिद्ध नहीं हो सकता। कभी-कभी वह अच्छे-अच्छे असामियों को डाँट देती थी। असामी ही नहीं, अब कारकुन साहब पर भी रोब जमाने लगी थी।

भोला उसके आश्रित बनकर न रहना चाहते थे। औरत की कमाई खाने से ज्यादा अधम उनकी दृष्टि में दूसरा काम न था। उन्हें कुल तीन रुपये माहवार मिलते थे, वह भी उनके हाथ न लगते। नोहरी ऊपर ही ऊपर उड़ा लेती। उन्हें तमाखू पीने को धेला मयस्सर नहीं, और नोहरी दो आने रोज़ के पान खा जाती थी। जिसे देखो, वही उन पर रोब जमाता था। प्यादे उससे चिलम भरवाते, लकड़ी कटवाते, बेचारा दिन-भर का हारा-थका आता और द्वार पर पेड़ के नीचे झिलंगी खाट पर पड़ा रहता। कोई एक लुटिया पानी देनेवाला भी नहीं। दोपहर की बासी रोटियाँ रात को खानी पड़तीं और वह भी नमक या पानी और नमक के साथ।

आखिर हारकर उसने घर जाकर कामता के साथ रहने का निश्चय किया। कुछ न होगा, एक टुकड़ा रोटी तो मिल ही जायगी, अपना घर तो है।

नोहरी बोली—मैं वहाँ किसी की गुलामी करने न जाऊँगी।

भोला ने जी कड़ा करके कहा—तुम्हें जाने को तो मैं नहीं कहता। मैं तो अपने को कहता हूँ।

'तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? कहते लाज नहीं आती?'

'लाज तो घोलकर पी गया।'

'लेकिन मैंने तो अपनी लाज नहीं पी। तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।'

'तू अपने मन की है, तो मैं तेरी गुलामी क्यों करूँ?'

'पंचायत करके मुँह में कालिख लगा दूँगी, इतना समझ लेना।'

'क्या अभी कुछ कम कालिख लगी है? क्या अब भी मुझे धोखे में रखना चाहती है?'

'तुम तो ऐसा ताव दिखा रहे हो, जैसे मुझे रोज गहने ही तो गढ़वाते हो। तो यहाँ नोहरी किसी का ताव सहनेवाली नहीं है।'

भोला झल्लाकर उठे और सिरहाने से लकड़ी उठाकर चले कि नोहरी ने लपककर उनका पहुँचा पकड़ लिया। उसके बलिष्ठ पंजों से निकलना भोला के लिए मुश्किल था। चुपके से कैदी की तरह बैठ गये। एक ज़माना था, जब वह औरतों को उँगलियों पर नचाया करते थे। आज वह एक औरत के करपाश में बँधे हुए हैं और किसी तरह निकल नहीं सकते! हाथ छुड़ाने की कोशिश करके वह परदा नहीं खोलना चाहते। अपनी सीमा का अनुमान उन्हें हो गया है। मगर वह क्यों उससे निडर होकर नहीं कह देते कि तू मेरे काम की नहीं है, मैं तुझे त्यागता हूँ। पंचायत की धमकी देती है। पंचायत क्या कोई हौवा है; अगर तुझे पंचायत का डर नहीं, तो मैं क्यों पंचायत से डरूँ?

लेकिन यह भाव शब्दों में आने का साहस न कर सकता था। नोहरी ने जैसे उन पर कोई वशीकरण डाल दिया हो।

२१

लाला पटेश्वरी पटवारी-समुदाय के सद्गुणों के साक्षात् अवतार थे। वह यह न देख सकते थे कि कोई असामी अपने दूसरे भाई की इञ्च-भर भी ज़मीन दबा ले। न वह यही देख सकते थे कि असामी किसी महाजन के रुपये दबा ले। गाँव के समस्त प्राणियों के हितों की रक्षा करना उनका परम धर्म था। समझौते या मेल-जोल में उनका विश्वास न था। यह निर्जीविता के लक्षण हैं। वह संघर्ष के उपासक थे, जो जीवन का लक्षण है। आये-दिन इस जीवन को उत्तेजना देने का प्रयास करते रहते थे। एक-न-एक फुलझड़ी छोड़ते रहते थे। मँगरू साह पर इन दिनों उनकी विशेष कृपा-दृष्टि थी। मँगरू साह गाँव का सबसे धनी आदमी था; पर स्थानीय राजनीति में बिलकुल भाग न लेता था। रोब या अधिकार की लालसा उसे न थी।

मकान भी उसका गाँव के बाहर था, जहाँ उसने एक बाग और एक कुआँ और एक छोटा-सा शिव-मन्दिर बनवा लिया था। बाल-बच्चा कोई न था; इसलिए लेन-देन भी कम कर दिया था और अधिकतर पूजा-पाठ में ही लगा रहता था। कितने ही असामियों ने उसके रुपये हज़म कर लिये थे; पर उसने किसी पर नालिश फरियाद न की। होरी पर भी उसके सूद-ब्याज मिलाकर कोई डेढ़ सौ हो गये थे; मगर न होरी को ऋण चुकाने की कोई चिन्ता थी और न उसे वसूल करने की। दो-चार बार उसने तक़ाज़ा किया, घुड़का-डाँटा भी; मगर होरी की दशा देखकर चुप हो बैठा। अबकी संयोग से होरी की ऊख गाँव-भर के ऊपर थी। कुछ नहीं तो उसके दो-ढाई सौ सीधे हो जायँगे, ऐसा लोगों का अनुमान था। पटेश्वरीप्रसाद ने मँगरू को सुझाया कि अगर इस वक्त होरी पर दावा कर दिया जाय, तो सब रुपये वसूल हो जायँ। मँगरू इतना दयालु नहीं, जितना आलसी था। झंझट में न पड़ना चाहता था; मगर जब पटेश्वरी ने ज़िम्मा लिया कि उसे एक दिन भी कचहरी न जाना पड़ेगा, न कोई दूसरा कष्ट होगा, बैठे-बैठाये उसकी डिग्री हो जायगी, तो उसने नालिश करने की अनुमति दे दी, और अदालत के खर्च के लिए रुपये भी दे दिये। होरी को खबर भी न थी कि यहाँ क्या खिचड़ी पक रही है। कब दावा दायर हुआ, कब डिग्री हुई, उसे बिलकुल पता न चला। कुर्कअमीन उसकी ऊख नीलाम करने आया, तब उसे मालूम हुआ। सारा गाँव खेत के किनारे जमा हो गया। होरी मँगरू साह के पास दौड़ा और धनिया पटेश्वरी को गालियाँ देने लगी। उसकी सहज-बुद्धि ने बता दिया कि पटेश्वरी ही की यह कारस्तानी है; मगर मँगरू साह पूजा पर थे, मिल न सके, और धनिया गालियों की वर्षा करके भी पटेश्वरी का कुछ बिगाड़ न सकी। उधर ऊख डेढ़ सौ रुपये में नीलाम हो गई और बोली भी हो गई मँगरू साह ही के नाम। कोई दूसरा आदमी न बोल सका। दातादीन में भी धनिया की गालियाँ सुनने का साहस न था।

धनिया ने होरी को उत्तेजित करके कहा—बैठे क्या हो, जाकर पटवारी से पूछते क्यों नहीं, यही धरम है तुम्हारा गाँव-घर के आदमियों के साथ?

होरी ने दीनता से कहा—पूछने के लिए तूने मुँह भी रखा हो। तेरी गालियाँ क्या उन्होंने न सुनी होंगी?

'जो गाली खाने का काम करेगा, उसे गालियाँ मिलेंगी ही।'

'तू गालियाँ भी देगी और भाई-चारा भी निभायेगी ?'

'देखूँगी, मेरे खेत के नगीच कौन आता है।'

'मिलवाले आकर काट ले जायँगे, तू क्या करेगी और मैं क्या करूँगा। गालियाँ देकर अपनी जीभ की खुजली चाहे मिटा ले।'

'मेरे जीते-जी कोई मेरा खेत काट ले जायगा ?'

'हाँ-हाँ, तेरे और मेरे जीते जी। सारा गाँव मिलकर भी उसे नहीं रोक सकता। अब वह चीज़ मेरी नहीं, मँगरू साह की है।'

'मँगरू साह ने मर-मरकर जेठ की दुपहरी में सिंचाई और गोड़ाई की थी ?'

'वह सब तूने किया ; मगर अब वह चीज मँगरू साह की है। हम उनके क़रज़-दार नहीं हैं ?'

ऊख तो गई ; लेकिन उसके साथ ही एक नई समस्या आ पड़ी। दुलारी इसी ऊख पर रुपये देने पर तैयार हुई थी। अब वह किस जमानत पर रुपये दे ? अभी उसके पहले ही के दो सौ पड़े हुए थे। सोचा था, उसके पुराने रुपये मिल जायँगे, तो नया हिसाब चलने लगेगा। उसकी नज़र में होरी की साख दो सौ तक थी। इससे ज़्यादा देना जोखिम था। सहालग सिर पर था। तिथि निश्चित हो चुकी थी। गौरी महतो ने सारी तैयारियाँ कर ली होंगी। अब विवाह का टलना असम्भव था। होरी को ऐसा क्रोध आता था कि जाकर दुलारी का गला दबा दे। जितनी चिरौरी-विनती हो सकती थी, वह कर चुका ; मगर वह पत्थर की देवी ज़रा-सी न पसीजी ; उसने चलते-चलते हाथ बाँधकर कहा—दुलारी ; मैं तुम्हारे रुपये लेकर भाग न जाऊँगा। न इतनी जल्द मरा ही जाता हूँ। खेत हैं, पेड़-पालो हैं, घर है, जवान बेटा है। तुम्हारे रुपये मारे न जायँगे, मेरी इज्ज़त जा रही है, इसे सँभालो ; मगर दुलारी ने दया को व्यापार में मिलाना स्वीकार न किया ; अगर व्यापार को वह दया का रूप दे सकती, तो उसे कोई आपत्ति न होती। पर दया को व्यापार का रूप देना उसने न सीखा था।

होरी ने घर आकर धनिया से कहा—अब ?

धनिया ने उसी पर दिल का गुबार निकाला—यही तो तुम चाहते थे।

होरी ने ज़ख्मी आँखों से देखा—मेरा ही दोष है ?

'किसी का दोष हो। हुई तुम्हारे मन की।'

'तेरी इच्छा है कि ज़मीन रेहन रख दूँ ?'

'ज़मीन रेहन रख दोगे, तो करोगे क्या ?'

'मजूरी ।'

मगर ज़मीन दोनों को एक-सी प्यारी थी । उसी पर तो उनकी इज़्ज़त और आबरू अवलम्बित थी । जिसके पास ज़मीन नहीं, वह गृहस्थ नहीं, मजूर है ।

होरी ने कुछ जवाब न पाकर पूछा—तो क्या कहती है ?

धनिया ने आहत कण्ठ से कहा—कहना क्या है । गौरी बरात लेकर आयेंगे । एक जून खिला देना । सबेरे बेटी बिदा कर देना । दुनिया हँसेगी, हँस ले । भगवान् की यही इच्छा है, कि हमारी नाक कटे, मुँह में कालिख लगे, तो हम क्या करेंगे ।

सहसा नोहरी चुँदरी पहने सामने से जाती हुई दिखाई दी । होरी को देखते ही उसने ज़रा-सा घूँघट निकाल लिया । उससे समधी का नाता मानती थी ।

धनिया से उसका परिचय हो चुका था । उसने पुकारा—आज किधर चलीं समधिन ? आओ, बैठो ।

नोहरी ने दिग्विजय कर लिया था और अब जनमत को अपने पक्ष में बटोर लेने का प्रयास कर रही थी । आकर खड़ी हो गई ।

धनिया ने उसे सिर से पाँव तक आलोचना की आँखों से देखकर कहा—आज इधर कैसे भूल पड़ीं ?

नोहरी ने कातर स्वर में कहा—ऐसे ही तुम लोगों से मिलने चली आई । बिटिया का ब्याह कब तक है ?

धनिया संदिग्ध भाव से बोली—भगवान् के अधीन है, जब हो जाय ।

'मैंने तो सुना, इसी सहालग में होगा । तिथि ठीक हो गई है ?'

'हाँ, तिथि तो ठीक हो गई है ।'

'मुझे भी नेवता देना ।'

'तुम्हारी तो लड़की है, नेवता कैसा ?'

'दहेज का सामान तो मँगवा लिया होगा । ज़रा मैं भी देखूँ ।'

धनिया असमंजस में पड़ी, क्या कहे । होरी ने उसे सँभाला—अभी तो कोई सामान नहीं मँगवाया है, और सामान क्या करना है, कुस-कन्या तो देना है ।

नोहरी ने अविश्वास-भरी आँखों से देखा—कुश-कन्या क्यों दोगे महतो, पहली बेटी है, दिल खोलकर करो।

होरी हँसा, मानों कह रहा हो, तुम्हें चारों ओर हरा दिखाई देता होगा, यहाँ तो सूखा ही पड़ा हुआ है।

'रुपये-पैसे की तंगी है, क्या दिल खोलकर करूँ। तुमसे कौन परदा है।'

'बेटा कमाता है, तुम कमाते हो; फिर भी रुपये-पैसे की तंगी? किसे विस्वास आयेगा?'

'बेटा ही लायक होता, तो फिर काहे का रोना था। चिट्ठी-पत्तर तक भेजता नहीं, रुपये क्या भेजेगा। यह दूसरा साल है, एक चिट्ठी नहीं।'

इतने में सोना बैलों के चारे के लिए हरियाली का एक गट्ठा सिर पर लिये, यौवन को अपने अंचल से चुराती, बालिका-सी सरल, आई और गट्ठा वहीं पटककर अन्दर चली गई।

नोहरी ने कहा—लड़की तो खूब सयानी हो गई है।

धनिया बोली—लड़की की बाढ़ रेंड़ की बाढ़ है। है के दिन की?

'बर तो ठीक हो गया है न?'

'हाँ, बर तो ठीक है। रुपये का बन्दोबस्त हो गया, तो इसी महीने में ब्याह कर देंगे।'

नोहरी दिल की ओछी थी। इधर उसने जो थोड़े-से रुपये जोड़े थे, वे उसके पेट में उछल रहे थे; अगर वह सोना के ब्याह के लिए कुछ रुपये दे दे, तो कितना यश मिलेगा। सारे गाँव में उसकी चर्चा हो जायगी। लोग चकित होकर कहेंगे, नोहरी ने इतने रुपये दे दिये। बड़ी देवी है, होरी और धनियाँ दोनों घर-घर उसका बखान करते फिरेंगे। गाँव में उसका मान-सम्मान कितना बढ़ जायगा। वह उँगली दिखानेवालों का मुँह सी देगी। फिर किसकी हिम्मत है, जो उस पर हँसे, या उस पर आवाजें कसे। अभी सारा गाँव उसका हितैषी हो जायगा। इस कल्पना से उसकी मुद्रा खिल गई।

'थोड़े-बहुत से काम चलता हो, तो मुझसे ले लो, जब हाथ में रुपये आ जायँ, तो दे देना।'

होरी और धनिया दोनों ही ने उसकी ओर देखा। नहीं, नोहरी दिल्लगी नहीं

कर रही है। दोनों की आँखों में विस्मय था, कृतज्ञता थी, सन्देह था और लज्जा थी। नोहरी उतनी बुरी नहीं है, जितना लोग समझते हैं।

नोहरी ने फिर कहा—तुम्हारी और हमारी इज्जत एक है। तुम्हारी हँसी हो, तो क्या मेरी हँसी न होगी? कैसे भी हुआ हो; पर अब तो तुम हमारे समधी हो।

होरी ने सकुचाते हुए कहा—तुम्हारे रुपये तो घर में ही हैं, जब काम पड़ेगा ले लेंगे। आदमी अपनों ही का भरोसा तो करता है; मगर ऊपर से इन्तज़ाम हो जाय, तो घर के रुपये क्यों छुए।

धनिया ने अनुमोदन किया—हाँ और क्या!

नोहरी ने अपनापन जताया—जब घर में रुपये हैं, तो बाहरवालों के सामने हाथ क्यों फैलाओ। सूद भी देना पड़ेगा, उस पर इस्टाम लिखो, गवाही कराओ, दस्तूरी दो, खुशामद करो। हाँ, मेरे रुपये में छूत लगी हो, तो दूसरी बात है।

होरी ने सँभाला—नहीं-नहीं, नोहरी, जब घर में काम चल जायगा, तो बाहर क्यों हाथ फैलायेंगे; लेकिन आपसवाली बात है। खेती-बारी का भरोसा नहीं। तुम्हें जल्दी कोई काम पड़ा और हम रुपये न जुटा सके तो तुम्हें भी बुरा लगेगा और हमारी जान भी संकट में पड़ेगी। इससे कहता था। नहीं लड़की तो तुम्हारी है।

'मुझे अभी रुपये की ऐसी जल्दी नहीं है।'

'तो तुम्हीं से ले लेंगे। कन्यादान का फल भी क्यों बाहर जाय।'

'कितने रुपये चाहिए?'

'तुम कितने दे सकोगी?'

'सौ में काम चल जायगा?'

होरी को लालच आया। भगवान् ने छप्पर फाड़कर रुपये दिये हैं, तो जितना ले सके, उतना क्यों न ले।

'सौ में भी चल जायगा। पाँच सौ में भी चल जायगा। जैसा हौसला हो।'

'मेरे पास कुल दो सौ रुपये हैं, वह मैं दे दूँगी।'

'तो इतने में बड़ी खुसफैली से काम चल जायगा। अनाज घर में है। मगर ठकुराइन, आज तुमसे कहता हूँ, मैं तुम्हें ऐसी लक्ष्मी न समझता था। इस

ज़माने में कौन किसकी मदद करता है, और किसके पास है। तुमने मुझे डूबते से बचा लिया।'

दिया-बत्ती का समय आ गया था। ठण्डक पड़ने लगी थी। ज़मीन ने नीली चादर ओढ़ ली थी। धनिया अन्दर जाकर अँगोठी लाई। सब तापने लगे। पुआल के प्रकाश में छबीली, रँगीली, कुटला नोहरी उनके सामने वरदान-सी बैठी थी। उस समय उसकी उन आँखों में कितनी सहृदयता थी, कपोलों पर कितनी लज्जा, ओठों पर कितनी सत्प्रेरणा!

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करके नोहरी उठ खड़ी हुई और यह कहती हुई घर चली—अब देर हो रही है। कल तुम आकर रुपये ले लेना महतो!

'चलो, मैं तुम्हें पहुँचा दूँ।'

'नहीं-नहीं, तुम बैठो, मैं चली जाऊँगी।'

'जी तो चाहता है, तुम्हें कन्धे पर बैठाकर पहुँचाऊँ।'

नोखेराम की चौपाल गाँव के दूसरे सिरे पर थी और बाहर-बाहर जाने का रास्ता साफ था। दोनों उसी रास्ते से चले। अब चारों ओर सन्नाटा था।

नोहरी ने कहा—तनिक समझा नहीं देते रावत को। क्यों सबसे लड़ाई किया करते हैं। जब इन्हीं लोगों के बीच में रहना है, तो ऐसे रहना चाहिए न कि चार आदमी अपने हो जायँ, और इनका हाल यह है कि सबसे लड़ाई, सबसे झगड़ा। जब तुम मुझे परदे में नहीं रख सकते, मुझे दूसरों की मजूरी करनी पड़ती है, तो यह कैसे निभ सकता है कि मैं न किसी से हसूँ, न बोलूँ, न कोई मेरी ओर ताके, न हँसे। यह सब तो परदे में ही हो सकता है। पूछो, कोई मेरी ओर ताकता या घूरता है, तो मैं क्या करूँ। उसकी आँखें तो नहीं फोड़ सकती। फिर मेल मुहब्बत से आदमी के सौ काम निकलते हैं। जैसा समय देखो, वैसा व्यवहार करो। तुम्हारे घर हाथी झूमता था, तो अब वह तुम्हारे किस काम का। अब तो तुम तीन रुपये के मजूर हो। मेरे घर सौ भैंसें लगती थीं, लेकिन अब तो मजूरिन हूँ; मगर उनकी समझ में कोई बात आती ही नहीं। कभी लड़कों के साथ रहने की सोचते हैं, कभी लखनऊ जाकर रहने की सोचते हैं। नाक में दम कर रखा है मेरे।

होरी ने ठकुरसुहाती की—यह भोला की सरासर नादानी है। बूढ़े हुए, अब तो उन्हें समझ आनी चाहिए। मैं समझा दूँगा।

'तो सवेरे आ जाना, रुपये दे दूँगी।'

'कुछ लिखा-पढ़ी...'

'तुम मेरे रुपये हजम न करोगे, यह मैं जानती हूँ।'

उसका घर आ गया। वह अन्दर चली गई। होरी घर लौटा।

२२

गोबर को शहर आने पर मालूम हुआ कि जिस अड्डे पर वह अपना खोंचा लेकर बैठता था, वहाँ एक दूसरा खोंचेवाला बैठने लगा है और गाहक अब गोबर को भूल गये हैं। वह घर भी अब उसे पिंजरे-सा लगता था। झुनिया उसमें अकेली बैठी रोया करती। लड़का दिन भर आँगन में या द्वार पर खेलने का आदी था। यहाँ उसके खेलने को कोई जगह न थी। कहाँ जाय? द्वार पर मुश्किल से एक गज़ का रास्ता था। दुर्गन्ध उड़ा करती थी। गर्मी में कहीं बाहर लेटने बैठने को जगह नहीं। लड़का माँ को एक क्षण के लिए न छोड़ता था। और जब कुछ खेलने को न हो तो कुछ खाने और दूध पीने के सिवा वह और क्या करे। घर पर कभी धनिया खेलाती, कभी रूपा, कभी सोना, कभी होरी, कभी पुनिया। यहाँ अकेली झुनिया थी और उसे घर का सारा काम करना पड़ता था।

और गोबर जवानी के नशे में मस्त था। उसकी अतृप्त लालसाएँ विषयभोग के सागर में डूब जाना चाहती थीं। किसी काम में उसका मन न लगता। खोंचा लेकर जाता, तो घण्टे-भर ही में लौट आता। मनोरंजन का कोई दूसरा सामान न था। पड़ोस के मजूर और इक्केवान रात-रात-भर ताश और जुआ खेलते थे। पहले वह भी ख़ूब खेलता था; मगर अब उसके लिए केवल मनोरंजन था, झुनिया के साथ हास-विलास। थोड़े ही दिनों में झुनिया इस जीवन से ऊब गई। वह चाहती थी, कहीं एकान्त में जाकर बैठे, ख़ूब निश्चिन्त होकर लेटे—सोये; मगर वह एकान्त कहीं न मिलता। उसे अब गोबर पर गुस्सा आता। उसने शहर के जीवन का कितना मोहक चित्र खींचा था, और यहाँ इस काल-कोठरी के सिवा और कुछ नहीं। बालक से भी उसे चिढ़ होती थी। कभी-कभी वह उसे मारकर बाहर निकाल देती और अन्दर से किवाड़ बन्द कर लेती। बालक रोते-रोते बेदम हो जाता।

उस पर विपत्ति यह कि उसे दूसरा बच्चा होनेवाला था। कोई आगे न पीछे।

अक्सर सिर में दर्द हुआ करता। खाने से भी अरुचि हो गई थी। ऐसी तन्द्रा होती थी कि कोने में चुपचाप पड़ी रहे। कोई उससे न बोले, न चाले; मगर यहाँ गोबर का निष्ठुर प्रेम स्वागत के लिए द्वार खटखटाता रहता था। स्तन में दूध नाम को नहीं; लेकिन लल्लू छाती पर सवार रहता था। देह के साथ उसका मन भी दुर्बल हो गया था। वह जो संकल्प करती, उसे थोड़े-से आग्रह पर तोड़ देती। वह लेटी होती और लल्लू आकर ज़बरदस्ती उसकी छाती पर बैठ जाता और स्तन मुँह में लेकर चबाने लगता। वह अब दो साल का हो गया था। बड़े तेज़ दाँत निकल आये थे। मुँह में दूध न जाता, तो वह क्रोध में आकर स्तन में दाँत काट लेता; लेकिन झुनिया में अब इतनी शक्ति भी न थी कि उसे छाती पर से ढकेल दे। उसे हरदम मौत सामने खड़ी नज़र आती। पति और पुत्र किसी से भी उसे स्नेह न था। सभी अपने मतलब के यार हैं। बरसात के दिनों में जब लल्लू को दस्त आने लगे और उसने दूध पीना छोड़ दिया, तो झुनिया को सिर से एक विपत्ति टल जाने का अनुभव हुआ; लेकिन जब एक सप्ताह के बाद बालक मर गया, तो उसकी स्मृति पुत्र-स्नेह से सजीव होकर उसे रुलाने लगी।

और जब गोबर बालक के मरने के एक ही सप्ताह बाद फिर आग्रह करने लगा, तो उसने क्रोध से जलकर कहा—तुम कितने पशु हो!

झुनिया को अब लल्लू की स्मृति लल्लू से भी कहीं प्रिय थी। लल्लू जब तक सामने था वह उससे जितना सुख पाती थी, उससे कहीं ज़्यादा कष्ट पाती थी। अब लल्लू उसके मन में आ बैठा था, शांत, स्थिर, सुशील, सहास। उसकी कल्पना में अब वेदनामय आनन्द था, जिसमे प्रत्यक्ष की काली छाया न थी। बाहरवाला लल्लू उसके भीतरवाले लल्लू का प्रतिबिम्ब मात्र था। प्रतिबिम्ब सामने न था जो असत्य था, अस्थिर था। सत्य रूप तो उसके भीतर था, उसकी आशाओं और शुभेच्छाओं से सजीव। दूध की जगह वह उसे अपना रक्त पिला-पिलाकर पाल रही थी। उसे अब वह बन्द कोठरी, और वह दुर्गन्ध-भरी वायु और वह दोनों जून धुएँ में जलना, इन बातों का मानों ज्ञान ही न रहा। वह स्मृति उसके भीतर बैठी हुई जैसे उसे शक्ति प्रदान करती रहती। जीते-जी जो उसके जीवन का भार था, मरकर उसके प्राणों में समा गया था। उसकी सारी ममता अन्दर जाकर बाहर से उदासीन हो गई। गोबर देर से आता है या जल्द, रुचि से भोजन करता है या नहीं, प्रसन्न है या उदास, इसकी अब

उसे बिलकुल चिन्ता न थी। गोबर क्या कमाता है और कैसे खर्च करता है, इसकी भी उसे परवा न थी। उसका जीवन जो कुछ था, भीतर था, बाहर वह केवल निर्जीव यन्त्र थी।

उसके शोक में भाग लेकर, उसके अन्तर्जीवन में पैठकर, गोबर उसके समीप जा सकता था, उसके जीवन का अङ्ग बन सकता था; पर वह उसके बाह्य-जीवन के सूखे तट पर आकर ही प्यासा लौट जाता था।

एक दिन उसने रूखे स्वर में कहा—तो लल्लू के नाम को कब तक रोये जायगी? चार-पाँच महीने तो हो गये।

झुनिया ने ठंडी साँस लेकर कहा—तुम मेरा दुख नहीं समझ सकते। अपना काम देखो। मैं जैसी हूँ, वैसी पड़ी रहने दो।

'तेरे रोते रहने से लल्लू लौट आयेगा?'

झुनिया के पास इसका कोई जवाब न था। वह उठकर पतीली में कचालू के लिए आलू उबालने लगी। गोबर को ऐसा पाषाण-हृदय उसने न समझा था।

इस बेदर्दी ने लल्लू को उसके मन में और भी सजग कर दिया। लल्लू उसी का है, उसमें किसी का साझा नहीं, किसी का हिस्सा नहीं। अभी तक लल्लू किसी अंश में उसके हृदय के बाहर भी था, गोबर के हृदय में भी उसकी कुछ ज्योति थी। अब वह सम्पूर्ण रूप से उसका था।

गोबर ने खोंचे से निराश होकर शक्कर की मिल में नौकरी कर ली थी। मिस्टर खन्ना ने पहली मिल से प्रोत्साहित होकर हाल में यह दूसरी मिल खोल दी थी। गोबर को वहाँ बड़े सबेरे जाना पड़ता, और दिन-भर के बाद जब वह दिया-जले घर लौटता, तो उसकी देह में ज़रा भी जान न रहती। घर पर भी उसे इससे कम मेहनत न करनी पड़ती थी; लेकिन वहाँ उसे ज़रा भी थकन न होती थी। बीच-बीच में वह हँस-बोल भी लेता था। फिर, उस खुले हुए मैदान में उन्मुक्त आकाश के नीचे, जैसे उसकी क्षति पूरी हो जाती थी। वहाँ उसकी देह चाहे जितना काम करे, मन स्वच्छन्द रहता था। यहाँ देह की उतनी मेहनत न होने पर भी जैसे उस कोलाहल, उस गति और तूफ़ानी शोर का उस पर बोझ-सा लदा रहता था। यह शंका भी बनी रहती थी कि न जाने कब डाँट पड़ जाय। सभी श्रमिकों की यही दशा थी। सभी ताड़ी या शराब में अपनी दैहिक थकन और मानसिक अवसाद को डुबाया करते थे। गोबर

को भी शराब का चस्का पड़ा। घर आता तो नशे में चूर, और पहर रात गये। और आकर कोई-न-कोई बहाना खोजकर झुनिया को गालियाँ देता, घर से निकालने लगता। और कभी-कभी पीट भी देता।

झुनिया को अब यह शङ्का होने लगी कि वह रखेली है, इसी से उसका यह अपमान हो रहा है। ब्याहता होती, तो गोबर की मजाल थी कि उसके साथ यह बर्ताव करता! बिरादरी उसे दण्ड देती, हुक्का-पानी बन्द कर देती। उसने कितनी बड़ी भूल की कि इस कण्टी के साथ घर से निकल भागी। सारी दुनिया में हँसी भी हुई और हाथ कुछ न आया। वह गोबर को अपना दुश्मन समझने लगी। न उसके खाने-पीने की परवा करती, न अपने खाने-पीने की। जब गोबर उसे मारता, तो उसे ऐसा क्रोध आता कि गोबर का गला छुरे से रेत डाले। गर्भ ज्यों-ज्यों पूरा होता जाता है, उसकी चिन्ता बढ़ती जाती है। इस घर में तो उसकी मरन हो जायगी। कौन उसकी देख-भाल करेगा, कौन उसे सँभालेगा? और जो गोबर इसी तरह मारता-पीटता रहा, तब तो उसका जीवन नरक ही हो जायगा।

एक दिन वह पम्पे पर पानी भरने गई, तो पड़ोस की एक स्त्री ने पूछा—कै महीने का है रे?

झुनिया ने लजाकर कहा—क्या जाने दीदी, मैंने तो गिना-गिनाया नहीं है।

दोहरी देह की, काली-कलूटी, नाटी, कुरूप, बड़े-बड़े स्तनोंवाली स्त्री थी। उसका पति एक्का हाँकता था और वह खुद लकड़ी की दुकान करती थी। झुनिया कई बार उसकी दूकान से लकड़ी लाई थी। इतना ही परिचय था।

मुस्कराकर बोली—मुझे तो जान पड़ता है, दिन पूरे हो गये हैं। आज हो कल में होगा। कोई दाई-वाई ठीक कर ली है?

झुनिया ने भयातुर-स्वर में कहा—मैं तो यहाँ किसी को नहीं जानती।

'तेरा मर्दुआ कैसा है, जो कान में तेल डाले बैठा है?'

'उन्हें मेरी क्या फिकर।'

'हाँ, देख तो रही हूँ। तुम तो सौर में बैठोगी, कोई करने-धरनेवाला चाहिए कि नहीं। सास-ननद, देवरानी-जेठानी कोई है कि नहीं? किसी को बुला लेना था।'

'मेरे लिए सब मर गये।'

वह पानी लेकर जूठे बरतन माँजने लगी, तो प्रसव की शङ्का से हृदय में धड़-

कनें हो रही थीं। सोचने लगी—क्या होगा भगवान्! उँह! यही तो होगा, मर जाऊँगी, अच्छा है, जजाल से छूट जाऊँगी।

शाम को उसके पेट में दर्द होने लगा। समझ गई, विपत्ति की घड़ी आ पहुँची। पेट को एक हाथ से पकड़े हुए पसीने से तर उसने चूल्हा जलाया, खिचड़ी डाली और दर्द से व्याकुल होकर वहीं ज़मीन पर लेट रही। कोई दस बजे रात को गोबर आया, ताड़ी की दुर्गन्ध उड़ाता हुआ। लटपटाती हुई ज़बान से ऊटपटाँग बक रहा था—मुझे किसी की परवा नहीं है। जिसे सौ दफे गरज हो, रहे, नहीं चला जाय। मैं किसी का ताव नहीं सह सकता। अपने माँ-बाप का ताव नहीं सहा, जिसने जनम दिया। तब दूसरों का ताव क्यों सहूँ। जमादार आँखें दिखाता है। यहाँ किसी की धौंस सहनेवाले नहीं हैं। लोगों ने पकड़ न लिया होता, तो खून पी जाता, खून! कल देखूँगा बचा को। फाँसी ही तो होगी। दिखा दूँगा कि मर्द कैसे मरते हैं। हँसता हुआ, अकड़ता हुआ, मूँछों पर ताव देता हुआ फाँसी के तख्ते पर जाऊँ तो सही। औरत की जात! कितनी बेवफा होती है। खिचड़ी डाल दी और टाँग पसारकर सो रही। कोई खाय या न खाय, उसकी बला से। आप मजे से फुलके उड़ाती है, मेरे लिए खिचड़ी, सता ले जितना सताते बने; तुझे भगवान् सतायेंगे, जो न्याय करते हैं।

उसने झुनिया को जगाया नहीं। कुछ बोला भी नहीं। चुपके से खिचड़ी थाली में निकाली और दो-चार कौर निगलकर बरामदे में लेट रहा। पिछले पहर उसे सर्दी लगी। कोठरी में कम्बल लेने गया, तो झुनिया के कराहने की आवाज़ सुनी। नशा उतर चुका था। पूछा—कैसा जी है झुनिया? कहीं दरद है क्या?

'हाँ, पेट में जोर से दरद हो रहा है।'

'तूने पहले क्यों नहीं कहा! अब इस बखत कहाँ जाऊँ?'

'किससे कहती?'

'मैं क्या मर गया था?'

'तुम्हें मेरे मरने-जीने की क्या चिन्ता?'

गोबर घबराया। कहाँ दाई खोजने जाय? इस वक्त वह आने ही क्यों लगी। घर में कुछ है भी तो नहीं, चुड़ैल ने पहले बता दिया होता, तो किसी से दो-चार रुपये माँग लाता। इन्हीं हाथों में सौ-पचास रुपये हरदम पड़े रहते थे, चार आदमी

खुसामद करते थे। इस कुलच्छनी के आते ही जैसे लच्छमी रूठ गई। टके-टके को मुहताज हो गया।

सहसा किसी ने पुकारा—यह क्या तुम्हारी घरवाली कराह रही है? दरद तो नहीं हो रहा है?

यह वही मोटी औरत थी, जिससे आज झुनिया की बातचीत हुई थी, घोड़े को दाना खिलाने उठी थी। झुनिया का कराहना सुनकर पूछने आ गई थी।

गोबर ने बरामदे में जाकर कहा—पेट में दरद है। छटपटा रही है। यहाँ कोई दाई मिलेगी?

'वह तो मैं आज उसे देखकर ही समझ गई थी। दाई कचीसराय में रहती है। लपककर बुला लाओ। कहना, जल्दी चल। तब तक मैं यहीं बैठी हूँ।'

'मैंने तो कचीसराय नहीं देखी, किधर है?'

'अच्छा, तुम उसे पंखा झलते रहो, मैं बुलाये लाती हूँ। यही कहते हैं, अनाड़ी आदमी किसी काम का नहीं। पूरा पेट और दाई की खबर नहीं।'

यह कहती हुई वह चल दी। इसके मुँह पर तो लोग इसे चुहिया कहते हैं, यही इसका नाम था; लेकिन पीछे मोटल्लो कहा करते थे। किसी को मोटल्ली कहते सुन लेती थी, तो उसके सात पुरखों तक चढ़ जाती थी।

गोबर को बैठे दस मिनट भी न हुए होंगे, कि वह लौट आई और बोली—अब संसार में गरीबों का कैसे निवाह होगा। राँड़ कहती है, पाँच रुपये लूँगी, तब चलूँगी! और आठ आने रोज। बारहवें दिन एक साड़ी। मैंने कहा—तेरा मुँह झुलस दूँ! तू जा चूल्हे में! मैं देख लूँगी। बारह बच्चे की माँ यों ही नहीं हो गई हूँ। तुम बाहर आ जाओ गोबरधन, मैं सब कर लूँगी। बखत पड़ने पर आदमी ही आदमी के काम आता है। चार बच्चे जना लिये तो दाई बन बैठी!

वह झुनिया के पास जा बैठी और उसका सिर अपनी जाँघ पर रखकर उसका पेट सहलाती हुई बोली—मैं तो आज तुझे देखते ही समझ गई थी। सच पूछो, तो इसी धड़के में आज मुझे नींद नहीं आई। यहाँ तेरा कौन सगा बैठा है।

झुनिया ने दर्द से दाँत जमाकर 'सी' करते हुए कहा—अब न बचूँगी दीदी! हाय! मैं तो भगवान् से माँगने न गई थी। एक को पाला-पोसा। उसे तुमने छीन लिया, तो फिर इसका कौन काम था। मैं मर जाऊँ माता, तो तुम बच्चे पर दया

करना। उसे पाल-पोस लेना। भगवान् तुम्हारा भला करेंगे।

चुहिया स्नेह से उसके केश सुलझाती हुई बोली—धीरज धर बेटी, धीरज धर। अभी छन-भर में कष्ट कटा जाता है। तूने भी तो जैसे चुप्पी साध ली थी। इसमें किस बात की लाज। मुझसे बता दिया होता तो मैं मौलवी साहब के पास से तावीज ला देती। वही मिर्जाजी जो इस हाते में रहते हैं।

इसके बाद झुनिया को कुछ होश न रहा। नौ बजे सुबह उसे होश आया, तो उसने देखा, चुहिया शिशु को लिये बैठी है, और वह साफ साड़ी पहने लेटी सोई है। ऐसी कमज़ोरी थी, मानों देह में रक्त का नाम न हो।

चुहिया रोज़ सवेरे आकर झुनिया के लिए हरीरा और हलवा पका जाती, और दिन में भी कई बार आकर बच्चे को उबटन मल जाती और ऊपर का दूध पिला जाती। आज चौथा दिन था; पर झुनिया के स्तनों में दूध न उतरा था। शिशु रो-रोकर गला फाड़े लेता था; क्योंकि ऊपर का दूध उसे पचता न था। एक छन को भी चुप न होता था। चुहिया अपना स्तन उसके मुँह में दे देती। बच्चा एक क्षण चूसता; पर जब दूध न निकलता तो चीखने लगता। जब चौथे दिन साँझ तक भी झुनिया को दूध न उतरा, तो चुहिया घबराई। बच्चा सूखता चला जाता था। नखास पर एक पेंसनर डाक्टर रहते थे। चुहिया उन्हें ले आई। डाक्टर ने देख-भालकर कहा—इसकी देह में खून तो है नहीं, दूध कहाँ से आये। समस्या जटिल हो गई। देह में खून लाने के लिए महीनों पुष्टिकारक दवाएँ खानी पड़ेंगी, तब कहीं दूध उतरेगा। तब तक तो इस मांस के लोथड़े का हो काम तमाम हो जायगा।

पहर रात हो गई थी। गोबर ताड़ी पिये ओसारे में पड़ा था। चुहिया बच्चे को चुप कराने के लिए उसके मुँह में अपनी छाती डाले हुए थी, कि सहसा उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी छाती में दूध आ गया है। प्रसन्न होकर बोली—ले झुनिया, अब तेरा बच्चा जी जायगा, मेरे दूध आ गया।

झुनिया ने चकित होकर कहा—तुम्हें दूध आ गया?

'नहीं री, सच!'

'मैं तो नहीं पतियाती।'

'देख ले!'

उसने अपना स्तन दबाकर दिखाया। दूध की धार फूट निकली।

झुनिया ने पूछा—तुम्हारी छोटी बिटिया तो आठ साल से कम की नहीं है।

'हाँ, आठवाँ है; लेकिन मुझे दूध बहुत होता था।'

'इधर तो तुम्हें कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ?'

'वही लड़की पेट-पोंछनी थी। छाती बिलकुल सूख गई थी; लेकिन भगवान् की लीला है, और क्या!'

अब से चुहिया चार-पाँच बार आकर बच्चे को दूध पिला जाती। बच्चा पैदा तो हुआ था दुर्बल, लेकिन चुहिया का स्वस्थ दूध पीकर गदराया जाता था। एक दिन चुहिया नदी स्नान करने चली गई। बच्चा भूख के मारे छटपटाने लगा। चुहिया दस बजे लौटी, तो झुनिया बच्चे को कन्धे से लगाये झुला रही थी और बच्चा रोये जाता था। चुहिया ने बच्चे को उसकी गोद से लेकर दूध पिला देना चाहा; पर झुनिया ने उसे झिड़ककर कहा—रहने दो। अभागा मर जाय, वही अच्छा। किसी का एहसान तो न लेना पड़े।

चुहिया गिड़गिड़ाने लगी। झुनिया ने बड़े अदरावन के बाद बच्चा उसकी गोद में दिया।

लेकिन झुनिया और गोबर में अब भी न पटती थी। झुनिया के मन में बैठ गया था, कि यह पक्का मतलबी, बेदर्द आदमी है, मुझे केवल भोग की वस्तु समझता है, मैं मरूँ या जिऊँ, उसकी इच्छा पूरी किये जाऊँ, उसे बिलकुल गम नहीं। सोचता होगा, यह मर जायगी, तो दूसरी लाऊँगा; लेकिन मुँह धो रखें बच्चू। मैं ही ऐसी अल्हड़ थी कि तुम्हारे फन्दे में आ गई। तब तो पैरों पर सिर रखे देता था। यहाँ आते ही न जाने क्यों जैसे इसका मिज़ाज ही बदल गया। जाड़ा आ गया था; पर न ओढ़न, न बिछावन। रोटी-दाल से जो दो-चार रुपये बचते, ताड़ी में उड़ जाते थे। एक पुराना लिहाफ़ था। दोनों उसी में सोते थे; लेकिन फिर भी उनमें सौ कोस का अन्तर था। दोनों एक ही करवट में रात काट देते।

गोबर का जी शिशु को गोद में लेकर खेलाने के लिए तरसकर रह जाता था। कभी-कभी वह रात को उठकर उसका प्यारा मुखड़ा देख लिया करता; लेकिन झुनिया की ओर से उसका मन खिचता था। झुनिया भी उससे बात न करती, न उसकी कुछ सेवा ही करती और दोनों के बीच में यह मालिन्य समय के साथ लोहे के मोर्चे की भाँति गहरा, दृढ़ और कठोर होता जाता था। दोनों एक दूसरे की बातों का उलटा

ही अर्थ निकालते, वही जिससे आपस का द्वेष और भड़के। और कई दिनों तक एक-एक वाक्य को मन में पाले रहते और उसे अपना रक्त पिला-पिलाकर एक दूसरे पर झपट पड़ने के लिए तैयार करते रहते, जैसे शिकारी कुत्ते हों।

उधर गोबर के कारखाने में भी आये-दिन एक न एक हंगामा उठता रहता था। अबकी बजट में शक्कर पर ड्यूटी लग गई थी। मिल के मालिकों को मजूरी घटाने का अच्छा बहाना मिल गया। ड्यूटी से अगर पाँच की हानि थी, तो मजूरी घटा देने से दस का लाभ था। इधर महीनों से इस मिल में भी यही मसला छिड़ा हुआ था। मजूरों का संघ हड़ताल करने को तैयार बैठा हुआ था। इधर मजूरी घटी और उधर हड़ताल हुई। उसे मजूरी में धेले की कटौती भी स्वीकार न थी। जब इस तेज़ी के दिनों में मजूरी में एक धेले की भी बढ़ती नहीं हुई, तो अब वह घाटे में क्यों साथ दे। मिर्ज़ा खुर्शेद संघ के सभापति और पण्डित ओंकारनाथ 'बिजली'-सम्पादक, मंत्री थे। दोनों ऐसी हड़ताल कराने पर तुले हुए थे कि मिल-मालिकों को कुछ दिन याद रहे मजूरों को भी हड़ताल से क्षति पहुँचेगी, यहाँ तक कि हज़ारों आदमी रोटियों को भी मुहताज हो जायँगे, इस पहलू की ओर उनकी निगाह बिलकुल न थी और गोबर हड़तालियों में सबसे आगे था। उद्दंड स्वभाव का था ही, ललकारने की ज़रूरत थी। फिर वह मारने-मरने को न डरता था। एक दिन झुनिया ने उसे जी कड़ा करके समझाया भी—तुम बाल-बच्चेवाले आदमी हो, तुम्हारा इस तरह आग में कूदना अच्छा नहीं। इस पर गोबर बिगड़ उठा—तू कौन होती है मेरे बीच में बोलनेवाली? मैं तुमसे सलाह नहीं पूछता। बात बढ़ गई और गोबर ने झुनिया को खूब पीटा। चुहिया ने आकर झुनिया को छुड़ाया और गोबर को डाँटने लगी। गोबर के सिर पर शैतान सवार था। लाल-लाल आँखे निकालकर बोला—तुम मेरे घर में मत आया करो चूहा, तुम्हारे आने का कुछ काम नहीं।

चुहिया ने व्यंग्य के साथ कहा—तुम्हारे घर में न जाऊँगी, तो मेरी रोटियाँ कैसे चलेंगी। यहीं से माँग-जाँचकर ले जाती हूँ, तब तवा गर्म होता है। मैं न होती लाला, तो यह बीबी आज तुम्हारी लातें खाने के लिए बैठी न होती।

गोबर घूँसा तानकर बोला—मैंने कह दिया, मेरे घर में न आया करो। तुम्हीं ने इस चुड़ैल का मिज़ाज आसमान पर चढ़ा दिया है।

चुहिया वहीं डटी हुई निःशंक खड़ी थी, बोली—अब चुप रहना गोबर। बेचारी

अधमरी लड़कोरी औरत को मारकर तुमने कोई बड़ी जवाँमर्दी का काम नहीं किया है। तुम उसके लिए क्या करते हो कि तुम्हारी मार सहे? एक रोटी खिला देते हो इसीलिए? अपने भाग बखानो कि ऐसी गऊ औरत पा गये हो। दूसरी होती, तो तुम्हारे मुँह में झाड़ू मारकर निकल गई होती।

मुहल्ले के लोग जमा हो गये और चारों ओर से गोबर पर फटकारें पड़ने लगीं। वही लोग, जो अपने घरों में अपनी स्त्रियों को रोज़ पीटते थे, इस वक्त न्याय और दया के पुतले बने हुए थे। चुहिया और शेर हो गई और फ़रियाद करने लगी—डाढ़ीजार कहता है, मेरे घर न आया करो। बीबी-बच्चा रखने चला है, यह नहीं जानता कि बीबी-बच्चों का पालना बड़े गुर्दे का काम है। इससे पूछो, मैं न होती तो आज यह बच्चा जो बछड़े की तरह कुलेलें कर रहा है, कहाँ होता। औरत को मारकर जवानी दिखाता है। मैं न हुई तेरी बीबी, नहीं यही जूती उठाकर मुँह पर तड़ातड़ जमाती और कोठरी में ढकेलकर बाहर से किवाड़ बन्द कर देती। दाने को तरस जाते।

गोबर झल्लाया हुआ अपने काम पर चला गया। चुहिया औरत न होकर मर्द होती, तो मज़ा चखा देता। औरत के मुँह क्या लगे।

मिल में असन्तोष के बादल घने होते जा रहे थे। मजदूर 'बिजली' की प्रतियाँ जेब में लिये फिरते और ज़रा भी अवकाश पाते, तो दो-तीन मज़दूर मिलकर उसे पढ़ने लगते। पत्र की बिक्री ख़ूब बढ़ रही थी। मजूरों के नेता 'बिजली'-कार्यालय में आधी रात तक बैठे हड़ताल की स्कीमें बनाया करते और प्रातःकाल जब पत्र में यह समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छपता, तो जनता टूट पड़ती और पत्र की कॉपियाँ दूने-तिगुने दाम पर बिक जातीं। उधर कम्पनी के डायरेक्टर भी अपनी घात में बैठे हुए थे। हड़ताल हो जाने ही में उनका हित था। आदमियों की कमी तो है नहीं। बेकारी बढ़ी हुई है, इसके आधे वेतन पर ऐसे ही आदमी आसानी से मिल सकते हैं। माल की तैयारी में एकदम आधी बचत हो जायगी। दस-पाँच दिन काम का हरज होगा, कुछ परवाह नहीं। आखिर यह निश्चय हो गया कि मजूरी में कमी का एलान कर दिया जाय। दिन और समय नियत कर लिया गया। पुलीस को सूचना दे दी गई। मजूरों को कानोंकान खबर न थी। वे अपनी घात में थे। उसी वक्त हड़ताल करना चाहते थे, जब गोदाम में बहुत थोड़ा माल रह जाय और माँग की तेज़ी हो।

एकाएक एक दिन जब मजूर लोग शाम को छुट्टी पाकर चलने लगे, तो डायरेक्टरों का एलान सुना दिया गया। उसी वक्त पुलिस आ गई। मजूरों को अपनी इच्छा के विरुद्ध उसी वक्त हड़ताल करनी पड़ी, जब गोदाम में इतना माल भरा हुआ था कि बहुत तेज़ माँग होने पर भी छः महीने से पहले न उठ सकता था।

मिर्ज़ा खुर्शेद ने यह खबर सुनी, तो मुस्कराये, जैसे कोई मनस्वी योद्धा अपने शत्रु के रण-कौशल पर मुग्ध हो गया हो। एक क्षण विचारों में डूबे रहने के बाद बोले—अच्छी बात है। अगर डायरेक्टरों की यही इच्छा है, तो यही सही। हालतें उनके मुआफ़िक हैं; लेकिन हमें न्याय का बल है। वह लोग नये आदमी रखकर अपना काम चलाना चाहते हैं। हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि उन्हें एक भी नया आदमी न मिले। यही हमारी फ़तह होगी।

'बिजली'-कार्यालय में उसी वक्त खतरे की मीटिंग हुई, कार्य-कारिणी सभा का संगठन हुआ, पदाधिकारियों का चुनाव हुआ और आठ बजे रात को मजूरों का लम्बा जुलूस निकला। दस बजे रात को कल का सारा प्रोग्राम तय किया गया और यह ताकीद कर दी गई कि किसी तरह का दंगा-फसाद न होने पाये।

मगर सारी कोशिश बेकार हुई। हड़तालियों ने नये मजूरों का टिड्डी-दल मिल के द्वार पर खड़ा देखा, तो उनकी हिंसा-वृत्ति काबू के बाहर हो गई। सोचा था, सौ-सौ, पचास-पचास आदमी रोज़ भर्ती होने के लिए आयेंगे। उन्हें समझा-बुझाकर या धमकाकर भगा देंगे। हड़तालियों की संख्या देखकर नये लोग आप ही भयभीत हो जायँगे; मगर यहाँ तो नक्शा ही कुछ और था; अगर यह सारे आदमी भर्ती हो गये, तो हड़तालियों के लिए समझौते की कोई आशा ही न थी। तय हुआ कि नये आदमियों को मिल में जाने ही न दिया जाय। बल-प्रयोग के सिवा और कोई उपाय न था। नया दल भी लड़ने-मरने पर तैयार था। उनमें अधिकांश ऐसे भुखमरे थे, जो इस अवसर को किसी तरह भी न छोड़ना चाहते थे। भूखों मर जाने से या अपने बाल-बच्चों को भूखों मरते देखने से, तो यह कहीं अच्छा था कि इस परिस्थिति से लड़कर मरें। दोनों दलों में फौजदारी हो गई। 'बिजली'-सम्पादक तो भाग खड़े हुए, बेचारे मिर्ज़ाजी पिट गये और उनकी रक्षा करते हुए गोबर भी बुरी तरह घायल हो गया। मिर्ज़ाजी पहलवान आदमी थे और मँजे हुए फ़िकैत, अपने ऊपर कोई गहरा वार न पड़ने दिया। गोबर गँवार था। पूरा लट्ठ मारना जानता था; पर अपनी रक्षा

करना न जानता था, जो लड़ाई में मारने से ज्यादा महत्त्व की बात है। उसके एक हाथ की हड्डी टूट गई, सिर खुल गया और अन्त में वह वहीं ढेर हो गया, कन्धों पर अनगिनती लाठियाँ पड़ी थीं, जिससे उसका एक-एक अंग चूर हो गया था। हड़तालियों ने उसे गिरते देखा, तो भाग खड़े हुए। केवल दस-बारह जँचे हुए आदमी मिर्ज़ा को घेरकर खड़े रहे। नये आदमी विजय-पताका उड़ाते हुए मिल में दाखिल हुए और पराजित हड़ताली अपने हताहतों को उठा-उठाकर अस्पताल पहुँचाने लगे; मगर अस्पताल में इतने आदमियों के लिए जगह न थी। मिर्ज़ाजी तो ले लिये गये। गोबर की मरहम-पट्टी करके उसके घर पहुँचा दिया गया।

झुनिया ने गोबर की वह चेष्टाहीन लोथ देखी तो उसका नारीत्व जाग उठा। अब तक उसने उसे सबल के रूप में देखा था, जो उस पर शासन करता था, डाँटता था, मारता था। आज वह अपंग था, निस्सहाय था, दयनीय था। झुनिया ने खाट पर झुककर आँसू-भरी आँखों से गोबर को देखा और घर की दशा का खयाल करके उसे गोबर पर एक ईर्ष्यामय क्रोध आया। गोबर जानता था कि घर में एक पैसा नहीं है। वह यह भी जानता था कि कहीं से एक पैसा मिलने की आशा नहीं है। यह जानते हुए भी, उसके बार-बार समझाने पर भी, उसने यह विपत्ति अपने ऊपर ली। उसने कितनी बार कहा था—तुम इस झगड़े में न पड़ो, आग लगानेवाले आग लगाकर अलग हो जायँगे, जायगी गरीबों के सिर, लेकिन वह कब उसकी सुनने लगा था। वह तो उसकी वैरिन थी। मित्र तो वह लोग थे, जो अब मजे से मोटरों में घूम रहे हैं। उस क्रोध में एक प्रकार की तुष्टि थी, जैसे हम उन बच्चों को कुरसी से गिर पड़ते देखकर, जो बार-बार मना करने पर खड़े होने से बाज़ न आते थे, चिल्ला उठते हैं—अच्छा हुआ, बहुत अच्छा, तुम्हारा सिर क्यों न दो हो गया।

लेकिन एक ही क्षण में गोबर का करुण-क्रन्दन सुनकर उसकी सारी सज्ञा सिहर उठी व्यथा में डूबे हुए ये शब्द उसके मुँह से निकले—हाय-हाय! सारी देह भुरकस हो गई। सबों को तनिक भी दया न आई।

वह उसी तरह बड़ी देर तक गोबर का मुँह देखती रही। वह क्षीण होती हुई आशा से जीवन का कोई लक्षण पा लेना चाहती थी और प्रति-क्षण उसका धैर्य अस्त होनेवाले सूर्य की भाँति डूबता जाता था, और भविष्य का अन्धकार उसे अपने अंदर समेटे लेता था।

सहसा चुहिया ने आकर पुकारा—गोबर का क्या हाल है, बहू! मैंने तो अभी सुना। दूकान से दौड़ी आई हूँ।

झुनिया के रुके हुए आँसू उबल पड़े। कुछ बोल न सकी। भयभीत आँखों से चुहिया की ओर देखा।

चुहिया ने गोबर का मुँह देखा, उसकी छाती पर हाथ रखा, और आश्वासन-भरे स्वर में बोली—यह चार दिन में अच्छे हो जायँगे। घबड़ा मत। कुसल हुई। तेरा सोहाग बलवान था। कई आदमी उसी दंगे में मर गये। घर में कुछ रुपये-पैसे हैं?

झुनिया ने लज्जा से सिर हिला दिया।

'मैं लाये देती हूँ। थोड़ा-सा दूध लाकर गर्म कर ले।'

झुनिया ने उसके पाँव पकड़कर कहा—दीदी, तुम्हीं मेरी माता हो। मेरा दूसरा कोई नहीं है।

जाड़ों की उदास सन्ध्या आज और भी उदास मालूम हो रही थी। झुनिया ने चूल्हा जलाया और दूध उबालने लगी। चुहिया बरामदे में बच्चे को लिये खेला रही थी।

सहसा झुनिया भारी कण्ठ से बोली—मैं बड़ी अभागिन हूँ दीदी! मेरे मन में ऐसा आ रहा है, जैसे मेरे ही कारण इनकी यह दसा हुई है। जी कुढ़ता है, तब मन दुखी होता ही है, फिर गालियाँ भी निकलती हैं, सराप भी निकलता है। कौन जाने मेरी गालियों·

इसके आगे वह कुछ न कह सकी। आवाज़ आँसुओं के रेले में बह गई।

चुहिया ने अंचल से उसके आँसू पोंछते हुए कहा—कैसी बातें सोचती है बेटी! यह तेरे सिन्दूर का भाग है कि यह बच गये। मगर हाँ, इतना है कि आपस में लड़ाई हो, तो मुँह से चाहे जितना बक ले, मन में कीना न पाले। बीज अन्दर पड़ा, तो अँखुआ निकले बिना नहीं रहता।

झुनिया ने कम्पन-भरे स्वर में पूछा—अब मैं क्या करूँ दीदी?

चुहिया ने ढाढ़स दिया—कुछ नहीं बेटी! भगवान् का नाम ले। वही गरीबों की रक्षा करते हैं।

उसी समय गोबर ने आँखें खोलीं और झुनिया को सामने देखकर याचना-भाव

से क्षीण-स्वर में बोला—आज बहुत चोट खा गया झुनिया ! मैं किसी से कुछ नहीं बोला। सबों ने अनायास मुझे मारा। कहा-सुना माफ कर ! तुझे सताया था, उसी का यह फल मिला। थोड़ी देर का और मेहमान हूँ। अब न बचूँगा। मारे दरद के सारी देह फटी जाती है।

चुहिया ने अन्दर आकर कहा—चुपचाप पड़े रहो। बोलो-चालो नहीं। मरोगे नहीं, इसका मेरा जुम्मा।

गोबर के मुख पर आशा की रेखा झलक पड़ी। बोला—सच कहती हो, मैं मरूँगा नहीं ?

'हाँ, नहीं मरोगे। तुम्हें हुआ क्या है। जरा सिर में चोट आ गई और हाथ की हड्डी उतर गई है। ऐसी चोटें मरदों को रोज ही लगा करती हैं। इन चोटों से कोई नहीं मरता।'

'अब मैं झुनिया को कभी न मारूँगा।'

'डरते होगे कि कहीं झुनिया तुम्हें न मारे।'

'वह मारेगी भी, तो न बोलूँगा।'

'अच्छे होने पर भूल जाओगे।'

'नहीं दीदी, कभी न भूलूँगा।'

गोबर इस समय बच्चों की-सी बातें किया करता। दस-पाँच मिनट अचेत-सा पड़ा रहता। उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ उड़ा करता। कभी देखता, वह नदी में डूबा जा रहा है, और झुनिया उसे बचाने के लिए नदी में चली आ रही है। कभी देखता, कोई दैत्य उसकी छाती पर सवार है और झुनिया की शक्ल की कोई देवी उसकी रक्षा कर रही है और बार-बार चौंककर पूछता—मैं मरूँगा तो नहीं झुनिया ?

तीन दिन उसकी यही दशा रही और झुनिया ने रात को जागकर और दिन को उसके सामने खड़े रहकर जैसे मौत से उसकी रक्षा की। बच्चे को चुहिया सँभाले रहती। चौथे दिन झुनिया एक्का लाई और सबों ने गोबर को उस पर लादकर अस्पताल पहुँचाया। वहाँ से लौटकर गोबर को मालूम हुआ कि अब वह सचमुच बच जायगा। उसने आँखों में आँसू भरकर कहा—मुझे छमा कर दो झुना !

इन तीन-चार दिनों में चुहिया के तीन-चार रुपये खर्च हो गये थे, और अब झुनिया को उससे कुछ लेते संकोच होता था। वह भी कोई मालदार तो थी नहीं।

लकड़ी की बिक्री के रुपये झुनिया को दे देती। आखिर झुनिया ने कुछ काम करने का विचार किया। अभी गोबर को अच्छे होने में महीनों लगेंगे। खाने-पीने को भी चाहिए, दवा-दारू को भी चाहिए। वह कुछ काम करके खाने-भर को तो ले ही आयेगी। बचपन से उसने गउओं का पालन और घास छीलना सीखा था। यहाँ गउएँ कहाँ थीं; हाँ, वह घास छील सकती थी। मुहल्ले के कितने ही स्त्री-पुरुष बराबर शहर के बाहर घास छीलने जाते थे और आठ-दस आने कमा लेते थे। वह प्रातः-काल गोबर का हाथ-मुँह धुलाकर और बच्चे को उसे सौंपकर घास छीलने निकल जाती, और तीसरे पहर तक भूखी-प्यासी घास छीलती रहती फिर उसे मण्डी में ले जाकर बेचती और शाम को घर आती। रात को भी गोबर की नींद सोती और गोबर की नींद जागती; मगर इतना कठोर श्रम करने पर भी उसका मन ऐसा रहता, मानों झूले गा रही है। रास्ते-भर साथ की स्त्रियों और पुरुषों से चुहल और विनोद करती जाती। घास छीलते समय भी सबों में हँसी-दिल्लगी होती रहती। न किस्मत को रोना, न मुसीबत का गीला। जीवन की सार्थकता में, अपनों के लिए कठिन से कठिन त्याग में, और स्वाधीन सेवा में जो उल्लास है, उसकी ज्योति उसके एक-एक अंग पर चमकती रहती। बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होकर जैसी तालियाँ बजा-बजाकर खुश होता है, उसी आनन्द का वह अनुभव कर रही थी; मानों उसके प्राणों में आनन्द का कोई सोता खुल गया हो। और मन स्वस्थ हो, तो देह कैसे अस्वस्थ रहे। इसी एक महीने में जैसे उसका कायाकल्प हो गया हो। उसके अंगों में अब शिथिलता नहीं, चपलता है, लचक है, और सुकुमारता है। मुख पर वह पीलापन नहीं रहा, खून की गुलाबी चमक है। उसका यौवन जो बन्द कोठरी में पड़े-पड़े अपमान और कलह से कुण्ठित हो गया था, वह मानों ताजी हवा और प्रकाश पाकर लहलहा उठा है। अब उसे किसी बात पर क्रोध नहीं आता। बच्चे के ज़रा-सा रोने पर जो वह झुँझला उठा करती थी, अब जैसे उसके धैर्य और प्रेम का अन्त ही न था।

इसके खिलाफ गोबर अच्छा होते जाने पर भी कुछ उदास रहता था। जब हम अपने किसी प्रिय-जन पर अत्याचार करते हैं, और जब विपत्ति आ पड़ने से हममें इतनी शक्ति आ जाती है कि उसकी तीव्र व्यथा का अनुभव करें, तो इससे हमारी आत्मा में जागृति का उदय हो जाता है, और हम उस बेजा व्यवहार का प्रायश्चित्त

करने के लिए तैयार हो जाते हैं। गोबर उसी प्रायश्चित्त करने के लिए व्याकुल हो रहा था। अब उसके जीवन का रूप बिलकुल दूसरा होगा, जिसमें कटुता की जगह मृदुता होगी, अभिमान की जगह नम्रता। उसे अब ज्ञात हुआ कि सेवा करने का अवसर बड़े सौभाग्य से मिलता है, और वह इस अवसर को कभी न भूलेगा।

२३

नोहरी उन औरतों में न थी, जो नेकी करके दरिया में डाल देती हैं। उसने नेकी की है तो उसका खूब ढिंढोरा पीटेगी और उससे जितना यश मिल सकता है, उससे कुछ ज्यादा ही पाने के लिए हाथ-पाँव मारेगी। ऐसे आदमी को यश के बदले अपयश और बदनामी ही मिलती है। नेकी न करना बदनामी की बात नहीं। अपनी इच्छा नहीं है, या सामर्थ्य नहीं है। इसके लिए कोई हमें बुरा नहीं कह सकता; मगर जब हम नेकी करके उसका एहसान जताने लगते हैं तो वही जिसके साथ हमने नेकी की थी, हमारा शत्रु हो जाता है, और हमारे एहसान को मिटा देना चाहता है वही नेकी अगर करनेवाले के दिल में रहे तो नेकी है, बाहर निकल आये तो बदी है। नोहरी चारों ओर कहती फिरती थी बेचारा होरी बड़ी मुसीबत में था, बेटी के ब्याह के लिए जमीन रेहन रख रहा था। मैंने उसकी यह दसा देखी, तो मुझे दया आई। धनिया से तो जी जलता था, वह राँड़ तो मारे घमण्ड के धरती पर पाँव ही नहीं रखती। बेचारा होरी चिन्ता से घुला जाता था। मैंने सोचा, इस संकट में इसकी कुछ मदद कर दूँ आखिर आदमी ही तो आदमी के काम आता है। और होरी तो अब कोई गैर नहीं हैं, मानो चाहे न मानो, वह तुम्हारे नातेदार हो चुके। रुपये निकालकर दे दिये। नहीं, लड़की अब तक बैठी होती।

धनिया भला यह चोट कब सुनने लगी थी। रुपये खैरात दिये थे? बड़ी खैरात देनेवाली! सूद महाजन भी लेगा, तुम भी लोगी। एहसान काहे का। दूसरों को देती, सूद की जगह मूल भी गायब हो जाता, हमने लिया है तो हाथ में रुपये आते ही नाक पर रख देंगे। हमी थे कि तुम्हारे घर का विस उठाके पी गये, और कभी मुँह पर नहीं लाये। कोई यहाँ द्वार पर नहीं खड़ा होने देता था। हमने तुम्हारा मरजाद बना दिया तुम्हारे मुँह की लाली रख ली।

रात के दस बजे गये थे। सावन की अँधेरी घटा छाई थी। सारे गाँव में अन्ध-

कार था। होरी ने भोजन करके तमाखू पिया और सोने जा रहा था कि भोला आकर खड़ा हो गया।

होरी ने पूछा—कैसे चले भोला महतो! जब इसी गाँव में रहना है, तो क्यों अलग छोटा-सा घर नहीं बना लेते? गाँव में लोग कैसी-कैसी कुत्सा उड़ाया करते हैं, क्या यह तुम्हें अच्छा लगता है। बुरा न मानना तुमसे सम्बन्ध हो गया है, इसलिए तुम्हारी बदनामी नहीं सुनी जाती, नहीं मुझे क्या करना था।

धनिया उसी समय लोटे का पानी लेकर होरी के सिरहाने रखने आई। सुनकर बोली—दूसरा मर्द होता, तो ऐसी औरत का सिर काट लेता।

होरी ने डाँटा—क्यों बेबात की बात करती है। पानी रख दे और जा सो। आज तू ही कुराह चलने लगे, तो मैं तेरा सिर काट लूँगा? काटने देगी?

धनिया उसे पानी का एक छींटा मारकर बोली—कुराह चले तुम्हारी बहन, मैं क्यों कुराह चलने लगी। मैं तो दुनिया की बात कहती हूँ, तुम मुझे गालियाँ देने लगे। अब मुँह मीठा हो गया होगा। औरत चाहे जिस रास्ते जाय, मर्द टुकुर-टुकुर देखता रहे! ऐसे मर्द को मैं मर्द नहीं कहती।

होरी दिल में कटा जाता था। भोला उससे अपना दुख-दर्द कहने आया होगा। यह उलटे उसी पर टूट पड़ी। ज़रा गर्म होकर बोला—तू जो सारे दिन अपने ही मन की किया करती है, तो मैं तेरा क्या बिगाड़ लेता हूँ कुछ कहता हू, तो काटने दौड़ती है। यही सोच।

धनिया ने लल्ली-चप्पी करना न सीखा था, बोली—औरत घी का घड़ा लुढ़का दे, घर में आग लगा दे, मर्द सह लेगा; लेकिन उसका कुराह चलना कोई मर्द न सहेगा।

भोला दुःखित स्वर में बोला—तू बहुत ठीक कहती है धनिया! बेसक मुझे उसका सिर काट लेना चाहिए था; लेकिन अब उतना पौरुख तो नहीं रहा। तू चलकर समझा दे, मैं सब कुछ करके हार गया।

'जब औरत को बस में रखने का बूता न था, तो सगाई क्यों की थी? इसी छीछालेदर के लिए? क्या सोचते थे, वह आकर तुम्हारे पाँव दबायेगी, तुम्हें चिलम भर-भर पिलायेगी और जब तुम बीमार पड़ोगे तो तुम्हारी सेवा करेगी? तो ऐसा वही औरत कर सकती है, जिसने तुम्हारे साथ जवानी का सुख उठाया हो। मेरी

समझ में यही नहीं आता कि तुम उसे देखकर लट्टू कैसे हो गये। कुछ देख-भाल तो कर लिया होता कि किस स्वभाव की है, किस रंग-ढंग की है। तुम तो भूखे सियार की तरह टूट पड़े। अब तो तुम्हारा धरम यही है कि गँड़ासे से उसका सिर काट लो। फाँसी ही तो पाओगे। फाँसी इस छीछालेदार से अच्छी।

भोला के खून में कुछ स्फूर्ति आई। बोला तो तुम्हारी यही सलाह है?

धनिया बोली-- हाँ, मेरी यही सलाह है। अब सौ-पचास बरस तो जीओगे नहीं। समझ लेना, इतनी ही उमिर थी।

होरी ने अबकी ज़ोर से फटकारा—चुप रह, बड़ी आई है वहाँ से सतवन्ती बनके। जबरदस्ती चिड़िया तक तो पिंजरे में रहती नहीं, आदमी क्या रहेगा। तुम उसे छोड़ दो भोला और समझ लो, मर गई और जाकर अपने बाल-बच्चों में आराम से रहो। दो रोटी खाओ और राम का नाम लो। जवानी के सुख अब गये। वह औरत चञ्चल है; बदनामी और जलन के सिवा तुम उससे कोई सुख न पाओगे।

भोला नोहरी को छोड़ दे? असम्भव! नोहरी इस समय भी उनकी ओर रोष-भरी आँखों से तरेरती हुई जान पड़ती थी; लेकिन नहीं, भोला अब उसे छोड़ ही देगा। जैसा कर रही है, उसका फल भोगे।

आँखों में आँसू आ गये। बोला- होरी भैया, इस औरत के पीछे मेरी जितनी साँसत हो रही है, मैं ही जानता हूँ। इसी के पीछे कामता से मेरी लड़ाई हुई। बुढ़ापे में यह दाग भी लगना था, वह लग गया। मुझे रोज ताना देती है कि तुम्हारी तो लड़की निकल गई। मेरी लड़की निकल गई, चाहे भाग गई; लेकिन अपने आदमी के साथ पड़ी तो है, उसके सुख-दुःख की साथिन तो है। इसकी तरह तो मैंने औरत ही नहीं देखी। दूसरों के साथ तो हँसती है, मुझे देखा तो कुप्पे-सा मुँह फुला लिया। मैं गरीब आदमी ठहरा, तीन-चार आने रोज़ की मजूरी करता हूँ। दूध-दही, मांस-मछली, रबड़ी-मलाई कहाँ से लाऊँ!

भोला यहाँ से प्रतिज्ञा करके अपने घर गये। अब बेटों के साथ रहेंगे, बहुत धक्के खा चुके; लेकिन दूसरे दिन प्रातःकाल होरी ने देखा, तो भोला दुलारी सहुआइन की दुकान से तमाखू लिये चले जा रहे थे।

होरी ने पुकारना उचित न समझा। आसक्ति में आदमी अपने बस में नहीं

रहता। वहाँ से आकर धनिया से बोला—भोला तो अभी वहीं हैं। नोहरी ने सचमुच इन पर कोई जादू कर दिया है।

धनिया ने नाक सिकोड़कर कहा—जैसी बेहया वह है, वैसा ही बेहया यह। ऐसे मर्द को तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए। अब वह सेखी न जाने कहाँ गई। झुनिया यहाँ आई, तो उसके पीछे डण्डा लिये फिर रहे थे। इज्जत बिगड़ी जाती थी। अब इज्जत नहीं बिगड़ती!

होरी को भोला पर दया आ रही थी। बेचारा इस कुलटा के फेर में पड़कर अपनी ज़िन्दगी बरबाद किये डालता है। छोड़कर जाय भी, तो कैसे? स्त्री को इस तरह छोड़कर जाना क्या सहज है? यह चुड़ैल उसे वहाँ भी तो चैन से न बैठने देगी! कहीं पंचायत करेगी, कहीं रोटी-कपड़े का दावा करेगी। अभी तो गाँव ही के लोग जानते हैं। किसी को कुछ कहते संकोच होता है। कनफुसकियाँ करके ही रह जाते हैं। तब तो दुनिया भी भोला ही को बुरा कहेगी। लोग यही तो कहेंगे, कि जब मर्द ने छोड़ दिया, तो बेचारी अबला क्या करे। मर्द बुरा हो, तो औरत की गर्दन काट लेगा। औरत बुरी हो, तो मर्द के मुँह में कालिख लगा देगी।

इसके दो महीने बाद एक दिन गाँव में यह खबर फैली, कि नोहरी ने मारे जूतों के भोला की चाँद गञ्जी कर दी।

वर्षा समाप्त हो गई थी और रबी बोने की तैयारियाँ हो रही थीं। होरी की ऊख तो निलाम हो गई थी। ऊख के बीज के लिए उसे रुपये न मिले और ऊख न बोई गई। उधर दाहिना बैल भी बैठाऊँ हो गया था और एक नये बैल के बिना काम न चल सकता था। पुनिया का एक बैल नाले में गिरकर मर गया था, तब से और भी अड़चन पड़ गई थी। एक दिन पुनिया के खेत में हल जाता, एक दिन होरी के खेत में। खेतों की जुताई जैसी होनी चाहिए, वैसी न हो पाती थी।

होरी हल लेकर खेत में गया; मगर भोला की चिन्ता बनी हुई थी। उसने अपने जीवन में कभी यह न सुना था कि किसी स्त्री ने अपने पति को जूते से मारा हो। जूतों से क्या, थप्पड़ या घूँसे से मारने की भी कोई घटना उसे याद न आती थी; और आज नोहरी ने भोला को जूता से पीटा और सब लोग तमाशा देखते रहे। इस औरत से कैसे इस अभागे का गला छूटे। अब तो भोला को कहीं डूब ही मरना चाहिए। जब जिन्दगी में बदनामी और दुर्दशा के सिवा और कुछ न हो,

तो आदमी का मर जाना ही अच्छा! कौन भोला के नाम को रोनेवाला बैठा है। बेटे चाहे क्रिया-करम कर दें। लेकिन लोक-लाज के बस। आँसू किसी की आँख में न आयेगा। तिरसना के बस में पड़कर आदमी इस तरह अपनी जिन्दगी चौपट करता है। जब कोई रोनेवाला ही नहीं, तो फिर जिन्दगी का क्या मोह और मरने से क्या डरना!

एक यह नोहरी है और एक यह चमारिन है सिलिया! देखने-सुनने में उससे लाख दरजे अच्छी! चाहे तो दो को खिलाकर खाये और राधिका बनी घूमे; लेकिन मजूरी करती है, भूखों मरती है और मतई के नाम पर बैठी है, और वह निर्दयी बात भी नहीं पूछता कौन जाने, धनिया मर गई होती, तो आज होरी की भी यही दशा होती। उसकी मौत की कल्पना ही से होरी को रोमांच हो उठा। धनिया की मूर्ति मानसिक-नेत्रों के सामने आकर खड़ी हो गई—सेवा और त्याग की देवी; ज़बान की तेज़, पर मोम-जैसा हृदय; पैसे-पैसे के पीछे प्राण देनेवाली पर मर्यादा-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार। जवानी में वह कम रूपवती न थी नोहरी उसके सामने क्या है। चलती थी, तो रानी-सी लगती थी। जो देखता था, देखता ही रह जाता था। यह पटेश्वरी और झिंगुरी तब जवान थे दोनों धनिया को देखकर छाती पर हाथ रख लेते थे। द्वार के सौ-सौ चक्कर लगाते थे। होरी इनकी ताक में रहता था; मगर छेड़ने का कोई बहाना न पाता था। उन दिनों घर में खाने-पीने की बड़ी तंगी थी। पाला पड़ गया था और खेतों में भूसा तक न हुआ था। लोग झड़बेरियाँ खा-खाकर दिन काटते थे। होरी को क़हत के कैम्प में काम करने जाना पड़ता था। छः पैसे रोज़ मिलते थे। धनिया घर में अकेली ही रहती थी; लेकिन कभी किसी ने उसे किसी छैला की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़ की थी। उसका ऐसा मुँह-तोड़ जवाब दिया, कि अब तक नहीं भूले

सहसा उसने मातादीन को अपनी ओर आते देखा। कसाई कहीं का, कैसा तिलक लगाये हुए है, मानो भगवान् का असली भगत है। रँगा हुआ सियार! ऐसे बाम्हन को पालागन कौन करे।

मातादीन ने समीप आकर कहा—तुम्हारा दाहिना तो बूढ़ा हो गया होरी, अबकी सिंचाई में न ठहरेगा। कोई पाँच साल हुए होंगे इसे लाये?

होरी ने दायें बैल की पीठ पर हाथ रखकर कहा—कैसा पाँचवाँ, यह आठवाँ चल रहा है भाई ! जी तो चाहता है, इसे पिंसिन दे दूँ ; लेकिन किसान और किसान के बैल इनको जमराज ही पिंसिन दे, तो मिले। इसकी गर्दन पर जुआ रखते मेरा मन कचोटता है। बेचारा सोचता होगा, अब भी छुट्टी नहीं, अब क्या मेरा हाड़ जोतेगा क्या ; लेकिन अपना कोई काबू नहीं। तुम कैसे चले ? अब तो जी अच्छा है ?

मातादीन इधर एक महीने से मलेरिया ज्वर में पड़ा रहा था। एक दिन तो उसकी नाड़ी छूट गई थी। चारपाई से नीचे उतार दिया गया था। तब से उसके मन में यह प्रेरणा हुई थी कि सिलिया के साथ अत्याचार करने का उसे यह दण्ड मिला है। जब उसने सिलिया को घर से निकाला, तब वह गर्भवती थी। उसे तनिक भी दया न आई। पूरा गर्भ लेकर भी वह मजूरी करती रही। अगर धनिया ने उस पर दया न की होती, तो मर गई होती। कैसी-कैसी मुसीबतें झेलकर जी रही है। मजूरी भी तो इस दशा में नहीं कर सकती। अब लज्जित और द्रवित होकर वह सिलिया को होरी के हस्ते दो रुपये देने आया है ; अगर होरी उसे यह रुपये दे दे तो वह उसका बहुत उपकार मानेगा।

होरी ने कहा—तुम्हीं जाकर क्यों नहीं दे देते ?

मातादीन ने दीन-भाव से कहा—मुझे उसके पास मत भेजो होरी महतो ! कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ ? डर भी लग रहा है कि मुझे देखकर कहीं फटकार सुनाने लगे। तुम मुझ पर इतनी दया करो। अभी मुझसे चला नहीं जाता ; लेकिन इसी रुपये के लिए एक जजमान के पास कोस-भर दौड़ा गया था। अपनी करनी का फल बहुत भोग चुका। इस बम्हनई का बोझ अब नहीं उठाये उठता। लुक-छिपकर चाहे जितना कुकर्म करो, कोई नहीं बोलता। परतच्छ कुछ नहीं कर सकते, नहीं कुल में कलंक लग जायगा। तुम उसे समझा देना दादा, कि मेरा अपराध छमा कर दे। यह धरम का बन्धन बड़ा कड़ा होता है। जिस समाज में जन्मे और पले, उसकी मर्यादा का पालन तो करना ही पड़ता है। और किसी जाति का धरम बिगड़ जाय, उसे कोई बिसेस हानि नहीं होती ; बाम्हन का धरम बिगड़ जाय, तो वह कहीं का नहीं रहता। उसका धरम ही उसके पुरखों की कमाई है। इसी की वह रोटी खाता है। इस परासचित के पीछे हमारे तीन सौ बिगड़ गये। तो जब बेधरम होकर ही रहना है, तो फिर जो कुछ करना है, परतच्छ करूँगा। समाज के नाते आदमी का

अगर कुछ धरम है, तो मनुष्य के नाते भी तो उसका कुछ धरम है? समाज-धरम-पालन से समाज आदर करता है; मगर मनुष्य-धरम पालने से तो ईश्वर प्रसन्न होता है।

संध्या-समय जब होरी ने सिलिया को डरते-डरते रुपये दिये, तो वह जैसे अपनी तपस्या का बरदान पा गई। दुःख का भार तो वह अकेली उठा सकती थी। सुख का भार तो अकेले नहीं उठता। किसे यह खुश-खबरी सुनाये? धनिया से वह अपने दिल की बातें नहीं कह सकती। गाँव में और कोई प्राणी नहीं, जिससे उसकी घनिष्ठता हो। उसके पेट में चूहे दौड़ रहे थे। सोना ही उसकी सहेली थी। सिलिया उससे मिलने के लिए आतुर हो गई। रात-भर कैसे सब्र करे? मन में एक आँधी-सी उठ रही थी। अब वह अनाथ नहीं है। मातादीन ने उसकी बाँह फिर पकड़ ली। जीवन पथ में उसके सामने अब अँधेरी, विकराल मुखवाली खाई नहीं है, लह-लहाता हुआ हरा-भरा मैदान है, जिसमें झरने गा रहे हैं और हिरन कुलेलें कर रहे हैं। उसका रूठा हुआ स्नेह आज उन्मत्त हो गया है। मातादीन को उसने मन में कितना पानी पी-पीकर कोसा था। अब वह उनसे क्षमा-दान माँगेगी। उससे सचमुच बड़ी भूल हुई कि उसने उनको सारे गाँव के सामने अपमानित किया। वह तो चमा-रिन है, जात की हेठी, उसका क्या बिगड़ा। आज दस-बीस लगाकर बिरादरी को रोटी दे दे, फिर बिरादरी में ले ली जायगी। उन बेचारे का तो सदा के लिए धरम नास हो गया। वह मरजाद अब उन्हें फिर नहीं मिल सकता। वह क्रोध में कितनी अन्धी हो गई थी कि सबसे उनके प्रेम का ढिंढोरा पीटती फिरी। उनका तो धरम भिरस्ट हो गया था, उन्हें तो क्रोध था ही, उसके सिर पर क्यों भूत सवार हो गया? वह अपने ही घर चली जाती, तो कौन बुराई हो जाती। घर में उसे कोई बाँध तो न लेता। देस मातादीन की पूजा इसीलिए तो करता है कि वह नेम-धरम से रहते हैं। वही धरम नस्ट हो गया, तो वह क्यों न उसके खून के प्यासे हो जाते।

ज़रा देर पहले तक उसकी नज़र में सारा दोष मातादीन का था। और अब सारा दोष अपना था। सहृदयता ने सहृदयता पैदा की। उसने बच्चे को छाती से लगाकर खूब प्यार किया। अब उसे देखकर लज्जा और ग्लानि नहीं होती। वह अब केवल उसकी दया का पात्र नहीं। वह अब उसके सम्पूर्ण मातृ-स्नेह और गर्व का अधि-कारी है।

कार्तिक की रुपहली चाँदनी प्रकृति पर मधुर संगीत की भाँति छाई हुई थी। सिलिया घर से निकली। वह सोना के पास जाकर यह सुख-संवाद सुनायेगी। अब उससे नहीं रहा जाता। अभी तो साँझ हुई है। डोंगी मिल जायगी। वह कदम बढ़ाती हुई चली। नदी पर आकर देखा, तो डोंगी उस पार थी। और माँझी का कहीं पता नहीं। चाँद घुलकर जैसे नदी में बहा जा रहा था। वह एक क्षण खड़ी सोचती रही। फिर नदी में घुस पड़ी। नदी में कुछ ऐसा ज्यादा पानी तो क्या होगा। उस उल्लास के सागर के सामने वह नदी क्या चीज़ थी। पानी पहले तो घुटनों तक था, फिर कमर तक आया, और अन्त में गर्दन तक पहुँच गया। सिलिया डरी, कहीं डूब न जाय। कहीं कोई गढ़ा न पड़ जाय; पर उसने जान पर खेलकर पाँव आगे बढ़ाया। अब वह मँझधार में है। मौत उसके सामने नाच रही है, मगर वह घबड़ाई नहीं है। उसे तैरने आता है। लड़कपन में इसी नदी में वह कितनी बार तैर चुकी है। खड़े-खड़े नदी को पार भी कर चुकी है। फिर भी उसका कलेजा धक्-धक् कर रहा है; मगर पानी कम होने लगा। अब कोई भय नहीं। उसने जल्दी-जल्दी नदी पार की और किनारे पहुँचकर अपने कपड़े का पानी निचोड़ा और शीत से काँपती आगे बढ़ी। चारों ओर सन्नाटा था। गीदड़ों की आवाज़ भी न सुनाई पड़ती थी; और सोना से मिलने की मधुर कल्पना उसे उड़ाये लिये जाती थी।

मगर उस गाँव में पहुँचकर उसे सोना के घर जाते हुए सकोच होने लगा। मथुरा क्या कहेगा। उसके घरवाले क्या कहेंगे। सोना भी बिगड़ेगी कि इतनी रात गये तू क्यों आई। देहातों में दिन-भर के थके-माँदे किसान सरेशाम ही से सो जाते हैं। सारे गाँव में सोता पड़ गया था। मथुरा के घर के द्वार बन्द थे। सिलिया किवाड़ न खुलवा सकी। लोग उसे इस भेस में देखकर क्या कहेंगे। वहीं द्वार पर अलाव में अभी आग चमक रही थी। सिलिया अपने कपड़े सेंकने लगी। सहसा किवाड़ खुला और मथुरा ने बाहर निकलकर पुकारा—अरे! कौन बैठा है अलाव के पास?

सिलिया ने जल्दी से अञ्चल सिर पर खींच लिया और समीप आकर बोली—मैं हूँ, सिलिया।

'सिलिया! इतनी रात गये कैसे आई! वहाँ तो सब कुसल है?'

'हाँ, सब कुसल है। जी घबड़ा रहा था। सोचा, चलूँ सबसे भेंट करती आऊँ। दिन को तो छुट्टी ही नहीं मिलती।'

'तो क्या नदी थहाकर आई है ?'

'और कैसे आती । पानी कम था ।'

मथुरा उसे अन्दर ले गया । बरोठे में अँधेरा था । उसने सिलिया का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा । सिलिया ने झटके से हाथ छुड़ा लिया और रोष से बोली—देखो मथुरा, मुझे छेड़ोगे, तो मैं सोना से कह दूँगी । तुम मेरे छोटे बहनोई हो, यह समझ लो ! मालूम होता है, सोना से मन नहीं पटता ।

मथुरा ने उसकी कमर में हाथ डालकर कहा—तुम बड़ी निठुर हो सिल्लो ! इस बखत कौन देखता है ?

'क्या मैं सोना से सुन्दर हूँ ? अपने भाग नहीं बखानते कि ऐसी इन्दर की परी पा गये । और भौंरा बनने को मन चला है ! उससे कह दूँ, तो तुम्हारा मुँह न देखे ।'

मथुरा लम्पट नहीं था । सोना से उसे प्रेम भी था । इस वक्त अँधेरा और एकान्त और सिलिया का यौवन देखकर उसका मन चञ्चल हो उठा था । यह तंबीह पाकर होश में आ गया । सिलिया को छोड़ता हुआ बोला—तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ सिल्लो, उससे न कहना । अभी जो सजा चाहो, दे लो ।

सिल्लो को उस पर दया आ गई । धीरे से उसके मुँह पर चपत जमाकर बोली—इसकी सजा यही है कि फिर मुझसे ऐसा सरारत न करना, न और किसी से करना, नहीं सोना तुम्हारे हाथ से निकल जायगी ।

'मैं क़सम खाता हूँ सिल्लो, अब कभी ऐसा न होगा ।'

उसकी आवाज़ में याचना थी । सिल्लो का मन आन्दोलित होने लगा । उसकी दया सरस होने लगी ।

'और जो करो ?'

'तो तुम जो चाहना, करना ।'

सिल्लो का मुँह उसके मुँह के पास आ गया था, और दोनों की साँस और आवाज़ और देह में कम्पन हो रहा था । सहसा सोना ने पुकारा—किससे बातें करते हो वहाँ ?

सिल्लो पीछे हट गई । मथुरा आगे बढ़कर आँगन में आ गया, और बोला—सिल्लो तुम्हारे गाँव से आई है ।

सिल्लो भी पीछे-पीछे आकर आँगन में खड़ी हो गई। उसने देखा, सोना यहाँ कितने आराम से रहती है। ओसारी में खाट है। उस पर सुजनी का नर्म बिस्तर बिछा हुआ है; बिलकुल वैसा ही, जैसा मातादीन की चारपाई पर बिछा रहता था। तकिया भी है, लिहाफ भी है। खाट के नीचे लोटे में पानी रखा हुआ है। आँगन में ज्योत्स्ना ने आइना-सा बिछा रखा है। एक कोने में तुलसी का चबूतरा है, दूसरी ओर जुआर के ठेठों के कई बोझ दीवार से लगाकर रखे हैं। बीच में पुआल के गट्ठे हैं। समीप ही ओखल है, जिसके पास कुटा हुआ धान पड़ा हुआ है। खपरैल पर लौकी की बेल चढ़ी हुई है और कई लौकियाँ ऊपर चमक रही हैं। दूसरी ओर की ओसारी में एक गाय बँधी हुई है। इस खण्ड में मथुरा और सोना सोते हैं। और लोग दूसरे खंड में होंगे। सिलिया ने सोचा, सोना का जीवन कितना सुखी है। सोना उठकर आँगन में आ गई थी; मगर सिल्लो से टूटकर गले नहीं मिली। सिल्लो ने समझा, शायद मथुरा के खड़े रहने के कारण सोना संकोच कर रही है। या कौन जाने, उसे अब अभिमान हो गया हो—सिल्लो चमारिन से गले मिलने में अपना अपमान समझती हो। उसका सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। इस मिलन से हर्ष के बदले उसे ईर्ष्या हुई। सोना का रंग कितना खुल गया है, और देह कैसी कचन की तरह निखर आई है। गठन भी सुडौल हो गई है। मुख पर गृहिणीत्व की गरिमा के साथ युवती की सहास छवि भी है। सिल्लो एक क्षण के लिए जैसे मन्त्र-मुग्ध-सी खड़ी ताकती रह गई। यह वही सोना है, जो सूखी-सी देह लिये, झोंटे खोले इधर-उधर दौड़ा करती थी। महीनों सिर में तेल न पड़ता था। फटे-चीथड़े लपेटे फिरती थी। आज अपने घर की रानी है। गले में हँसुली और हुमेल है, कानों में करनफूल, और सोने की बालियाँ, हाथों में चाँदी के चूड़े और कंगन। आँखों में काजल है, माँग में सेंदुर। सिलिया के जीवन का स्वर्ग यहीं था, और सोना को वहाँ देखकर वह प्रसन्न न हुई। इसे कितना घमण्ड हो गया है। कहाँ सिलिया के गले में बाहें डाले घास छीलने जाती थी, और आज सीधे ताकती भी नहीं। उसने सोचा था, सोना उसके गले लिपटकर ज़रा-सा रोयेगी, उसे आदर से बैठायेगी, उसे खाना खिलायेगी; और गाँव और घर की सैकड़ों बातें पूछेगी और अपने नये जीवन के अनुभव बयान करेगी—सोहाग-रात और मधुर मिलन की बातें होंगी। और सोना के मुँह में दही जमा हुआ है। वह यहाँ आकर पछताई।

आखिर सोना ने रूखे स्वर में पूछा—इतनी रात को कैसे चलीं, सिल्लो ?

सिल्लो ने आँसुओं को रोकने की चेष्टा करके कहा—तुमसे मिलने को बहुत जी चाहता था। इतने दिन हो गये, भेंट करने चली आई।

सोना का स्वर और कठोर हुआ—लेकिन आदमी किसी के घर जाता है, तो दिन को कि इतनी रात गये ?

वास्तव में सोना को उसका आना बुरा लग रहा था। वह समय उसकी प्रेम-क्रीड़ा और हास-विलास का था, सिल्लो ने उसमें बाधक होकर जैसे उसके सामने से परोसी हुई थाली खींच ली थी।

सिल्लो निःसंज्ञ-सी भूमि की ओर ताक रही थी। धरती क्यों नहीं फट जाती कि वह उसमें समा जाय। इतना अपमान! उसने अपने इतने ही जीवन में बहुत अपमान सहा था, बहुत दुर्दशा देखी थी; लेकिन आज यह फाँस जिस तरह उसके अन्तःकरण में चुभ गई, वैसी कभी कोई बात न चुभी थी। गुड़ घर के अन्दर मटकों में बन्द रखा हो, तो कितना ही मूसलाधार पानी बरसे, कोई हानि नहीं होती; पर जिस वक्त वह धूप में सूखने के लिए बाहर फैलाया गया हो, उस वक्त तो पानी का एक छींटा भी उसका सर्वनाश कर देगा। सिलिया के अन्तःकरण की सारी कोमल भावनाएँ इस वक्त मुँह खोले बैठी हुई थीं कि आकाश से अमृत-वर्षा होगी। बरसा क्या, अमृत के बदले विष, और सिलिया के रोम-रोम में दौड़ गया। सर्प-दंश के समान लहरें आईं। घर में उपवास करके सो रहना और बात है; लेकिन पंगत से उठा दिया जाना तो डूब मरने ही की बात है। सिलिया को यहाँ एक क्षण ठहरना भी असह्य हो गया, जैसे कोई उसका गला दबाये हुए हो। वह कुछ न पूछ सकी। सोना के मन में क्या है, यह वह भाँप रही थी। वह बाँबी में बैठा हुआ साँप कहीं बाहर न निकल आये, इसके पहले ही वह यहाँ से भाग जाना चाहती थी। कैसे भागे, क्या बहाना करे! उसके प्राण क्यों नहीं निकल जाते!

मथुरा ने भण्डारे की कुञ्जी उठा ली थी, कि सिलिया के जलपान के लिये कुछ निकाल लाये; कर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा था। इधर सिल्लो की साँस टँगी हुई थी, मानों सिर पर तलवार लटक रही हो।

सोना की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप किसी पुरुष का पर-स्त्री और स्त्री का पर-पुरुष की ओर ताकना था। इस अपराध के लिए उसके यहाँ कोई क्षमा न थी। चोरी,

हत्या, जाल, कोई अपराध इतना भीषण न था। हँसी-दिल्लगी को वह बुरा न समझती थी, अगर खुले हुए रूप में हो। लुके-छिपे की हँसी-दिल्लगी को भी वह हेय समझती थी। छुटपन से ही वह बहुत-सी रीति की बातें जानने और समझने लगी थी। होरी को जब कभी हाट से घर आने में देर हो जाती थी और धनिया को पता लग जाता था कि वह दुलारी सहुआइन की दूकान पर गया था, चाहे तमाखू लेने ही क्यों न गया हो, तो वह कई-कई दिन तक होरी से बोलती न थी, और न घर का कोई काम करती थी। एक बार इसी बात पर वह अपने नैहर भाग गई थी। वह भावना सोना में और तीव्र हो गई थी। जब तक उसका विवाह न हुआ था, यह भावना उतनी बलवान न थी; पर विवाह हो जाने के बाद तो उसने व्रत का रूप धारण कर लिया था। ऐसे स्त्री-पुरुषों की अगर खाल भी खींच ली जाती, तो उसे दया न आती। प्रेम के लिए दाम्पत्य के बाहर उसकी दृष्टि में कोई स्थान न था। स्त्री-पुरुष का एक दूसरे के साथ जो कर्तव्य है, इसी को वह प्रेम समझती थी। फिर सिल्लो से उसका बहन का नाता था। सिल्लो को वह प्यार करती थी, उस पर विश्वास करती थी। वही सिल्लो आज उससे विश्वासघात कर रही है। मथुरा और सिल्लो में अवश्य ही पहले से साँठ-गाँठ होगी। मथुरा उससे नदी के किनारे या खेतों में मिलता होगा। और आज वह इतनी रात गये नदी पार करके इसी लिए आई है। अगर उसने इन दोनों की बातें सुन न ली होतीं, तो उसे खबर तक न होती। मथुरा ने प्रेम-मिलन के लिए यही अवसर सबसे अच्छा समझा होगा। घर में सन्नाटा जो है। उसका हृदय सब कुछ जानने के लिए विकल हो रहा था। वह सारा रहस्य जान लेना चाहती थी, जिसमें अपनी रक्षा के लिए कोई विधान सोच सके। और यह मथुरा यहाँ क्यों खड़ा है? क्या वह उसे कुछ बोलने भी न देगा?

उसने रोष से कहा—तुम बाहर क्यों नहीं जाते, या यहीं पहरा देते रहोगे?

मथुरा बिना कुछ कहे बाहर चला गया। उसके प्राण सूखे जाते थे कि कहीं सिल्लो सब कुछ कह न डाले।

और सिल्लो के प्राण सूखे जाते थे कि अब वह लटकती हुई तलवार सिर पर गिरा चाहती है।

तब सोना ने बड़े गम्भीर स्वर में सिल्लो से पूछा—देखो सिल्लो, मुझसे साफ़-साफ़ बता दो, नहीं मैं तुम्हारे सामने, यहीं, अपनी गर्दन पर गँड़ासा मार लूँगी। फिर तुम

मेरी सौत बनकर राज करना। देखो, गँड़ासा वह सामने पड़ा है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

उसने लपककर सामने आँगन में से गँड़ासा उठा लिया और उसे हाथ में लिये, फिर बोली—यह मत समझना कि मैं खाली धमकी दे रही हूँ। क्रोध में मैं क्या कर बैठूँ, नहीं कह सकती। साफ़-साफ़ बता दो।

सिलिया काँप उठी। एक-एक शब्द उसके मुँह से निकल पड़ा, मानों ग्रामोफोन में भरी हुई आवाज़ हो। वह एक शब्द भी न छिपा सकी, सोना के चेहरे पर भीषण संकल्प खेल रहा था, मानों ख़ून सवार हो।

सोना ने उसकी ओर बरछी की-सी चुभनेवाली आँखों से देखा और मानों कटार का आघात करती हुई बोली—ठीक-ठीक कहती हो?

'बिलकुल ठीक। अपने बच्चे की कसम।'

'कुछ छिपाया तो नहीं?'

'अगर मैंने रत्ती-भर छिपाया हो तो मेरी आँखें फूट जायँ।'

'तुमने उस पापी को लात क्यों नहीं मारी? उसे दाँत क्यों नहीं काट लिया? उसका खून क्यों नहीं पी लिया, चिल्लाई क्यों नहीं?'

सिल्लो क्या जवाब दे!

सोना ने उन्मादिनी की भाँति अंगारे की-सी आँखें निकालकर कहा—बोलती क्यों नहीं? क्यों तूने उसकी नाक दाँतों से नहीं काट ली? क्यों नहीं दोनों हाथों से उसका गला दबा दिया! तब मैं तेरे चरणों पर सिर झुकाती; अब तो तुम मेरी आँखों में हरजाई हो, निरी बेसवा; अगर यही करना था, तो मातादीन का नाम क्यों कलंकित कर रही है; क्यों किसी को लेकर बैठ नहीं जाती; क्यों अपने घर नहीं चली गई? यही तो तेरे घरवाले चाहते थे। तू उपले और घास लेकर बजार जाती, वहाँ से रुपये लाती और तेरा बाप बैठा, उसी रुपये की ताड़ी पीता। फिर क्यों उस बाम्हन का अपमान कराया? क्यों उसकी आबरू में बट्टा लगाया? क्यों सतवन्ती बनी बैठी है? जब अकेले नहीं रहा जाता, तो क्यों किसी से सगाई नहीं कर लेती; क्यों नदी-तालाब में डूब नहीं मरती? तो क्यों दूसरों के जीवन में बिस घोलती है? आज मैं तुमसे कहे देती हूँ कि अगर इस तरह की बात फिर कभी हुई और मुझे

पता लगा, तो हम तीनों में से एक भी जीता न रहेगा। बस, अब मुँह में कालिख लगाकर जाओ। आज से मेरे और तुम्हारे बीच में कोई नाता नहीं रहा।

सिल्ली धीरे से उठी और सँभलकर खड़ी हुई। जान पड़ा, उसकी कमर टूट गई है। एक क्षण साहस बटोरती रही, किन्तु अपनी सफाई में कुछ सूझ न पड़ा। आँखों के सामने अँधेरा था, सिर में चक्कर, कण्ठ सूख रहा था, और सारी देह सुन्न हो गई थी, मानों रोम-छिद्रों से प्राण उड़े जा रहे हों। एक-एक पग इस तरह रखती हुई, मानों सामने गड्ढा है, वह बाहर आई और नदी की ओर चली।

द्वार पर मथुरा खड़ा था। बोला—इस वक्त कहाँ जाती हो सिल्लो?

सिल्लो ने कोई जवाब न दिया। मथुरा ने भी फिर कुछ न पूछा।

वही रुपहली चाँदनी अब भी छाई हुई थी। नदी की लहरें अब भी चाँद की किरणों में नहा रही थीं। और सिल्ली विक्षिप्त-सी स्वप्न-छाया की भाँति नदी में चली जा रही थी।

२४

सिलिया का बालक अब दो साल का हो रहा था और सारे गाँव में दौड़ लगाता था। अपने साथ एक विचित्र भाषा लाया था, और उसी में बोलता था, चाहे कोई समझे या न समझे। उसकी भाषा में ट, ल और घ की कसरत थी और स, र, आदि वर्ण गायब थे। उस भाषा में रोटी का नाम न था ओटी, दूध, का तूत, साग का ताग और कौड़ी का तौली। जानवरों की बोलियों की ऐसी नक़ल करता है कि हँसते-हँसते लोगों के पेट में बल पड़ जाता है। किसी ने पूछा—रामू, कुत्ता कैसे बोलता है? रामू गम्भीर भाव से कहता—भों-भों, और काटने दौड़ता। बिल्ली कैसे बोले? और रामू म्यांव-म्यांव करके आँखें निकालकर ताकता और पंजों से नोचता। बड़ा मस्त लड़का था। जब देखो, खेलने में मगन रहता, न खाने कि सुधि थी, न पीने की। गोद से उसे चिढ़ थी। उसके सबसे सुखी क्षण वह होते, जब वह द्वार के नीम के नीचे मनों धूल बटोरकर उसमें लोटता, सिर पर चढ़ाता, उसकी ढेरियाँ लगाता, घरौंदे बनाता। अपनी उम्र के लड़कों से उसकी एक क्षण न पटती। शायद उन्हें अपने साथ खेलाने के योग्य ही न समझता था।

कोई पूछता—तुम्हारा क्या नाम है?

चटपट कहता—लामू !

'तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?'

'मातादीन ।'

'और तुम्हारी माँ का ?'

'छिलिया ।'

'और दातादोन कौन है ?'

'वह अमाला छाला है ।'

न जाने किसने दातादीन से उसका यह नाता बता दिया था ।

रामू और रूपा में खूब पटरी थी । वह रूपा का खिलौना था । उसे उबटन मलती, काजल लगाती, नहलाती, बाल सँवारती, अपने हाथों कौर-कौर बनाकर खिलाती, और कभी-कभी उसे गोद में लिये रात को सो जाती । धनिया डाँटती, तू सब कुछ छुआछूत किये देती है ; मगर वह किसी की न सुनती । चीथड़े की गुड़ियों ने उसे माता बनना सिखाया था । वह मातृ-भावना जीता-जागता बालक पाकर अब गुड़ियों से संतुष्ट न हो सकती थी ।

उसी के घर के पिछवाड़े जहाँ किसी ज़माने में उसकी बरदौर थी, होरी के खँडहर में सिलिया अपना एक फूस का झोंपड़ा डालकर रहने लगी थी । होरी के घर में उम्र तो नहीं कट सकती थी !

मातादीन को कई सौ रुपये खर्च करने के बाद अन्त में काशी के पण्डितों ने फिर से ब्राह्मण बना दिया था । उस दिन बड़ा भारी हवन हुआ, बहुत-से ब्राह्मणों ने भोजन किया, और बहुत-से मंत्र और श्लोक पढ़े गये । मातादीन को शुद्ध गोबर और गो-मूत्र खाना-पीना पड़ा । गोबर से उसका मन पवित्र हो गया । मूत्र से उसकी आत्मा में अशुचिता के कीटाणु मर गये ।

लेकिन एक तरह से इस प्रायश्चित्त ने उसे सचमुच पवित्र कर दिया । हवन के प्रचण्ड अग्नि कुण्ड में उसकी मानवता निखर गई, और हवन की ज्वाला के प्रकाश में उसने धर्म-स्तंभों को अच्छी तरह परख लिया । उस दिन से उसे धर्म के नाम से चिढ़ हो गई । उसने जनेऊ उतार फेंका और पुरोहिती को गंगा में डुबा दिया । अब वह पक्का खेतिहर था । उसने यह भी देखा कि यद्यपि विद्वानों ने उसका ब्राह्मणत्व स्वीकार कर लिया ; लेकिन जनता अब भी उसके हाथ का पानी नहीं पीती, उससे

मुहूर्त पूछती है, साइत और लग्न का विचार करवाती है, उसे पर्व के दिन दान भी दे देती है ; पर उससे अपने बरतन नहीं छुलाती ।

जिस दिन सिलिया के बालक का जन्म हुआ, उसने दूनी मात्रा में भंग पी, और गर्व से जैसे उसकी छाती तन गई, और उँगलियाँ बार-बार मूँछों पर पड़ने लगीं । बच्चा कैसा होगा ? उसी के जैसा ? कैसे देखे । उसका मन मसोसकर रह गया ।

तीसरे दिन रूपा खेत में उससे मिली । उसने पूछा—रुपिया, तूने सिलिया का लड़का देखा ?

रुपिया बोली—देखा क्यों नहीं । लाल-लाल है, खूब मोटा, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, सिर में झबराले बाल हैं । टुकुर-टुकुर ताकता है ।

मातादीन के हृदय में जैसे वह बालक आ बैठा था, और हाथ-पाँव फेंक रहा था । उसकी आँखों में नशा-सा छा गया । उसने उस किशोरी रूपा को गोद में उठा लिया, फिर कन्धे पर बिठा, फिर उतार उसके कपोलों को चूम लिया ।

रूपा बाल सँभालती हुई ढीठ होकर बोली—चलो, मैं तुमको दूर से दिखा दूँ । ओसारे में ही तो है । सिलिया बहन न जाने क्यों हरदम रोती रहती है ।

मातादीन ने मुँह फेर लिया । उसकी आँखें सजल हो आई थीं, और ओठ काँप रहे थे ।

उस रात को जब सारा गाँव सो गया और पेड़ अन्धकार में डूब गये, तो वह सिलिया के द्वार पर आया और सम्पूर्ण प्राणों से बालक का रोना सुना, जिसमें सारी दुनिया का संगीत, आनन्द और माधुर्य भरा हुआ था ।

सिलिया बच्चे को होरी के घर में खटोले पर सुलाकर मजूरी करने चली जाती । मातादीन किसी-न-किसी बहाने से होरी के घर आता और कनखियों से बच्चे को देखकर अपना कलेजा और आँखें और प्राण शीतल करता ।

धनिया मुस्कराकर कहती—लजाते क्यों हो, गोद में ले लो, प्यार करो, कैसा काठ का कलेजा है तुम्हारा ! बिलकुल तुमको पड़ा है ।

मातादीन एक-दो रुपये सिलिया के लिए फेंककर बाहर निकल आता । बालक के साथ उसकी आत्मा भी बढ़ रही थी, खिल रही थी, चमक रही थी । अब उसके जीवन का भी उद्देश्य था, एक व्रत था । उसमें संयम आ गया, गम्भीरता आ गई, दायित्व आ गया ।

एक दिन रामू खटोले पर लेटा हुआ था। धनिया कहीं गई थी। रूपा भी लड़कों का शोर सुनकर खेलने चली गई। घर अकेला था। उसी वक्त मातादीन पहुँचा। बालक नीले आकाश की ओर देख-देख हाथ-पाँव फेंक रहा था, हुमक रहा था, जीवन के उस उल्लास के साथ जो अभी उसमें ताजा था। मातादीन को देखकर वह हँस पड़ा। मातादीन स्नेह-विह्वल हो गया। उसने बालक को उठाकर छाती से लगा लिया। उसकी सारी देह और हृदय और प्राण रोमांचित हो उठे, मानों पानी की लहरों में प्रकाश की रेखाएँ काँप रही हों। बच्चे की गहरी, निर्मल, अथाह, मोद-भरी आँखों में जैसे उसके जीवन का सत्य मिल गया। उसे एक प्रकार का भय-सा लगा, मानों वह दृष्टि उसके हृदय में चुभी जाती हो—वह कितना अपवित्र है, ईश्वर का वह प्रसाद कैसे छू सकता है। उसने बालक को सशंक मन के साथ फिर लिटा दिया। उसी वक्त रूपा बाहर से आ गई और वह बाहर निकल गया।

एक दिन खूब ओले गिरे। सिलिया घास लेकर बाजार गई हुई थी। रूपा अपने खेल में मगन थी। रामू अब बैठने लगा था। कुछ-कुछ बकवाँ चलने भी लगा था। उसने जो आँगन में बिनौले बिछे देखे, तो समझा, बतासे फैले हुए हैं। कई उठाकर लाये और आँगन में खूब खेला। रात को उसे ज्वर आ गया। दूसरे दिन निमोनिया हो गया। तीसरे दिन संध्या समय सिलिया की गोद में ही बालक के प्राण निकल गये।

लेकिन बालक मरकर भी सिलिया के जीवन का केन्द्र बना रहा। उसकी छाती में दूध का उबाल-सा आता और आँचल भीग जाता। उसी क्षण आँखों से आँसू भी निकल पड़ते। पहले सब कामों से छुट्टी पाकर रात को जब वह रामू को हिये से लगाकर स्तन उसके मुँह में दे देती, तो मानों उसके प्राणों में बालक की स्फूर्ति भर जाती। तब वह प्यारे-प्यारे गीत गाती, मीठे मीठे स्वप्न देखती और नये-नये संसार रचती, जिसका राजा रामू होता। अब सब कामों से छुट्टी पाकर वह अपनी सूनी झोंपड़ी में रोती थी और उसके प्राण तड़पते थे, उड़ जाने के लिए, उस लोक में जहाँ उसका लाल इस समय भी खेल रहा होगा। सारा गाँव उसके दुःख में शरीक था। रामू कितना चोंचाल था, जो कोई बुलाता, उसी की गोद में चला जाता। मरकर और पहुँच से बाहर होकर वह और भी प्रिय हो गया था, उसकी छाया उससे कहीं सुन्दर, कहीं चोंचाल, कहीं लुभावनी थी।

मातादीन उस दिन खुल पड़ा। परदा होता है हवा के लिए। आँधी में परदे उठाके रख दिये जाते हैं कि आँधी के साथ उड़ न जायँ। उसने शव को दोनों हथेलियों पर उठा लिया और अकेला नदी के किनारे तक ले गया, जो एक मिल का पाट छोड़कर एक पतली-सी धार में समा गई थी। आठ दिन तक उसके हाथ सीधे न हो सके। उस दिन वह ज़रा भी नहीं लजाया, ज़रा भी नहीं झिझका।

और किसी ने कुछ कहा भी नहीं; बल्कि सभी ने उसके साहस और दृढ़ता की तारीफ की।

होरी ने कहा—यही मरद का धरम है। जिसकी बाँह पकड़ी, उसे क्या छोड़ना।

धनिया ने आँखें नचाकर कहा—मत बखान करो, जी जलता है। यह मरद है? मैं ऐसे मरद को नामरद कहती हूँ। जब बाँह पकड़ी थी तब क्या दूध पीता था कि सिलिया बाम्हनी हो गई थी?

एक महीना बीत गया। सिलिया फिर मजूरी करने लगी थी। संध्या हो गई थी। पूर्णमासी का चाँद विहँसता-सा निकल आया था। सिलिया ने कटे हुए खेत में से गिरे हुए जौ के बाल चुनकर टोकरी में रख लिये थे और घर जाना चाहती थी कि चाँद पर निगाह पड़ गई, और दर्द-भरी स्मृतियों का मानों स्रोत खुल गया। अंचल दूध से भीग गया और मुख आँसुओं से। उसने सिर लटका लिया और जैसे रुदन का आनन्द लेने लगी।

सहसा किसी की आहट पाकर वह चौंक पड़ी। मातादीन पीछे से आकर सामने खड़ा हो गया और बोला—कब तक रोये जायगी सिलिया! रोने से वह फिर तो न आ जायगा।

और यह कहते-कहते वह खुद रो पड़ा।

सिलिया के कण्ठ में आये हुए भर्त्सना के शब्द पिघल गये। आवाज़ सँभालकर बोली—तुम आज इधर कैसे आ गये?

मातादीन कातर होकर बोला—इधर से जा रहा था। तुझे बैठे देखा, चला आया।

'तुम तो उसे खेला भी न पाये।'

'नहीं सिलिया, एक दिन खेलाया था।'

'सच?'

'सच।'

'मैं कहाँ थी ?'

'तू बाजार गई थी।'

'तुम्हारी गोद में रोया नहीं ?'

'नहीं सिलिया, हँसता था।'

'सच ?'

'सच।'

'बस एक ही दिन खेलाया ?'

'हाँ, एक ही दिन ; मगर देखने रोज़ आता था। उसे खटोले पर खेलते देखता था और दिल थामकर चला जाता था।'

'तुम्हीं को पड़ा था।'

'मुझे पछतावा होता है कि नाहक उस दिन उसे गोद में लिया। यह मेरे पापों का दंड है।'

सिलिया की आँखों में क्षमा झलक रही थी। उसने टोकरी सिर पर रख ली और घर चली। मातादीन भी उसके साथ-साथ चला।

सिलिया ने कहा—मैं तो अब धनिया काकी के बरौठे में सोती हूँ। अपने घर में अच्छा नहीं लगता।

'धनिया मुझे बराबर समझाती रहती थी।'

'सच ?'

'हाँ, सच। जब मिलती थी, समझाने लगती थी।'

गाँव के समीप आकर सिलिया ने कहा—अच्छा, अब इधर से अपने घर चले जाओ। कहीं पण्डित देख न लें।

मातादीन ने गर्दन उठाकर कहा—मैं अब किसी से नहीं डरता।

'घर से निकाल देंगे तो कहाँ जाओगे ?'

'मैंने अपना घर बना लिया है।'

'सच ?'

'हाँ, सच।'

'कहाँ, मैंने तो नहीं देखा।'

'चल तो दिखाता हूँ।'

दोनों और आगे बढ़े। मातादीन आगे था। सिलिया पीछे। होरी का घर आ गया। मातादीन उसके पिछवाड़े जाकर सिलिया की झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा हो गया और बोला—यही हमारा घर है।

सिलिया ने अविश्वास, क्षमा, व्यंग्य और दुःख-भरे स्वर में कहा—यह तो सिलिया चमारिन का घर है।

मातादीन ने द्वार की टाटी खोलते हुए कहा—यह मेरी देवी का मंदिर है।

सिलिया की आँखें चमकने लगीं। बोली—मन्दिर है तो एक लोटा पानी उँडेलकर चले जाओगे।

मातादीन ने उसके सिर की टोकरी उतारते हुए कम्पित स्वर में कहा—नहीं सिलिया, जब तक प्राण है, तेरी सरन में रहूँगा। तेरी ही पूजा करूँगा।

'झूठ कहते हो।'

'नहीं, तेरे चरन छूकर कहता हूँ। सुना, पटवारी का लौंडा भुनेसरी तेरे पीछे बहुत पड़ा था। तूने उसे खूब डाँटा।'

'तुमसे किसने कहा?'

'भुनेसरी आप ही कहता था।'

'सच?'

'हाँ, सच।'

सिलिया ने दियासलाई से कुप्पी जलाई। एक किनारे मिट्टी का घड़ा था, दूसरी ओर चूल्हा था, जहाँ दो-तीन पीतल और लोहे के बासन मँजे-धुले रखे थे। बीच में पुआल बिछा था। वही सिलिया का बिस्तर था। इस बिस्तर के सिरहाने की ओर रामू की छोटी-सी खटोली जैसे रो रही थी, और उसी के पास दो-तीन मिट्टी के हाथी-घोड़े अग-भंग दशा में पड़े हुए थे। जब स्वामी ही न रहा तो कौन उनकी देख-भाल करता। मातादीन पुआल पर बैठ गया। कलेजे में हूक-सी उठ रही थी; जी चाहता था, खूब रोये।

सिलिया ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर पूछा—तुम्हें कभी मेरी याद आती थी?

मातादीन ने उसका हाथ पकड़कर हृदय से लगाकर कहा—तू हरदम मेरी आँखों के सामने फिरती रहती थी। तू भी कभी मुझे याद करती थी?

'मेरा तो तुमसे जी जलता था।'

'और दया नहीं आती थी?'

'कभी नहीं।'

'तो भुनेसरी...'

'अच्छा, गाली मत दो। मैं डर रही हूँ, गाँववाले क्या कहेंगे।'

'जो भले आदमी हैं वह कहेंगे, यही इसका धरम था। जो बुरे हैं उनको मैं परवा नहीं करता।'

'और तुम्हारा खाना कौन पकायेगा?'

'मेरी रानी सिलिया।'

'तो बाम्हन कैसे रहोगे?'

'मैं बाम्हन नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धरम पाले वही बाम्हन है, जो धरम से मुँह मोड़े वही चमार है।'

सिलिया ने उसके गले में बाँहें डाल दीं।

२५

होरी की दशा दिन-दिन गिरती ही जा रही थी। जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई; पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी; मगर अब वह उस अन्तिम दशा को पहुँच गया था, जब उसमें आत्म-विश्वास भी न रहा था; अगर वह अपने धर्म पर अटल रह सकता तो भी कुछ आँसू पुँछते; मगर वह बात न थी। उसने नीयत भी बिगाड़ी, अधर्म भी कमाया, कोई ऐसी बुराई न थी, जिसमें वह न पड़ा हो; पर जीवन की कोई अभिलाषा न पूरी हुई, और भले दिन मृग-तृष्णा की भाँति दूर ही होते चले गये, यहाँ तक कि अब उसे धोखा भी न रह गया था, झूठी आशा की हरियाली और चमक भी अब नज़र न आती थी। हारे हुए महीप की भाँति उसने अपने को इन तीन बीघे खेत के क़िले में बन्द कर लिया था और उसे प्राणों की तरह बचा रहा था। फ़ाके सहे, बदनाम हुआ, मजूरी की; पर क़िले को हाथ से न जाने दिया; मगर अब वह क़िला भी हाथ से निकला जाता था। तीन साल से लगान बाक़ी पड़ा हुआ था और अब पण्डित नोखेराम ने उस पर बेदख़ली का दावा कर दिया था। कहीं से रुपये मिलने की आशा न थी। जमीन उसके हाथ से निकल जायगी और उसके जीवन के

बाक़ी दिन मजूरी करने में कटेंगे। भगवान् की इच्छा। राय साहब को क्यों दोष दे। असामियों ही से तो उनका भी गुज़र है। इसी गाँव पर आधे से ज़्यादा घरों में बेदखली आ रही है। औरों की जो दशा होगी, वही उसकी भी होगी। भाग्य में सुख बदा होता, तो लड़का यों हाथ से निकल जाता?

साँझ हो गई थी। वह इसी चिन्ता में डूबा बैठा था कि पण्डित दातादीन ने आकर कहा—क्या हुआ होरी, तुम्हारी बेदखली के बारे में? इन दिनों नोखेराम से मेरी बोल-चाल बन्द है। कुछ पता नहीं। सुना, तारीख को पन्द्रह दिन और रह गये हैं।

होरी ने उनके लिए खाट डालकर कहा—वह मालिक हैं, जो चाहें करें, मेरे पास रुपये होते, तो यह दुर्दसा क्यों होती? खाया नहीं, उड़ाया नहीं; लेकिन उपज ही न हो और जो हो भी, वह कौड़ियों के मोल बिके, तो किसान क्या करे?

'लेकिन जैजात तो बचानी ही पड़ेगी। निबाह कैसे होगा? बाप-दादों की इतनी ही निशानी बच रही है। वह निकल गई, तो कहाँ रहोगे?'

'भगवान् की मरजी है, मेरा क्या बस।'

'एक उपाय है जो तुम करो।'

होरी को जैसे अभय-दान मिल गया। उनके पाँव पकड़कर बोला—बड़ा धरम होगा महराज, तुम्हारे सिवा मेरा कौन है। मैं तो निरास हो गया था।

'निरास होने की कोई बात नहीं। बस, इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धरम कुछ और होता है, दुःख में कुछ और। सुख में आदमी दान देता है, मगर दुःख में भीख तक माँगता है। उस समय आदमी का यही धरम हो जाता है। सरीर अच्छा रहता है तो हम बिना असनान-पूजा किये मुँह में पानी भी नहीं डालते; लेकिन बीमार हो जाते हैं तो बिना नहाये-धोये, कपड़े पहने, खाट पर बैठे, पथ्य लेते हैं। उस समय का यही धरम है। यहाँ हममें-तुममें कितना भेद है; लेकिन जगन्नाथपुरी में कोई भेद नहीं रहता। ऊँचे नीचे सभी एक पंगत में बैठकर खाते हैं। आपत्काल में श्रीरामचन्द्र ने सेवरी के जूठे फल खाये थे, बालि को छिपकर बध किया था। जब संकट में बड़े-बड़ों की मर्यादा टूट जाती है, तो हमारी-तुम्हारी कौन बात है। रामसेवक महतो को तो जानते ही न?'

होरी ने निरुत्साह होकर कहा—हाँ, जानता क्यों नहीं।

'मेरा जजमान है। बड़ा अच्छा जमाना है उसका। खेती अलग, लेन-देन अलग। ऐसे रोब-दाब का आदमी ही नहीं देखा। कई महीने हुए उसकी औरत मर गई है। सन्तान कोई नहीं। अगर रुपिया का ब्याह उससे करना चाहो, तो मैं उसे राज़ी कर लूँ। मेरी बात वह कभी न टालेगा। लड़की सयानी हो गई है, और जमाना बुरा है। कहीं कोई बात हो जाय, तो मुँह में कालिख लग जाय। यह बड़ा अच्छा औसर है। लड़की का ब्याह भी हो जायगा, और तुम्हारे खेत भी बच जायँगे। सारे खरच-बरच से बचे जाते हो।'

रामसेवक होरी से दो-ही-चार साल छोटा था। ऐसे आदमी से रूपा के ब्याह करने का प्रस्ताव ही अपमानजनक था। कहाँ फूल-सी रूपा और कहाँ वह बूढ़ा ठूँठ। जीवन में होरी ने बड़ी-बड़ी चोटें सही थीं, मगर यह चोट सबसे गहरी थी। आज उसके ऐसे दिन आ गये हैं कि उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है। और उसमें इनकार करने का साहस नहीं है। ग्लानि से उसका सिर झुक गया।

दातादीन ने एक मिनट के बाद पूछा--तो क्या कहते हो?

होरी ने साफ़ जवाब न दिया। बोला—सोचकर कहूँगा।

'इसमें सोचने की क्या बात है?'

'धनिया से भी तो पूछ लूँ।'

'तुम राजी हो कि नहीं?'

'ज़रा सोच लेने दो महराज! आज तक कुल में कभी ऐसा नहीं हुआ। उसकी मरजाद भी तो रखना है।'

'पाँच-छः दिन के अन्दर मुझे जवाब दे देना। ऐसा न हो, तुम सोचते ही रहो और बेदखली आ जाय।'

दातादीन चले गये। होरी की ओर से उन्हें कोई अन्देशा न था। अन्देशा था धनिया की ओर से। उसकी नाक बड़ी लम्बी है। चाहे मिट जाय, मरजाद न छोड़ेगी; मगर होरी हाँ कर ले, तो वह भी रो-धोकर मान ही जायगी। खेतों के निकलने में भी तो मरजाद बिगड़ती है।

धनिया ने आकर पूछा—पण्डित क्यों आये थे?

'कुछ नहीं, यही बेदखली की बातचीत थी।'

'आँसू पोंछने आये होंगे, यह तो न होगा कि सौ रुपये उधार दे दें।'

'माँगने का मुँह भी तो नहीं।'

'तो यहाँ आते ही क्यों हैं?'

'रुपिया की सगाई की बात थी।'

'किससे?'

'रामसेवक को जानती है? उन्हीं से।'

'मैंने उन्हें कब देखा, हाँ, नाम बहुत दिन से सुनती हूँ। वह तो बूढ़ा होगा?'

'बूढ़ा नहीं है, हाँ, अधेड़ है।'

'तुमने पण्डित को फटकारा नहीं? मुझसे कहते तो ऐसा जवाब देती कि याद करते।'

'फटकारा नहीं; लेकिन इन्कार कर दिया। कहते थे, ब्याह भी बिना खरच-बरच के हो जायगा; और खेत भी बच जायँगे।'

'साफ-साफ क्यों नहीं बोलते कि लड़की बेचने को कहते थे। कैसे इस बूढ़े का हियाव पड़ा!'

लेकिन होरी इस प्रश्न पर जितना ही विचार करता था, उतना ही उसका दुराग्रह कम होता जाता था। कुल-मर्यादा की लाज उसे कुछ कम न थी; लेकिन जिसे असाध्य रोग ने ग्रस लिया हो, खाद्य-अखाद्य की परवा कब करता है। दातादीन के सामने होरी ने कुछ ऐसा भाव प्रकट किया था, जिसे स्वीकृति नहीं कहा जा सकता; मगर भीतर से वह पिघल गया था। उम्र की ऐसी बात नहीं। मरना-जीना तकदीर के हाथ है। बूढ़े बैठे रहते हैं, जवान चले जाते हैं। रूपा के भाग में सुख लिखा है, तो कहीं भी दुःख नहीं पा सकती, और लड़की बेचने की तो कोई बात ही नहीं। होरी उससे जो कुछ लेगा, उधार लेगा और हाथ में रुपये आते ही चुका देगा। इसमें शर्म या अपमान की कोई बात नहीं है। बेशक, उसमें समाई होती, तो वह रूपा का ब्याह किसी जवान लड़के से और अच्छे कुल में करता, दहेज भी देता, बरात के खिलाने-पिलाने में भी ख़ूब दिल खोलकर खर्च करता; मगर जब ईश्वर ने उसे इस लायक नहीं बनाया, तो कुशकन्या के सिवा और वह क्या कर सकता है। लोग हँसेंगे; लेकिन जो लोग खाली हँसते हैं, और कोई मदद नहीं करते, उनकी हँसी की वह क्यों परवा करे। मुश्किल यही है कि धनिया न राजी होगी। गधी तो है ही। वही पुरानी लाज ढोये जायगी। यह कुल-प्रतिष्ठा के पालने का समय नहीं, अपनी जान

बचाने का अवसर है। ऐसी ही बड़ी लाजवाली है, तो लाये पाँच सौ, निकाले। कहाँ धरे हैं।

दो दिन गुज़र गये और इस मामले पर दोनों में कोई बातचीत न हुई। हाँ, दोनों सांकेतिक भाषा में बातें करते रहते थे।

धनिया कहती—वर-कन्या जोड़ के हों तभी ब्याह का आनन्द है।

होरी जवाब देता—ब्याह आनन्द का नाम नहीं है पगली, यह तो तपस्या है।

'चलो, तपस्या है!'

'हाँ, मैं कहता जो हूँ। भगवान् आदमी को जिस दसा में डाल दें, उसमें सुखी रहना तपस्या नहीं, तो और क्या है।'

दूसरे दिन धनिया ने वैवाहिक आनन्द का दूसरा पहलू सोच निकाला। घर में जब तक सास-ससुर, देवरानियाँ-जेठानियाँ न हों, तो ससुराल का सुख ही क्या। कुछ दिन तो लड़की बहुरिया बनने का सुख पाये!

होरी ने कहा—यह वैवाहिक-जीवन का सुख नहीं, दण्ड है।

धनिया तिनक उठी—तुम्हारी बातें भी निराली होती हैं। अकेली बहू घर में कैसे रहेगी, न कोई आगे, न कोई पीछे।

होरी बोला—तू तो इस घर में आई तो एक नहीं, दो-दो देवर थे, सास थी, ससुर था। तूने कौन-सा सुख उठा लिया, बता?

'क्या सभी घरों में ऐसे ही प्राणी होते हैं?'

'और नहीं तो क्या आकाश की देवियाँ आ जाती हैं। अकेली तो बहू। उस पर हुकूमत करनेवाला सारा घर। बेचारी किस-किस को खुस करे। जिसका हुक्म न माने, वही वैरी। सबसे भला अकेला।'

फिर भी बात यहीं तक रह गई; मगर धनिया का पल्ला हलका होता जाता था। चौथे दिन रामसेवक महतो खुद आ पहुँचे। कलों-रास घोड़े पर सवार, साथ एक नाई और एक खिदमतगार, जैसे कोई बड़ा ज़मींदार हो। उम्र चालीस से ऊपर थी, बाल खिचड़ी हो गये थे; पर चेहरे पर तेज़ था, देह गठी हुई। होरी उनके सामने बिलकुल बूढ़ा लगता था। किसी मुक़दमे की पैरवी करने जा रहे थे। यहाँ ज़रा दोपहरी काट लेना चाहते हैं। धूप कितनी तेज़ है, और कितने ज़ोरों की लू चल रही है। होरी सहुआइन की दूकान से गेहूँ का आटा और घी लाया। पूरियाँ

बनीं। तीनों मेहमानों ने खाया। दातादीन भी आशीर्वाद देने आ पहुँचे। बातें होने लगीं।

दातादीन ने पूछा—कैसा मुक़दमा है महतो?

रामसेवक ने शान जमाते हुए कहा—मुक़दमा तो एक-न-एक लगा ही रहता है महराज! संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता। जितना दबो, उतना ही लोग दबाते हैं। थाना-पुलिस, कचहरी-अदालत सब हैं हमारी रच्छा के लिए; लेकिन रच्छा कोई नहीं करता। चारों तरफ़ लूट है। जो गरीब है, बेकस है, उसकी गरदन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। भगवान् न करे, कोई बेइमानी करे। यह बड़ा पाप है। लेकिन अपने हक़ और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है। तुम्हीं सोचो, आदमी कहाँ तक दबे? यहाँ तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दे, तो गाँव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे, तो निबाह न हो। थानेदार और कानिसिटिबिल तो जैसे उसके दामाद हैं। जब उनका दौरा गाँव में हो जाय, किसानों का धरम है कि वह उनका आदर-सत्कार करें, नजर-नयाज दें, नहीं एक रपोट में गाँव का गाँव बँध जाय। कभी कानूँगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिपटी, कभी जंट, कभी कलक्टर, कभी कमिसनर, किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर रहना चाहिए। उनके लिए रसद-चारे, अंडे-मुर्गी, दूध-घी का इन्तज़ाम करना चाहिए। तुम्हारे सिर भी तो वही बीत रही है महराज! एक-न-एक हाकिम रोज नये-नये बढ़ते जाते हैं। एक डाक्टर कुओं में दवाई डालने के लिए आने लगा है। एक दूसरा डाक्टर कभी-कभी आकर ढोरों को देखता है, लड़कों का इम्तहान लेनेवाला इसपिट्टर है, और न जाने किस-किस महकमे के अफसर हैं, नहर के अलग, जंगल के अलग, ताड़ी-शराब के अलग, गाँव-सुधार के अलग, खेती-विभाग के अलग। कहाँ तक गिनाऊँ। पादड़ी आ जाता है, तो उसे भी रसद देना पड़ता है, नहीं शिकायत कर दे। और जो कहो कि इतने महकमों और इतने अफसरों से किसान का कुछ उपकार होता हो, तो नाम को नहीं। अभी जमींदार ने गाँव पर हल पीछे दो-दो रुपये चन्दा लगाया। किसी बड़े अफसर की दावत की थी। किसानों ने देने से इनकार कर दिया। बस, उसने सारे गाँव पर जाफा कर दिया। हाकिम भी जमींदार ही का पच्छ करते हैं। यह नहीं सोचते कि किसान भी आदमी है, उसके भी बाल-बच्चे हैं,

उसकी भी इज्जत-आबरू है। और यह सब हमारे दब्बूपन का फल है। मैंने गाँव-भरमें डौंडी पिटवा दी, कि कोई बेसी लगान न दो और न खेत छोड़ो। हमको कोई कायल कर दे, तो हम जाफा देने को तैयार हैं; लेकिन जो तुम चाहो कि बेमुँह के किसानों को पीसकर पी जायँ, तो यह न होगा। गाँववालों ने मेरी बात मान ली, और सबने जाफा देने से इनकार कर दिया। जमींदार ने देखा, सारा गाँव एक हो गया तो लाचार हो गया। खेत बेदखल भी कर दे, तो जोते कौन! इस जमाने में जब तक कड़े न पड़ो, कोई नहीं सुनता। बिना रोये तो बालक भी माँ से दूध नहीं पाता।

रामसेवक तीसरे पहर चला गया और धनिया और होरी पर न मिटनेवाला असर छोड़ गया। दातादीन का मन्त्र जाग गया।

उन्होंने पूछा—अब क्या कहते हो?

होरी ने धनिया की ओर इशारा करके कहा—इससे पूछो।

'हम तुम दोनों से पूछते हैं।'

धनिया बोली—उमिर तो ज़्यादा है, लेकिन तुम लोगों की राय है, तो मुझे भी मंजूर है। तकदीर में जो लिखा होगा, वह तो आगे आयेगा ही; मगर आदमी अच्छा है।

और होरी को तो रामसेवक पर वह विश्वास हो गया था, जो दुर्बलों को जीवट-वाले आदमियों पर होता है। वह शेखचिल्ली के-से मंसूबे बाँधने लगा था। ऐसा आदमी उसका हाथ पकड़ ले, तो बेड़ा पार है।

विवाह का मुहूर्त ठीक हो गया। गोबर को भी बुलाना होगा। अपनी तरफ से लिख दो, आने, न आने का उसे अख्तियार है। यह कहने को तो मुँह न रहे कि तुमने मुझे बुलाया कब था। सोना को भी बुलाना होगा।

धनिया ने कहा—गोबर तो ऐसा नहीं था; लेकिन जब झुनिया आने दे। परदेस जाकर ऐसा भूला गया कि न चिट्ठी, न पत्री। न जाने कैसे है। यह कहते-कहते उसकी आँखें सजल हो गईं।

गोबर को खत मिला, तो चलने को तैयार हो गया। झुनिया को जाना अच्छा तो न लगता था; पर इस अवसर पर कुछ कह न सकी। बहन के ब्याह में भाई का न जाना कैसे सम्भव है। सोना के ब्याह में न जाने का कलंक क्या कम है?

गोबर आर्द्र कण्ठ से बोला—माँ-बाप से खिंचे रहना कोई अच्छी बात नहीं है। अब हमारे हाथ-पाँव हैं, उनसे खिंच लें, चाहे लड़ लें; लेकिन जनम तो उन्हीं ने दिया, पाल-पोसकर जवान तो उन्हीं ने किया, अब वह हमें चार बात भी कहें तो हमें गम खाना चाहिए। इधर मुझे बार-बार अम्माँ-दादा की याद आया करती है। उस बखत मुझे न जाने क्यों उन पर गुस्सा आ गया। तेरे कारन माँ-बाप को भी छोड़ना पड़ा।

झुनिया तिनक उठी—मेरे सिर पर यह पाप न लगाओ, हाँ। तुम्हीं को लड़ने की सूझी थी। मैं तो अम्माँ के पास इतने दिन रही, कभी साँस तक न लिया।

'लड़ाई तेरे कारन हुई।'

'अच्छा, मेरे ही कारन सही। मैंने भी तो तुम्हारे लिए अपना घर-बार छोड़ दिया।'

'तेरे घर में कौन तुझे प्यार करता था? भाई बिगड़ते थे, भावजें जलती थीं। भोला तो तुझे पा जाते तो कच्चा ही खा जाते।'

'तुम्हारे ही कारन।'

'अबकी जब तक रहें, इस तरह रहें कि उन्हें भी जिन्दगानी का कुछ सुख मिले। उनकी मरजी के खिलाफ़ कोई काम न करें। दादा इतने अच्छे हैं कि कभी मुझे डाँटा तक नहीं। अम्माँ ने कई बार मारा है; लेकिन वह जब मारती थीं, तब कुछ-न-कुछ खाने को दे देती थीं। मारती थीं; पर जब तक मुझे हँसा न लें, उन्हें चैन न आता था।'

दोनों ने मालती से जिक्र किया। मालती ने छुट्टी ही नहीं दी, कन्या के उपहार के लिए एक चर्खा और हाथों का कंगन भी दिया। वह ख़ुद जाना चाहती थी; लेकिन कई ऐसे मरीज़ उसके इलाज में थे, जिन्हें एक दिन के लिए भी न छोड़ सकती थी। हाँ, शादी के दिन आने का वादा किया और बच्चे के लिए खिलौनों का ढेर लगा दिया। उसे बार-बार चूमती थी और प्यार करती थी, मानों सब कुछ पेशगी ले लेना चाहती है, और बच्चा उसके प्यार की बिलकुल परवा न करके घर चलने के लिए खुश था, उस घर के लिए जिसको उसने देखा तक न था। उसकी बाल-कल्पना में घर स्वर्ग से भी बढ़कर कोई चीज़ था।

गोबर ने घर पहुँचकर उसकी दशा देखी, तो ऐसी निराशा हुई कि इसी वक

यहाँ से लौट जाय। घर का एक हिस्सा गिरने-गिरने हो गया था। द्वार पर केवल एक बैल बँधा हुआ था, वह भी नीमजान। धनिया और होरी दोनों फूले न समाये; लेकिन गोबर का जी उचाट था। अब इस घर के सँभलने की क्या आशा है। वह गुलामी करता है; लेकिन भर-पेट खाता तो है। केवल एक ही मालिक का तो नौकर है। यहाँ तो जिसे देखो, वही रोब जमाता है। गुलामी है; पर सूखी। मेहनत करके अनाज पैदा करो और जो रुपये मिलें, वह दूसरों को दे दो। आप बैठे राम-राम करो। दादा ही का कलेजा है कि यह सब सहते हैं। उससे तो एक दिन न सहा जाय। और यह दशा कुछ होरी ही की न थी। सारे गाँव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं, जिसकी रोनी सूरत न हो, मानों उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरत थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तक़दीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो। जेठ के दिन हैं, अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है; मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहान में ही तुलकर महाजनों और कारिन्दों की भेंट हो चुका है और और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अन्धकार की भाँति उनके सामने है। उसमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएँ शिथिल हो गई हैं। द्वार पर मनों कूड़ा जमा है, दुर्गन्ध उड़ रही है; मगर उनकी नाक में न गन्ध है, न आँखों में ज्योति। सरे शाम से द्वार पर गीदड़ रोने लगते हैं; मगर किसी को ग़म नहीं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं, उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है। उनके बैल चूनी-चोकर के बग़ैर नाद में मुँह नहीं डालते; मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिए। स्वाद से उन्हें कोइ प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। उनसे धेले-धेले के लिए बेईमानी करवा लो, मुट्ठी-भर अनाज के लिए लाठियाँ चलवा लो। पतन की वह इन्तहा है, जब आदमी शर्म और इज्जत को भी भूल जाता है।

लड़कपन से गोबर ने गाँवों की यही दशा देखी थी और उसका आदी हो चुका था; पर आज चार साल के बाद उसने जैसे एक नई दुनिया देखी। भले आदमियों के साथ रहने से उसकी बुद्धि कुछ जग उठी है। उसने राजनैतिक जलसों

में पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग में बिधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होगा। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनको मदद करने न आयेगी। और उसमें गहरी सवेदना सजग हो उठी है। अब उसमें वह पहले की उद्दण्डता और गरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। जिस दशा में पड़े हुए हो, उसे स्वार्थ और लोभ के वश होकर और क्यों बिगाड़ते हो? दुःख ने तुम्हें एक सूत्र में बाँध दिया है। बन्धुत्व के इस दैवी बन्धन को क्यों अपने तुच्छ स्वार्थों से तोड़े डालते हो? उस बन्धन को एकता का बन्धन बना लो। इस तरह के भावों ने उसको मानवता को पंख-से लगा दिये हैं। संसार का ऊँच-नीच देख लेने के बाद निष्कपट मनुष्यों में जो उदारता आ जाती है, वह अब मानों आकाश में उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रही है। होरी को अब वह कोई काम करते देखता है, तो उसे हटाकर खुद करने लगता है, जैसे पिछले दुर्व्यवहार का प्रायश्चित्त करना चाहता हो। कहता है, दादा, अब कोई चिन्ता मत करो, सारा भार मुझ पर छोड़ दो, मैं अब हर महीने खर्च भेजूँगा इतने दिन तो मरते-खपते रहे कुछ दिन तो आराम कर लो, मुझे धिक्कार है कि मेरे रहते तुम्हे इतना कष्ट उठाना पड़े। और होरी के रोम-रोम से बेटे के लिए आशीर्वाद निकल जाता है। उसे अपनी जीर्ण देह में दैवी स्फूर्ति का अनुभव होता। वह इस समय अपने क़र्ज़ का ब्योरा कहकर उसकी उठती जवानी पर चिन्ता की बिजली क्यों गिराये? वह आराम से खाये पीये, ज़िन्दगी का सुख उठाये मरने-खपने के लिए वह तैयार है। यही उसका जीवन है। राम-राम जपकर वह जी भी तो नहीं सकता। उसे तो फावड़ा और कुदाल चाहिए। राम-नाम की माला फेरकर उसका चित्त न शान्त होगा।

गोबर ने कहा—कहो तो मैं सबसे क़िस्त बँधवा लूँ और महीने-महीने देता जाऊँ। सब मिलकर कितना होगा।

होरी ने सिर हिलाकर कहा नहीं बेटा, तुम काहे को तकलीफ उठाओगे। तुम्हीं को कौन बहुत मिलते हैं। मैं सब देख लूँगा। जमाना इसी तरह थोड़े ही रहेगा। रुपा चली जाती है। अब कर्ज ही चुकाना तो है। तुम कोई चिन्ता मत करना। खाने-पीने का संजम रखना। अभी देह बना लोगे, तो सदा आराम से रहोगे। मेरी क्या, मुझे तो मरने-खपने को आदत पड़ गई है। अभी मैं तुम्हें खेती

में नहीं जोतना चाहता बेटा! मालिक अच्छा मिल गया है। उसकी कुछ दिन सेवा कर लोगे, तो आदमी बन जाओगे। वह तो यहाँ आ चुकी हैं। साक्षात् देवी हैं।

'ब्याह के दिन फिर आने को कहा है।'

'हमारे सिर-आँखों पर आयें। ऐसे भले आदमी के साथ रहने से चाहे पैसे कम भी मिलें; लेकिन ज्ञान बढ़ता है और आँखें खुलती हैं।'

उसी वक्त पण्डित दातादीन ने होरी को इशारे से बुलाया और दूर ले जाकर कमर से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालते हुए बोले—तुमने मेरी सलाह मान ली, बड़ा अच्छा किया। दोनों काम बन गये। कन्या से भी उरिन हो गये और बाप-दादों की निशानी भी बच गई। मुझसे जो कुछ हो सका, मैंने तुम्हारे लिए कर दिया, अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

होरी ने रुपये लिये तो उसका हाथ काँप रहा था। उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानों उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, भाइयो, मैं दया का पात्र हूँ, मैंने नहीं जाना, जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है! इस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ! उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छाँह में बैठा? उस पर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम! उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था, मानों टूक-टूक उड़ गया है।

दातादीन ने कहा—तो मैं जाता हूँ। न हो, तुम इस वखत नोखेराम के पास जाओ।

होरी दीनता से बोला—चला जाऊँगा महराज! मगर मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है।

२६

दो दिन तक गाँव में खूब धूम-धाम रहा। बाजे बजे, गाना-बजाना हुआ और रूपा रो-धोकर विदा हो गई; मगर होरी को किसी ने घर से निकलते न देखा। ऐसा छिपा बैठा था, जैसे मुँह में कालिख लगी हो। मालती के आ जाने से चहल-पहल और बढ़ गई। दूसरे गाँवों की स्त्रियाँ भी आ गईं।

गोबर ने अपने शील-स्नेह से सारे गाँव को मुग्ध कर लिया है। ऐसा कोई घर न था, जहाँ वह अपने मीठे व्यवहार की याद न छोड़ आया हो। भोला तो उसके पैरों पर गिर पड़े। उसकी स्त्री ने उसको पान खिलाये और एक रुपया बिदाई दी और उसका लखनऊ का पता भी पूछा। कभी लखनऊ आयेगी तो उससे ज़रूर मिलेगी। अपने रुपये की उससे चर्चा न की।

तीसरे दिन जब गोबर चलने लगा, तो होरी ने धनिया के सामने आँखों में आँसू भरकर वह अपराध स्वीकार किया, जो कई दिन से उसकी आत्मा को मथ रहा था, और रोकर बोला—बेटा, मैंने इस जमीन के मोह से पाप की गठरी सिर पर लादी। न जाने भगवान् मुझे इसका क्या दण्ड देंगे।

गोबर ज़रा भी गर्म न हुआ, किसी प्रकार का रोष उसके मुँह पर न था। श्रद्धा-भाव से बोला—इसमें अपराध की तो कोई बात नहीं है दादा, हाँ, रामसेवक के रुपये अदा कर देना चाहिए। आखिर तुम क्या करते? मैं किसी लायक नहीं, तुम्हारी खेती में उपज नहीं। करज कहीं मिल नहीं सकता। एक महीने के लिए भी घर में भोजन नहीं। ऐसी दशा में तुम और कर ही क्या सकते थे। जैजात न बचाते तो रहते कहाँ? जब आदमी का कोई बस नहीं चलता, तो अपने को तकदीर पर ही छोड़ देता है। न जाने यह धाँधली कब तक चलती रहेगी। जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा, यह उसी का दण्ड है। तुम्हारी जगह मैं होता तो या तो जेहल में होता, या फाँसी पा गया होता। मुझसे यह कभी बरदास न होता कि मैं कमा-कमाकर सबका घर भरूँ और आप अपने बाल-बच्चों के साथ मुँह में जाली लगाये बैठा रहूँ।

धनिया बहू को उसके साथ भेजने पर राज़ी न हुई। झुनिया का मन भी अभी कुछ दिन यहाँ रहने का था। तय हुआ कि गोबर अकेला ही जाय।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोबर सबसे विदा होकर लखनऊ चला। होरी उसे गाँव के बाहर तक पहुँचाने आया। गोबर के प्रति इतना प्रेम उसे कभी न हुआ था। जब गोबर उसके चरणों पर झुका, तो होरी रो पड़ा, मानों फिर उसे पुत्र के दर्शन न होंगे। उसकी आत्मा में उल्लास था, गर्व था, संकल्प था। पुत्र से यह श्रद्धा और स्नेह पाकर वह तेजवान हो गया है, विशाल हो गया है। कई दिन पहले उस पर जो अवसाद-सा छा गया था, एक अन्धकार-सा, जहाँ वह अपना मार्ग भूला जाता था, वहाँ अब उत्साह है और प्रकाश है।

रूपा अपने ससुराल में खुश थी। जिस दशा में उसका बालपन बीता था, उसमें पैसा सबसे कीमती चीज़ था। मन में कितनी साधें थीं, जो मन में ही घुट-घुटकर रह गई थीं। वह अब उन्हें पूरा कर रही थी और रामसेवक अधेड़ होकर भी जवान हो गया था। रूपा के लिए वह पति था, उसके जवान, अधेड़ या बूढ़े होने से उसकी नारी-भावना में कोई अन्तर न आ सकता था। उसकी यह भावना पति के रंग-रूप या उम्र पर आश्रित न थी, उसकी बुनियाद इससे बहुत गहरी थी, श्वेत परम्पराओं की तह में, जो केवल किसी भूकम्प से ही हिल सकती थी। उसका यौवन अपने ही में मस्त था, वह अपने ही लिए अपना बनाव-सिंगार करती थी और आप ही खुश होती थी। रामसेवक के लिए उसका दूसरा रूप था। तब वह गृहिणी बन जाती थी, घर के काम-काज में लगी हुई। अपनी जवानी दिखाकर उसे लज्जा या चिन्ता में न डालना चाहती थी। किसी तरह की अपूर्णता का भाव उसके मन में न आता था। अनाज से भरे हुए बखार और गाँव के सिवान तक फैले हुए खेत और द्वार पर ढोरों की क़तारें और किसी प्रकार की अपूर्णता को उसके अन्दर आने ही न देती थीं।

और उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी अपने घरवालों को सुखी देखना। उनकी ग़रीबी कैसे दूर कर दे। उस गाय की याद अभी तक उसके दिल में हरी थी, जो मेहमान की तरह आई थी और सबको रोता छोड़कर चली गई थी। वह स्मृति इतने दिनों के बाद अब और भी मृदु हो गई थी। अभी उसका निजत्व इस नये घर में न जम पाया था। वही पुराना घर उसका अपना घर था। वहीं के लोग अपने आत्मीय थे, उन्हीं का दुःख उसका दुःख और उन्हीं का सुख उसका सुख था। इस द्वार पर ढोरों का एक

रेवड़ देखकर उसे वह हर्ष न हो सकता था, जो अपने द्वार पर एक गाय देखकर होता। उसके दादा की यह लालसा कभी पूरी न हुई। जिस दिन वह गाय आई थी, उन्हें कितना उछाह हुआ था, जैसे आकाश से कोई देवी आ गई हो। तब से फिर उन्हें इतनी समाई ही न हुई कि कोई दूसरी गाय लाते; पर वह जानती थी, आज भी वह लालसा होरी के मन में उतनी ही सजग है। अबकी वह जायगी, तो साथ वह धौरी गाय ज़रूर लेती जायगी। नहीं, अपने आदमी से क्यों न भेजवा दे। रामसेवक से पूछने की देर थी। मंजूरी हो गई, और दूसरे दिन एक अहीर के मारफ़त रूपा ने गाय भेज दी। अहीर से कहा, दादा से कह देना, मंगल के दूध पीने के लिए भेजी है। होरी भी गाय लेने की फ़िक्र में था। यों अभी उसे गाय की कोई जल्दी न थी; मगर मंगल यहाँ है और वह बिना दूध के कैसे रह सकता है! रुपये मिलते ही वह सबसे पहले गाय लेगा। मंगल अब केवल उसका पोता नहीं है, केवल गोबर का बेटा नहीं है, मालती देवी का खिलौना भी है। उसका लालन-पालन उसी तरह का होना चाहिए।

मगर रुपये कहाँ से आयें? संयोग से उसी दिन एक ठीकेदार ने सड़क के लिए गाँव के ऊपर में कंकड़ की खुदाई शुरू की। होरी ने सुना तो चट-पट वहाँ जा पहुँचा, और आठ आने रोज़ पर खुदाई करने लगा, अगर यह काम दो महीने भी टिक गया, तो उसे गाय भर को रुपये मिल जायँगे! दिन-भर लू और धूप में काम करने के बाद वह घर आता, तो बिलकुल मरा हुआ; लेकिन अवसाद का नाम नहीं। उसी उत्साह से दूसरे दिन फिर काम करने जाता। रात को भी खाना खाकर डिब्बी के सामने बैठ जाता और सुतली कातता। कहीं बारह-एक बजे सोने जाता। धनिया भी पगला गई थी, उसे इतनी मेहनत करने से रोकने के बदले खुद उसके साथ बैठी-बैठी सुतली कातती। गाय तो लेनी ही है, रामसेवक के रुपये भी तो अदा करने हैं। गोबर कह गया है। उसे बड़ी चिन्ता है।

रात के बारह बज गये थे। दोनों बैठे सुतली कात रहे थे। धनिया ने कहा—तुम्हें नींद आती हो तो जाके सो रहो। भोरे फिर तो काम करना है।

होरी ने आसमान की ओर देखा—चला जाऊँगा। अभी तो दस बजे होंगे। तू जा सो रह।

'मैं तो दोपहर को छन-भर पौढ़ रहती हूँ।'

'मैं भी चबेना करके पेड़ के नीचे सो लेता हूँ।'

'बड़ी लू लगती होगी।'

'लू क्या लगेगी। अच्छी छाँह है।'

'मैं डरती हूँ, कहीं तुम बीमार न पड़ जाओ।'

'चल। बीमार वह पड़ते हैं, जिन्हें बीमार पड़ने की फुरसत होती है। यहाँ तो यह धुन है कि अबकी गोबर आये, तो रामसेवक के आधे रुपये जमा रहें। कुछ वह भी लायेगा ही। बस, इस साल इस रिन से गला छूट जाय, तो दूसरी जिन्दगी हो।'

'गोबर की अबकी बड़ी याद आती है। कितना सुशील हो गया है।'

'चलती बेर पैरों पर गिर पड़ा।'

'मंगल वहाँ से आया तो कितना तैयार था। यहाँ आकर दुबला हो गया है।'

'वहाँ दूध, मक्खन क्या नहीं पाता था। यहाँ रोटी मिल जाय वही बहुत है। ठीकेदार से रुपये मिले और गाय लाया।'

'गाय तो कभी आ गई होती; लेकिन तुम जब कहना मानो। अपनी खेती तो सँभाले न सँभलती थी, पुनिया का भार भी अपने सिर ले लिया।'

'क्या करता, अपना धरम भी तो कुछ है। हीरा ने नालायकी की तो उसके बाल-बच्चों को सँभालनेवाला तो कोई चाहिए ही था। कौन था मेरे सिवा, बता? मैं न मदद करता, तो आज उनकी क्या गत होती, सोच। इतना सब करने पर भी तो मँगरू ने उस पर नालिस कर ही दी।'

'रुपये गाड़कर रखेगी तो क्या नालिस न होगी!'

'क्या बकती है। खेती से पेट चल जाय यही बहुत है। गाड़कर कोई क्या रखेगा।'

'हीरा तो जैसे संसार ही से चला गया।'

'मेरा मन तो कहता है कि वह आयेगा कभी-न-कभी ज़रूर।'

दोनों सोये। होरी अँधेरे मुँह उठा तो देखता है कि हीरा सामने खड़ा है, बाल बढ़े हुए, कपड़े तार-तार, मुँह सूखा हुआ, देह में रक्त और माँस का नाम नहीं जैसे क़द भी छोटा हो गया है। दौड़कर होरी के क़दमों पर गिर पड़ा।

होरी ने उसे छाती से लगाकर कहा—तुम तो बिलकुल घुल गये हीरा, कब आये ? आज तुम्हारी बार-बार याद आ रही थी। बीमार हो क्या ?

आज उसकी आँखों में वह हीरा न था जिसने उसकी जिन्दगी तल्ख कर दी थी, बल्कि वह हीरा जो वे माँ-बाप का छोटा-सा बालक था। बीच के ये पचीस-तीस साल जैसे मिट गये, उनका कोई चिह्न भी नहीं।

हीरा ने कुछ जवाब न दिया। खड़ा रो रहा था।

होरी ने उसका हाथ पकड़कर गद्‌गद कण्ठ से कहा—क्यों रोते हो भैया, आदमी से भूल-चूक होती ही है। कहाँ रहे इतने दिन ?

हीरा कातर स्वर में बोला—कहाँ बताऊँ दादा ! बस यही समझ लो कि तुम्हारे दर्शन बदे थे, बच गया। हत्या सिर सवार थी। ऐसा लगता था कि वह गऊ मेरे सामने खड़ी है, हरदम, सोते-जागते, कभी आँखों से ओझल न होती। मैं पागल हो गया और पाँच साल पागलखाने में रहा। आज वहाँ से निकले छः महीने हुए। माँगता-खाता फिरता रहा। यहाँ आने की हिम्मत न पड़ती थी। संसार को कौन मुँह दिखाऊँगा। आखिर जी न माना। कलेजा मजबूत करके चला आया। तुमने मेरे बाल-बच्चों को...

होरी ने बात काटी—तुम नाहक भागे। अरे, दारोगा को दस-पाँच देकर मामला रफे-दफे करा दिया जाता और होता क्या।

'तुमसे जीते-जी उरिन न हूँगा दादा !'

'मैं कोई गैर थोड़े हूँ भैया !'

होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ मानों उसके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है, जीवन-सग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं ! इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय-पताकाएँ हैं। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान् हो गई है। उसके बखार में सौ-दो-सौ मन अनाज भरे होते, उसकी हाँड़ी में हज़ार-पाँच सौ गड़े होते ; पर उससे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था ?

हीरा ने उसे सिर से पाँव तक देखकर कहा—तुम भी तो बहुत दुबले हो गये दादा !

होरी ने हँसकर कहा—तो क्या यह मेरे मोटे होने के दिन हैं? मोटे वह होते हैं, जिन्हें न रिन का सोच होता है, न इज्जत का। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन में क्या सुख? सुख तो जब है कि सभी मोटे हों। सोभा से भेंट हुई?

'उससे तो रात ही भेंट हो गई थी। तुमने तो अपनों को भी पाला, जो तुमसे बैर करते थे उनको भी पाला और अपना मरजाद बनाये बैठे हो। उसने तो खेतबारी सब बेच-बाच डाली और अब भगवान् ही जाने उसका निबाह कैसे होगा।'

आज होरी खुदाई करने चला, तो देह भारी थी रात की थकन दूर न हो पाई थी, पर उसके क़दम तेज़ थे और चाल में निर्द्वन्द्वता की अकड़ थी।

आज दस बजे ही से लू चलने लगी और दोपहर होते-होते तो आग बरस रही थी। होरी कंकड़ के झौवे उठा-उठाकर खदान से सड़क पर लाता था और गाड़ी पर लादता था, जब दोपहर की छुट्टी हुई, तो वह बेदम हो गया था। ऐसी थकन उसे कभी न हुई थी। उसके पाँव तक न उठते थे देह भीतर से झुलसी जा रही थी। उसने न स्नान किया, न चबेना, उसी थकन में अपना अँगोछा बिछाकर एक पेड़ के नीचे सो रहा; मगर प्यास के मारे कण्ठ सूखा जाता है। खाली पेट पानी पीना ठीक नहीं। उसने प्यास को रोकने की चेष्टा की; लेकिन प्रतिक्षण भीतर का दाह बढ़ता जाता था। न रहा गया! एक मज़दूर ने बाल्टी भर रखी थी और चबेना कर रहा था। होरी ने उठकर एक लोटा पानी खींचकर पिया और फिर आकर लेट रहा; मगर आध घण्टे में उसे कै हो गई और चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गई।

उस मज़दूर ने कहा—कैसा जी है होरी भैया?

होरी के सिर में चक्कर आ रहा था। बोला—कुछ नहीं, अच्छा हूँ।

यह कहते कहते उसे फिर कै हुई और हाथ-पाँव ठण्डे होने लगे, जैसे अँधेरा छाया जाता है। उसकी आँखें बन्द हो गईं और जीवन की सारी स्मृतियाँ सजीव हो-होकर हृदय-पट पर आने लगीं; लेकिन बेक्रम आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्वप्न-चित्रों की भाँति बेमेल, विकृत और असम्बद्ध। वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियाँ खेलता था और माँ की गोद में सोता था। फिर देखा, जैसे गोबर आया है और उसके पैरों पर गिर रहा है। फिर दृश्य बदला, धनिया दुलहिन बनी हुई, लाल चुँदरी पहने उसको भोजन करा रही थी। फिर एक गाय का चित्र सामने

आया, बिलकुल कामधेनु-सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था, कि गाय एक देवी बन गई और...

उसी मज़दूर ने फिर पुकारा--दोपहरी ढल गई होरी! चलो, झौवा उठाओ।

होरी कुछ न बोला। उसके प्राण तो न जाने किस-किस लोक में उड़ रहे थे! उसकी देह जल रही थी, हाथ-पाँव ठण्डे हो रहे थे। लू लग गई थी।

उसके घर आदमी दौड़ाया गया। एक घण्टा में धनिया दौड़ी हुई आ पहुँची। शोभा और हीरा पीछे-पीछे खटोले की डोली बनाकर ला रहे थे।

धनिया ने होरी की देह छुई, तो उसका कलेजा सन् से हो गया। मुख कांतिहीन हो गया था।

काँपती हुई आवाज़ से बोली कैसा जी है तुम्हारा?

होरी ने अस्थिर आँखों से देखा और बोला—तुम आ गये गोबर, मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है, देखो।

धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते भी देखा था, आँधी की तरह आते भी देखा था। उसके सामने सास मरी, ससुर मरा, अपने दो बालक मरे, गाँव के पचासों आदमी मरे। प्राण में एक धक्का-सा लगा। वह आधार जिस पर जीवन टिका हुआ था, जैसे खिसका जा रहा था; लेकिन नहीं, यह धैर्य का समय है, उसकी शंका निर्मूल है, लू लग गई है, इसी से अचेत हो गये हैं।

उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर बोली—मेरी ओर देखो, मैं हूँ, क्या मुझे नहीं पहचानते?

होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गई थी; आग दहकनेवाली थी। धुआँ शान्त हो गया था। धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनों कोनों से आँसू की दो बूँदें ढुलक पड़ीं। क्षीण स्वर में बोला मेरा कहा-सुना माफ़ करना धनिया! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहाँ के रुपये क्रिया-करम में जायँगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिलायेगी? सब दुर्दसा तो हो गई। अब मरने दे।

और उसकी आँखें फिर बन्द हो गईं। उसी वक्त हीरा और शोभा डोली लेकर पहुँच गये। होरी को उठाकर डोली में लेटाया और गाँव की ओर चले।

गाँव में यह खबर हवा की तरह फैल गई। सारा गाँव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब कुछ देखता था, सब कुछ समझता था; पर ज़बान बन्द हो गई थी। हाँ, उसकी आँखों से बहते हुए आँसू बतला रहे थे, मोह का बन्धन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुःख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्तव्य और निपटाये हुए कामों का क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्तव्य न निभा सके; उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम पूरा न कर सके।

मगर सब कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आँखों से आँसू गिर रहे थे, यन्त्र की भाँति दौड़-दौड़कर कभी आम भूनकर पना बनाती, कभी होरी की देह में गेहूँ की भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती।

हीरा ने रोते हुए कहा—भाभी, दिल कड़ा करो, गो-दान करा दो, दादा चले।

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे? अपने पति के प्रति उसका जो धर्म है, क्या यह उसको बताना पड़ेगा। जो जीवन का संगी था, उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है?

और कई अवाज़ें आईं—हाँ, गो-दान करा दो, अब यही समय है।

धनिया यन्त्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली—महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है।

और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।